डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2024-26
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 168
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

मूल्य 50/-

42 वाँ वर्ष

मार्च 2024

अक्षरा

228

साहित्य की मासिकी

भारतीय भाषा विशेषांक

अंक-228

मूल्य 50/- रुपये

ऐसी अपनी बोलियाँ

जिनमें माटी की सुवास है,
जिनमें जीवन का उजास है,
ऐसी अपनी भाषाएँ हैं
ऐसी अपनी बोलियाँ।

मन के आँगन में रचतीं जो
शब्दों की राँगोलियाँ।

हिन्दी उर्दू या पंजाबी
तमिल तेलुगु कन्नडा ओड़िया।
गुजराती सिंधी कश्मीरी
बंगाली मैथिली असमिया।

इनमें जीवन का हुलास है,
इनमें संस्कृति का विकास है,
नहीं किसी का बैर किसी से
सब ही हैं हमजोलियाँ।
मन के आँगन में रचतीं जो
शब्दों की राँगोलियाँ।

मलयालम मणिपुरी मराठी
भोजपुरी बोडो संथाली।
संस्कृत छत्तीसगढ़ी डोगरी
और कोंकणी या नेपाली।
सबका अपना रूप रंग है,
सबमें जीवन की उमंग है,
सब ही हैं भावों अनुभावों
की संवाहक डोलियाँ।
मन के आँगन में रचतीं जो
शब्दों की राँगोलियाँ।

मगही कन्नौजी कुमाऊँनी
गढ़वाली काँगड़ी बघेली।
रजवाड़ी मालवी निमाड़ी
अवधी ब्रज भाषा बुन्देली।
अंचल की अगणित धाराएँ,
हिन्दी को समृद्ध बनाएँ,
भाषा की कलाई पर जैसे
शोभित मंगल मौलियाँ।
मन के आँगन में रचतीं जो
शब्दों की राँगोलियाँ।

सहोदरा बहनों जैसी हैं
भारत की सारी भाषाएँ।
माताएँ मौसियाँ हमारी
हमें बात करना सिखलाएँ।
एक हृदय हैं एक प्राण हैं,
ज्ञान चेतना का प्रमाण हैं,
सब पर नेह लुटाने वालीं
ये ममता की झोलियाँ।
मन के आँगन में रचतीं जो
शब्दों की राँगोलियाँ।

अपनी बोली बानी तजकर
भाषा परदेशी अपनाना,
रानी माँ की गोद छोड़कर
ज्यों दासी को शीश झुकाना,
कब बदलेगी यह परिपाटी,
गर्वित होगी अपनी माटी,
भारत माँ के भाल सजेंगी
पावन अक्षत-रोलियाँ।
मन के आँगन में रचतीं जो
शब्दों की राँगोलियाँ।

– डॉ. रामवल्लभ आचार्य

अक्षरा

228

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
42 वाँ वर्ष

अतिथि संपादक

श्रीराम परिहार

संजय द्विवेदी

जवाहर कर्नावट

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

संजय सक्सेना
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर–संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल – 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - myakshara18@gmail.com
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - www.एमपीराष्ट्रभाषा.com

इस अंक में हमने तीन अतिथि संपादक श्रीराम परिहार जी, संजय द्विवेदी जी और जवाहर कर्नावट जी को आमंत्रित किया है जिन्होंने क्रमश: हिन्दी और लोक भाषाएँ, हिन्दी और भारतीय भाषाएँ तथा हिन्दी और विश्व-भाषाएँ इन तीन विषयों पर लेखों का संकलन और संपादन किया है और मैं उनके परिश्रम तथा सहयोग के लिए उनका आभार भी प्रकट करता हूँ। यह विचार कि यह भाषा-अंक बने और इसमें इन तीन विद्वानों का सहकार लिया जाए, विजयदत्त श्रीधर जी का था जिन्हें दादा कैलाशचंद्र पंत जी की जन्म-जयंती के कारण इस अंक का प्रकाशन भी दस दिन पूर्व चाहिए था। दादा पन्त ने एक बहुत सार्थक और सेवाभावी जीवन तो जिया ही है, हिन्दी भाषा को अन्य भाषाओं के साथ रिश्तों में देखने के लिए उन्होंने लगातार कार्यक्रम, व्याख्यान और विचार-सत्र आयोजित किए हैं। उनकी प्रबल सक्रियता उम्र के इस पड़ाव पर भी अक्षुण्ण है, यह बाद की पीढ़ियों के लिए एक प्रेरक दृष्टान्त बन कर रहेगा।

यह अंक भाषाङ्क-है। भाषा सरस्वती के द्वादश नामों में से है और तब से है जब संस्कृत देववाणी थी और भाषा से अभिप्राय संस्कृत से इतर भाषाओं से दिया जाता था। आज भी जब हम अंग्रेजीदाँओं को अन्य भारतीयों को 'लैंग्वेज पीपुल' कहते देखते हैं तो उससे भी लगता है कि भाषा में कहीं एक देशजता और स्थानिकता है। तुलसीदास जब 'भाषाबद्ध करबि मैं सोई' की प्रतिज्ञा कर रहे थे, तब वे जमीन से जुड़े होने के इसी भाषिक तत्त्व की बात कर रहे थे। लेकिन वहाँ संस्कृत का निरादर नहीं था क्योंकि प्रथमत: और अंतिमत: वह एक देववाणी ही लगती है-उसमें इतनी खूबियाँ हैं और उसने कभी देशजता का दमन नहीं किया जैसा किसी समय लैटिन ने किया था या आधुनिक समय में अंग्रेजी ने कर रखा है। जैसे किसी समय यूरोप में देशज भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद करने पर मृत्युदंड की सजा थी और जलाकर मारना मुकर्रर किया जाता था। ऐसी भाषाओं में किया गया अनुवाद ही अनधिकृत नहीं था, ऐसा दुस्साहस करने वाले का जीवन और अस्तित्व भी अनधिकृत था। भारत में तुलसीदास और इंग्लैंड में विलियम टिंडेल लगभग एक ही समय एक ही कार्य कर रहे थे। संस्कृत से रामकथा को तुलसीदास 'भाषा' में ला रहे थे और टिंडेल बाइबल को अंग्रेजी में प्रस्तुत कर रहे थे, लेकिन तुलसी ने वाल्मीकि की वंदना करते हुए भी उनकी कथा से बहुत-सी रचनात्मक छूटें अपनी कविता में लीं और उधर हिंडेल ने उतनी सृजनशीलता भी नहीं दिखाई व केवल एक काव्यानुवाद मात्र प्रस्तुत दिया। तुलसी की भी आलोचना हुई, विरोध भी हुआ लेकिन न तो तुलसी को भारत छोड़कर जाना पड़ा और न उन्हें बन्दी बनाया गया और न उन्हें जलाकर मार डालने की सजा से गुजरना पड़ा जो सब टिंडेल के साथ हुआ। टिंडेल से पहले जॉन वाइक्लिफ बाइबल का अंग्रेजी में अनुवाद अपना नाम छिपाकर कर चुके थे। उनकी मृत्यु के चार दशकों बाद उनकी हिमाकत का पता चला। 4 मई 1415 को उन्हें मृत्योपरान्त अपराधी घोषित किया गया, उनकी सभी रचनाएँ अवैध घोषित कर दी गईं और उन्हें जलाया गया। उसकी कब्र से उसकी अस्थियों के अवशेष हटाकर उस भूमि को 'पवित्र' घोषित किया गया। आर्क बिशप अरुंडेल ने कहा कि गोस्पेल के मोती इस सँपोले के द्वारा हर तरफ बिखरा दिए गए हैं और वे सुअरों के पैरों तले रौंदे जा रहे हैं।

विलियम टिंडेल को जिस वर्ष अंग्रेजी के लिए यह सजा मिल रही थी, उसी वर्ष डच भाषा में बाइबल के अनुवादक को भी गिरफ्तार कर उसका सर कलम कर दिया गया। भारत में संस्कृत ग्रंथों तक में प्राकृत या देशज भाषाओं के संवाद सहजरूप से आते थे और 'भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने' वाले तुलसी मानस में संस्कृत का उपयोग भी कर लेते थे देशज भाषाओं में भी उसे युग वैज्ञानिक ग्रंथ लिखना भी निषिद्ध था। गैलीलियो की आखिरी दो पुस्तकें उसकी पूर्व पुस्तकों की तरह लैटिन में न होकर इतालवी में थीं और चर्च ने इस हेतु गैलीलियो को कभी क्षमा नहीं किया। देशज भाषाओं में शिक्षा तक इन यूरोपीय देशों में प्रतिबंधित रही थी। जब तक इन देशज भाषाओं में विज्ञान नहीं लिखा जाने लगा, वैज्ञानिक क्रान्ति संभव नहीं हुई। साइमन स्टीविन जैसे वैज्ञानिक शिक्षक विज्ञान शिक्षण के लिए डच भाषा की पैरवी करने खड़े हो गए, अपने पूर्व के सारे

वैज्ञानिक ग्रंथ लैटिन में लिखने वाले न्यूटन ने अंतिम ग्रंथ 'ऑप्टिक्स' अंग्रेजी में लिखा। राजा चार्ल्स पंचम जैसे लोग फ्रांस में हुए जिन्होंने अनेक भाषाओं के ग्रंथ फ्रेंच में अनूदित करवाए। धीरे-धीरे एक समय आया जब देशज भाषाएँ राष्ट्र राज्य (नेशन स्टेट) की अवधारणा का प्रतीक बनकर वैसे ही उभरीं जैसे भारत में खड़ी बोली और राष्ट्रवाद का उदय सहवर्ती रहे। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने खड़ी बोली तथा राष्ट्रवाद के विस्तार के लिए इस संग-प्रसंग पर दिलचस्प चर्चा की है।

यह देखना दिलचस्प है कि जो अंग्रेजी एक समय स्वयं देशज भाषा के रूप में अपने मातृदेश में संघर्ष कर रही थी वही भारत में देशज भाषाओं के विरुद्ध प्रभुत्व की वही ठसक लिए हुए है जो कभी लैटिन लिए हुए थी। हिन्दी और उसकी बोलियों तथा भारतीय भाषाओं का अंग्रेजी से कोई शत्रु-सम्बन्ध नहीं है। उनकी शत्रुता उसकी प्रभुतावादी ठसक से है। यह अंक इसलिए बोलियों और भाषाओं के अंतर-संबंधों पर ज्यादा केन्द्रित है और प्रतिद्वन्द्विताओं पर कम, बल्कि विश्व की अन्य भाषाओं के साथ हिन्दी की रिश्तेदारियों को ढूँढ़ा जाना चाहिए ही, भले ही वह बजरिए संस्कृत हो।

मेरी स्वयं यह आदत रही कि जब भी कभी विदेश जाने का योग हुआ मैंने उस देश का नक्शा जरूर देखा और उसके स्थानों के नाम भी।

ऐसे ही एक बार आयरलैंड जाने पर हुआ था। वहाँ मैंने देखा कि कई शहरों कस्बों के नाम बलि/ बाली से शुरू होते थे। मसलन, बलिना/ बालीना, बलिनामोर/ बालीनामोर, बलीबारो/बैलीबारो, बलिनाक्लैश/बालीनाक्लैश, बलिनाक्युरा/बालीनाक्युरा, बलिनाडी/बालिनाडी, बलिनाग/बालीनाग, बलिनाकिल/ बालीनाकिल, बलिनाली/बालीनाली, बलिनास्कार्टी/ बालीनास्कार्टी, बलिनास्लो/ बालीनास्लो, बलिन्कोलिग/ बालिन्कोलिग, बलिन्डागिन/बालीन्डागिन, आदि आदि।

और यह बड़ी लंबी सूची थी। कम से कम 70 शहरों के नाम। और उस वक्त तो मेरी आँखें विस्फारित हो गईं जब मैंने बलिनगर/ बालीनगर, बलिनगरी/बालीनगरी, बलिपुरीं/बालीपुरीं जैसे शहरों के नाम देखे। ये तो संस्कृत शब्द थे। आयरलैंड में क्या कर रहे थे। यह वही समय था जब भारत के एक विश्वविद्यालय में राजा बलि का पाताल केरल को बताया जा रहा था और उनके साथ वामन के व्यवहार को आर्य का द्रविड़ पर अन्याय बताया जा रहा था। और कश्मीर के साथ-साथ केरल को भी equate (समान बनाना) करने की चालें शुरू हो गई थीं।

एक उलटपंथी जनतंत्र की सबसे बड़ी विमर्श-सभा में बता रहे थे कि 'केरल के लोग अपने पसंदीदा राजा महा बलि की वार्षिक वापसी का जश्न मनाते हैं, जिन्हें आर्य संस्करण में असुरों (राक्षसों) के राजा के रूप में वर्णित किया गया है, जिन्हें वामनावतार के रूप में विष्णु द्वारा मारना पड़ा था। हिंदुओं के एक समूह के लिए वह एक नायक हैं। दूसरे के लिए खलनायक' लेकिन इन सज्जन ने राजा बलि को खलनायक बताने वाली कौन सी कथा पढ़ ली? बलि प्रह्लाद का पोता था। विरोचन जैसे व्यक्तित्व का बेटा। उदार। दानवीर। बलि सावर्णि मन्वंतर के इन्द्र के रूप में रहने का वर भी पाए हुए था। वह विष्णु भक्त भी था। दश दिशाओं की गणना जब होती है तब दक्षिण को पाताल दिशा से समीकृत नहीं किया जाता। वे दो अलग-अलग दिशाएँ हैं। और सिर्फ़ केरल में ही नहीं, बलि प्रतिपदा विक्रम संवत् में स्थान पाकर कई स्थानों में मनती है। मसलन गुजरात में। महाराष्ट्र में। बलि को ब्राह्मण परंपरा ने खलनायक न मानकर इतना सम्मान दिया कि विष्णु राजा बलि के सुतल लोक में द्वारपाल बन गए। लेकिन इन सब चीज़ों की परवाह भारत का बाल्कनीकरण करने के इच्छुक कहाँ कर रहे थे?

तब मुझे आयरलैंड का आयर आर्य का अपभ्रंश लग रहा था और इतने नामों वाला यह देश बलि का पाताल लग रहा था। आयरिश भाषा में aire (ऐरे) का अर्थ नोबलमेन ही है, जो संस्कृत में भी है। सिर्फ हमारे उलटपंथी और औपनिवेशिक और द्रविड़अस्मिताकामी ही आर्य शब्द को एक 'रेस' की तरह देखते हैं।

तो क्या ये शहर बाली के नाम पर थे, सुग्रीव के बड़े भाई के नाम पर? वहाँ बेलफास्ट में तारा नामक एक पहाड़ी ने मेरी दुविधा और बढ़ा दी। तारा बाली की पत्नी थीं। लेकिन बाली को वाल्मीकि रामायण में तो वालि लिखा गया है।
अब जो हो, यदि इन भाषाई प्रमाणों के आधार पर मैं 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' का निष्कर्ष निकालता हूँ तो क्या वह भी ग़लत है?

हिन्दी सिर्फ उपनिवेशवाद के कारण ही विश्व-भाषाओं के संपर्क में नहीं आई बल्कि 'ता प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' के तर्क से भी आई। जर्मन शब्द (डेर डीसचुंगेल) हिन्दी के जंगल शब्द से आया है, हिन्दी का बाँधना Der Dschungel (दास बंदना) है जर्मन का, हिन्दी की चम्पी जर्मन की Das shampoo (दास शैम्पू) है। कर्मा, गुरु, अवतार, वरांडा, बँगला जैसे शब्द तो अनेक विश्वभाषाओं द्वारा अपना लिए गए हैं। अंग्रेजी ने चारपाई, चीता, चटनी, बीड़ी, चिट, चौखट, डकैत, जगरनाट, जंगल, लूट, मंत्र, मसाला, निर्वाण, सिपॉय, ठग, यार जैसे अनेकानेक शब्द हिन्दी से उठाए हैं।

यह अंक हिन्दी की बोलियों पर भी विमर्श करता है। बोली को मैं धमनी-भाषा कहना चाहूँगा। यह हमारे स्नायुओं में बहती है। इसकी ही ध्वनि हमारे भीतर, हमारे कानों में ऐसे गूँजी थी जैसे सृष्टि के आरंभ में प्रणव गूँजा था। इसलिए बोलियाँ दरअसल ओंकार-भाषाएँ हैं। इस प्रणव को जितनी प्रणति है, उतना इससे प्यार है। इसी को पहले-पहल सबने अनुभूत किया था-सबकी भावनाओं और आवश्यकताओं ने सबसे पहले इसी के पालने में झूलना शुरू किया था। इसी के जरिए ये दुनिया हमारे लिए खुली थी। बोलियों में जो अल्हड़ता थी, जो कलरव और कुलेल था, किलकारी थी-वह एक चीज जैसे फिर कभी नहीं मिली। वह सरलता, वह अपनापन, वह तरलता, वह भावविभोरता लोकभाषाओं की ही पूँजी है। आप उसे न्यूनतम स्वचेतन हुए बिना बोल सकते हैं।

आज भी जब कोई बोली की ओर लौटता है तो उसे लगता है जैसे नदी की एक ठंडी धार छू गई है। जैसे एक बार माँ की गोद मिल गई है। इसलिए रचनाशीलता जो लोकभाषा में मिलती है, जो मातृभाषा में होती है-उसका कोई सानी नहीं होता। वर्ड्सवर्थ ने कविता को 'स्वयंस्फूर्त उच्छलन' यदि कहा था, तो वह नैसर्गिकता मातृभाषा में ही संभव है।

कला जिस मैत्री से उभरती है, जिस अंतरंगता और घनिष्ठता की वह परिणति होती है-वह मातृस्थानिक भाषा ही होती है। जैसे बच्चे की आँखों में उसकी माँ ही देवी होती है, उसी तरह से बहुत सी भाषाओं में प्रावीण्य के अर्जन के बाद भी मातृभाषा के ही मंदिर में हमें शांति मिलती है।

लांगफेलो कहता था कि कला प्रकृति की बेटी है जिसमें हम अपनी माँ के चेहरे के फीचर्स ट्रेस करते हैं। यदि ऐसा है जो मातृभाषा ही इस काम में सबसे ज्यादा मदद कर सकेंगी। दूसरी भाषाएँ शक्ति की, संपदा की भाषाएँ हैं, मातृभाषा स्नेह की भाषा है। दूसरी भाषा, अर्जित भाषा कई बार लोगों के मुख को ही एक कुरुक्षेत्र या एक पानीपत बना देती है। ऐसा लगता है जैसे वे कोई युद्ध लड़ रहे हो अपने कंठ के भीतर।

रचनाशीलता सिर्फ़ अभिव्यक्ति नहीं है वह एक तरह का ज़मीनीपन भी है। वह आत्मपरकता भी है और सामाजिकता भी और ये दोनों ही चीजें बोली में ही संभव हो पाती हैं। वह जो सम्बद्धता का, बिलांगिंग का भाव कलात्मकता की, सर्जनात्मकता की जान हुआ करता है, उसकी सर्वश्रेष्ठ आपूर्ति बोली से ही होती है।

आज कितने ही लेखक हैं भारत में जो बोली या मातृभाषा में कविता न लिखकर अंग्रेजी में कविता करते हैं। अंग्रेजी साहित्य उनमें है, लेकिन क्या वे अंग्रेजी साहित्य में हैं? आपका भाषा पर अधिकार तथा भाषा का आप पर अधिकार दो अलग-अलग चीजें है। कला और साहित्य ज्यादातर अवचेतन की गूँज होती हैं। उनका उद्भवन जिन अतल घाटियों में होता है, उस तक पहुँच मातृभाषा और बोलियों की ही होती है। जिन बावड़ियों में, जिन भीतरी जलाशयों में रचनात्मकता के महाशय ब्रह्मराक्षस बैठे हुए हैं-वहाँ हमेशा लोकभाषा के ही पैरों के निशान पाए गए हैं।

रचनात्मक प्रेरणा ऐसी ही होती है। स्वप्न की तरह। और सपनों की भाषा हमेशा मातृभाषा ही होती है। जेम्स केमरन को टर्मिनेटर और अवतार फिल्स सपनों में ही दीख पड़ी थी। मेरी शेली को फ्रेंकस्टाइन, कॉलरिज को एन्शियंट मेरिनर, पॉल मेकार्टिनी को 'यस्टरडे' जैसा गीत सपनों में ही दीख पड़ा था। इन सपनों को सबने मातृभाषा में ही देखा है। मातृभाषा हमारे मस्तिष्क में सहज बिंबात्मकता रचती है। यदि रचनाशीलता अंत: प्रेरणात्मक है, तो मातृभाषा उसका सर्वोत्तम उत्स है। लोकभाषा में जो अनौपचारिकता है, वह रचनाशीलता को सायास कृत्रिमता बनाने से बचा लेती है।

भाषिक साम्राज्यवाद के इस युग में बोलियों को जो खतरा बढ़ा है, उसने रचनात्मकता के वैविध्य को भी चुनौती दी है। बोली

कुछ लोगों के मत में प्रतिष्ठा–भाषा नहीं होती, लेकिन व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित वही करती है, उसे एक धुरी देती है। और अपने व्यक्तित्व की जड़ें जमाकर ही मनुष्य अपने समाज को प्रतिष्ठित कर सकता है। तुलसी ने यही किया था। स्वान्त:सुखाय लिखा पर जाग्रत एक पूरे समाज को किया। अवधी या रिमही वा बुंदेली के ज़रिए।

लोक भाषाएँ प्राय: हम लोगों के द्वारा एक स्थिर सत्य की तरह देखी जाती हैं। साठ के दशक में ब्रज और अवधी के बारे में जो कह दिया गया, वही अब भी कहा जाता है जबकि तब से अब तक गंगा–यमुना में में बहुत पानी बह गया है। हिन्दी का लोकभाषाओं के साथ अन्तर्गुम्फन, व्याकरण, रूप शास्त्र, सृजन और विमर्श किस तरह से परिवर्तित हुआ है, यह देखना दिलचस्प होगा। यह देखना भी कि स्वतंत्र भारत में यातायात, संचार और दूरसंचार की जो सघनताएँ बढ़ी हैं, उन्होंने भाषाई स्तर पर क्या बदलाव लाए हैं, क्या उनसे किसी तरह का भाषाई समरूपीकरण हुआ है या विविधीकरण के नए प्ररूप पनपे हैं। लोकभाषाओं के बीच भी सम्मिश्रण और विभेदन की प्रक्रियाए किस तरह चली हैं और हिन्दी के साथ–साथ अन्य भाषा भाषियों की सामाजिक अन्त: क्रियाओं ने कौन–कौन से सामंजस्य बिठाए हैं–इन सब पर हमारे विश्वविद्यालयों में गंभीर शोध कार्य होने चाहिए। ये परिवर्तन भाषाशास्त्र के हार्डवेयर के साथ साहित्य के सॉफ्टवेयर तक के तरह–तरह के रूप धरे हैं। एक ऐसे दौर में जब भाषिक प्रतिद्वन्द्विताओं को बढ़ाने के अभियान चल रहे हैं और जितना यह वैमनस्य बढ़ता है, उतना ही कुछ तबकों की तुष्टि होती है, तब यह **राष्ट्रभाषा प्रचार समिति** का लक्ष्य, ही है कि हम भाषिक सम्बन्धों, संपर्कों, समन्वयों और सहृदयताओं की बात करें। जैसे आधुनिक युग में यूरोप में भाषिक आधार पर 'नेशन' बने, स्वतंत्र भारत में भाषिक आधार पर प्रान्त बने। चूँकि भारत एक राष्ट्र है, अत: भाषाओं के बीच में बाड़ा बंदी नहीं हो पाई क्योंकि आखिरकार राज्य भी भारत संघ के ही सदस्य हैं। हमारे यहाँ पहले संघ था, बाद में भाषाई राज्य बने। यूरोप में पहले देशज भाषा (वर्नाकुलर्स) के उभार के साथ 'नेशन' आए और फिर संघ यूरोपीय यूनियन के रूप में आया। हमारी हर भाषा ने एक ही संस्कृति का वहन किया, इसलिए ये भाषाई पारस्परिकताएँ प्रगाढ़ होती चली गईं।

कोशिश यह होनी चाहिए कि जैसे रूस में चेबॉक्सारी में भाषा उत्सव होता है, हर साल, या जैसे 2008 में चीन में नानजिंग विश्वविद्यालय में डेनिस कीफे ने भाषा उत्सव किया था या सन 2014 से आस्ट्रेलिया में जो एडीलेड भाषा उत्सव होता है, वहाँ की भाषा पर्व संस्थ (लैंग्वेज फेस्टिवल) एसोसिएशन के द्वारा–वैसा कुछ शासन या भाषा–संस्थाएँ करें। इन सभी जगहों के भाषा उत्सव किसी एक भाषा के नहीं हैं बल्कि अनेक भाषाओं के हैं, जबकि हमारे यहाँ हम हिन्दी दिवस मनाते हैं। मातृभाषा दिवस भी मनाते हैं। पर एक बार यों भी हो कि हिन्दी की सारी बोलियों का एक संयुक्तोत्सव आयोजित किया जाए जिसमें हम ब्रज, अवधी, बुंदेली, बघेली, मालवी, निमाड़ी, मैथिली, भोजपुरी, कन्नौजी, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, सादरी, हाड़ौती, बागरी आदि की समृद्धि का साक्षात्कार कर सकें और उनकी आपसी अन्त: क्रिया की रोचकताओं से भी गुजर सकें और हिन्दी के कुछ विदेशी रूप भी इसमें शामिल हो जाएँ तो सोने में सुहागा। मसलन सरनामी हिंदी जो सूरीनाम में बोली जाती है।

यह अंक इसी तरह का लिखित भाषा–उत्सव है, और उत्सव होता ही तभी है जब बहुलता हो। एक की एकांगिकता एक तरह की एकांतिकता में ही परिणत होती है। हिन्दी की विशेषता ही यही है कि वह आंचलिकताओं और क्षेत्रीयताओं को 'बहुधा वदन्ति' के लोकतंत्र में देखती है। असल में जिस विदेशी भाषा के पैरोकारों ने भारत में देशज भाषाओं के बीच ग़लतफहमियाँ और तनाव फैलाकर अपनी आसंदी सुरक्षित कर मजे लूटे हैं, उनके प्रति अक्षरा के इन जैसे भाषांकों की जागृति जरूरी है। भारतीय भाषाओं और बोलियों ने एक सहज सामाजिकता के जरिए जो हाथ से हाथ मिलाकर जो एक भाषाशास्त्रीय शृंखला बनाई है, इस शृंखला को अविच्छिन्न बनाए रखना ही हमारा कर्तव्य होना चाहिए।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम–रज, 3–पारिका–फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल–462016 (म.प्र.)
मो.–9425150651
ईमेल–shrivastava_manoj@hotmail.com

भारतीय भाषा विशेषांक

अंक 228 मार्च 2024

अनुक्रम

सम्पादकीय

हिन्दी नई चाल में ऐसे ढली / **विजयदत्त श्रीधर/8**

साधो सबद साधना कीजै

बालों की दवाई, शिकाकाई, कहाँ से आई / **अजित वडनेरकर/13**

◆ **हिंदी और लोक भाषाएँ**

अतिथि संपादकीय / लोकभाषा बहता नीर / **श्रीराम परिहार/15**

ब्रज भाषा और हिन्दी का अंतर-संबंध / **सोमदत्त शर्मा/19**

हिन्दी और लोक भाषा अवधी / **रामबहादुर मिश्र/24**

बुन्देली भाषा की लोकजीवनी शब्दशक्ति से समृद्ध हिन्दी / **सरोज गुप्ता/28**

हिन्दी और लोक भाषा बघेली / **बाबूलाल दाहिया/31**

मालवा-मालवी एवं उसका लोक साहित्य / **पूरन सहगल/39**

लोक भाषा निमाड़ी और हिन्दी / **अरुण सताले/45**

हिन्दी की सहयोगी राजस्थान की बोलियाँ / **श्रीकृष्ण जुगनू/49**

हिन्दी भाषा सिन्धु में गढ़वाळि निर्झरणी का अनूठा समागम / **नीरज नैथानी/54**

हिन्दी में मैथिली / **चन्द्रभानु प्रसाद सिंह/57**

हिन्दी के महासागर में छत्तीसगढ़ी शब्दों का अनुष्ठान / **सुधीर शर्मा/63**

हिन्दी और लोक भाषा हरियाणवी / **बाबूराम/65**

लोक भाषा बज्जिका : शान्तिप्रिय जनपद की सृजन संवेदना / **संजय पंकज/70**

हिन्दी और लोक भाषा हिमाचली / **ओमप्रकाश सारस्वत/76**

◆ **हिंदी और भारतीय भाषाएँ**

अतिथि संपादकीय/ भारतीय भाषाओं का अंतर-संवाद / **संजय द्विवेदी/77**

भारत का बहुभाषावाद / **बलराम/84**

हिंदी और गुजराती : अनुबंध की यात्रा / **विष्णु पण्ड्या/89**

अटूट है हिंदी-बांग्ला भाषाओं का अंतर-संवाद / **कृपाशंकर चौबे**/91

हिंदी-मराठी भाषा का अंतर-संबंध : उच्चारण एवं वर्तनी / **शैलेश मरजी कदम, प्रिया शैलेश कदम**/98

हिंदी, मराठी अंतर-संबंधों का व्यतिरेकी अध्ययन लिंग एवं वचन के सन्दर्भ में / **प्रिया शैलेश कदम**/100

ओड़िया और हिंदी के अंतर-संबंध / **दिनेश कुमार माली**/102

तमिल और हिंदी के बीच अंतर-संबंध / **सी. जयशंकर बाबु**/104

तेलुगु व हिंदी के बीच अंतर-संबंध / **ए. राधिका**/110

मलयालम और हिंदी के बीच अंतर-संबंध / **सी. जयशंकर बाबु, विजयेंद्र बाबु**/113

हिंदी-कन्नडा भाषा का अंतर-संवाद / **उषारानी राव**/117

कन्नडा तथा हिंदी भाषाओं का अंतर-संबंध / **आलूरु राधिका, सी. जयशंकर बाबु**/120

◆ **हिंदी और विश्व भाषाएँ**

अतिथि संपादकीय / विदेशी भाषाओं और हिंदी का अंतर-संबंध/ **जवाहर कर्नावट**/125

किस ओर-हिंदी-अंग्रेज़ी, हिंग्लिश या इंग्दीज़ / **वंदना मुकेश**/126

चीनी संस्कृति पर संस्कृत का प्रभाव / **विवेक मणि त्रिपाठी**/131

हिन्दी और भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार में पुर्तगाल और पुर्तगाली भाषा का योगदान / **शिव कुमार सिंह**/135

रूसी और हिंदी के अंतर-संबंध / **प्रगति टिपनीस**/139

अपृथकनीय हिंदी-अरबी का प्रगाढ़ अंतर-संबंध / **आरती 'लोकेश'**/145

हिंदी और डच : एक आपसदारी / **रामा तक्षक**/148

हिंदी तथा सिंहली भाषाओं का संरचनागत व्यतिरेकी अध्ययन / **अतिला कोतलावल**/156

मलय व हिन्दी का मेल / **संध्या सिंह** /161

पत्रांश/163

हिंदी नई चाल में ऐसे ढली

– विजयदत्त श्रीधर

• हिन्दी गद्य के विकास में पत्रकारिता की बड़ी भूमिका है।
• हिन्दी पत्रकारिता से सैकड़ों हिन्दी शब्द उपजे।
• हिन्दी पत्रकारिता ने वर्तनी का मानकीकरण किया।
• संपादकों ने अर्थशास्त्र, विज्ञान की हिन्दी शब्दावली गढ़ी।

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी 30 मई, 1826 को कोलकाता से आरंभ होती है। हिन्दी के आद्य संपादक युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' साप्ताहिक समाचार-पत्र का प्रकाशन किया था। यह श्रम-साध्य, कष्ट-साध्य, व्यय-साध्य बीड़ा उठाने की ओर वे क्यों प्रवृत्त हुए; जिसमें लागत निकलने की भी कोई आश्वस्ति नहीं थी। इसका उल्लेख स्वयं शुक्ल जी ने 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रवेशांक में किया है। वे लिखते हैं, 'यह उदन्त मार्तण्ड अब पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अँगरेजी ओ फारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़ने वालों को ही होता है . . . देश के सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंय ओ पराई अपेक्षा जो अपने भावों के उपज न छोड़ें, इसलिए बड़े दयावान करुणा ओ गुणनि के निधान सबके कल्याण के विषय श्रीमान् गवरनर जेनेरल बहादुर की आयस से जैसे चाहत में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा . . . '

उपर्युक्त संकल्प में पहली बात यह स्पष्ट होती है कि तब तक हिन्दी में कोई समाचार पत्र प्रकाशित नहीं होता था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन किया। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कि 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेत' यह हिन्दी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा है। उदन्त मार्तण्ड के संपादक ने हिन्दुस्तानियों को हिन्दी भाषी के संदर्भ में लिया था। उनकी जानकारियों का विस्तार संपादक का अभीष्ट था। इसमें हिन्दी भाषा की महत्ता भी समाचार-माध्यम के रूप में निहित है, 'अपनी भाषा।' उदन्त मार्तण्ड की अनगढ़-सी भाषा का एक नमूना देखिए –
'जबते या कलकत्ता नगरी में उदन्त मार्तण्ड को प्रकाश भयो तबते लै आज दिवस लों काहू प्रकार ते ढाढस बाँध विद्या के बीज बबै को हिन्दुस्तानियों के जड़ता के खेत को बहु विधि ज्योतो पहिले तो ऐसी कठोर भूमि काहे को जुतै ताहू पै काया कष्ट कर जैसो तैसो हर चलाय वा खेत में गाँठ की ब्यू बखेर बड़े यतन से सींच फल लुन्यों चाह्यो तो समय लोभ रूपी टाड़ी परिवा खेत के फल फूल पाती सिगरी चरि गई अब तो फिरि फिरि या नाशें क्षेत्र को गोडियो तो श्रम ही के फल फलेंगो।'

कोई दो शताब्दी पहले पत्रकारिता के शुरुआती दौर में बरती गई हिन्दी अब निखर कर कितनी परिष्कृत और परिमार्जित हो गई है, यह भाषिक उन्नयन की गौरव गाथा है। इस विकास यात्रा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, मदनमोहन मालवीय, प्रतापनारायण मिश्र, रुद्रदत्त शर्मा, मेहता लज्जाराम शर्मा, दुर्गाप्रसाद मिश्र, सदानन्द मिश्र, छोटूलाल मिश्र, अमृतलाल चक्रवर्ती प्रभृति अनेक विद्वान संपादकों का महती योगदान है। भारतेन्दु युग के लिए यह मुहावरा प्रचलन में आया-'हिन्दी नई चाल में ढली।' खड़ी बोली हिन्दी के परिष्कार में युगान्तरकारी भूमिका निभाने के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को सदैव कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया जाएगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक कालखण्ड 'द्विवेदी-युग' के रूप में वर्णित है। उनके समकालीन माधवराव सप्रे, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, बालमुकुन्द गुप्त, लक्ष्मण नारायण गर्दे का कृतित्व भी चिरस्मरणीय है। हिन्दी पत्रकारिता के अध्ययन-अवलोकन से भाषा के क्रमिक विकास की शृंखला भी स्पष्ट होती है। यह भाषायी अस्मिता के साथ-साथ हिन्दी भाषियों के स्वत्व और स्वाभिमान की भी रोचक-रोमांचक गाथा है।

सन् 1854 में प्रकाशित हुए हिन्दी के पहले दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' के 18 मई 1855 के अंक में प्रकाशित एक समाचार की शब्दावली पर ध्यान दीजिए-'एक विशेष बात सुनने में आई है कि नागपुर के महाराज की रानियाँ जिस महल में बास करती हैं उनको उस महल से निकाल के दूर कहीं और एक क्षुद्र स्थान में बास करावने की इच्छा

पत्रकारिता- इतिहास और भाषिक विकास क्रम के अध्येता

करते हैं और उस राजमंदिर में कमिस्यनर साहेब को **वास** करने के लिए अनुमति देने वाले हैं। लेकिन यिह बात सत्य है कि नहीं हम लोग नहीं कह सकते हैं अगर यिह बात सत्य है तो ब्रीटिश गवर्नमेंट ने भारतवर्ष निवासी राजों पर अन्याय अत्याचार ओ जोरावरी करने को जो आरंभ किया है सो अब उसका हद् हो चुका काहे से के धन गहना ओ कपड़ा लूट के फेर बैठने का झोपड़ा भी छीनने का जब इरादा किया इससे अधिक और जोरावरी क्या करनी होती है। नागपुर राज्य पर जितना बलातकार किया ऐसा कोई और राज्य पर इतना बल प्रकाश नहीं किया।'

उदन्त मार्तण्ड और समाचार सुधावर्षण के प्रकाशन के बीच 28 साल का फासला है। दोनों के समाचारों की भाषा बतलाती है कि तब तक हिन्दी की कोई मानक शब्दावली विकसित नहीं हो पाई थी। यद्यपि शब्द भण्डार बढ़ रहा था। शनैः-शनैः भाषा का स्वरूप सुघड़ हो रहा था। परन्तु अर्द्धविराम, पूर्ण विराम, शब्दों को मिलाकर लिखना जैसे प्रयोग अटपटी भाषा ही बना रहे थे।

भारतेन्दु युग तक आते-आते हिन्दी नई चाल में ढलने लगी थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को खड़ी बोली हिन्दी गद्य का जनक कहा जाता है। लोक भाषाओं, बोलियों में बँटी हिन्दी को एक उन्नत भाषा के रूप में गढ़ने की ठोस नींव भारतेन्दु ने रखी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जन्मदिन पर सन् 1867 में काशी से प्रकाशित 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु जी ने संपादकीय टिप्पणी में लिखा था-'प्रायः लोग कहते हैं कि हिन्दी कोई भाषा नहीं है। क्या भारत खण्ड निवासी महाराज विक्रमादित्य और भोज के समय में भी लखनऊ की सी बोली बोलते थे।' कविवचन सुधा के संपादक का मानना था 'भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसको संपूर्ण लोग बे प्रयास समझ जायें।'

हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता के अनेक मूर्धन्य दोनों माध्यमों में लेखनी चला रहे थे। साहित्य और पत्रकारिता को साथ-साथ साधने वाले मनीषियों की सक्रिय उपस्थिति से दोनों माध्यमों का संस्कार और परिष्कार हो रहा था। इतना ही नहीं, भाषा के प्रयोग को लेकर पत्रों और संपादकों में शास्त्रार्थ भी चल पड़े थे। 'भारत मित्र' की शैली के संबंध में 'बिहार बंधु' ने टिप्पणी की, 'लिखावट अभी इतनी उम्दे नहीं है लेकिन उम्मीद है कि थोड़े दिनों के बाद लिखावट अच्छी हो जाएगी।' भारतमित्र ने पहले तो इतना ही लिखकर बात टाल दी कि 'उसकी अपनी भाषा शैली दोषपूर्ण है।' फिर तीखी प्रतिक्रिया दी-'कविवचन सुधा कहते तो कुछ कह भी सकते थे। यह तो वो ही कहावत है कि सूप बोले तो बोले चलनी भी बोले जिसमें बहत्तर छेद।' तात्पर्य यह कि हिन्दी पत्रकारिता तब तक भाषा के सौष्ठव के प्रति जागरूक हो गई थी। यह बहस भी चल पड़ी थी कि कौन-सी हिन्दी ठीक है, उर्दू-फारसी के शब्दों के मेल वाली अथवा हिन्दी में संस्कृत शब्दों के समावेश वाली भाषा।

भारत के बहुत बड़े भू-भाग की लोक जीवन की भाषा हिन्दी रही। लेकिन राजकाज में कचहरी में अँगरेजी का बोलबाला था अथवा उर्दू-फारसी चलती थी। सन 1873 में प्रकाशित भारतेन्दु की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' ने यह आन्दोलन चलाया कि हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाया जाए। कहना न होगा कि हरिश्चन्द्र के बहुविध हस्तक्षेप और बहुआयामी सक्रियता से हिन्दी गद्य का स्वरूप परिमार्जित हो गया था। भाव, भाषा, शैली, वर्तनी, शब्द भण्डार और वाक्य विन्यास में भी निखार आया था। उस समय बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप' और प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' भी हिन्दी के उन्नयन में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। इलाहाबाद नगरपालिका में चुंगी का कामकाज उर्दू भाषा में होता था। व्यापारियों के बही-खाते हिन्दी में रहते थे। इससे व्यापारियों को परेशानी होती थी। हिन्दी प्रदीप ने यह व्यावहारिक समाधान निकाला-'ऐसे अन्याय नागरी के स्वच्छ अक्षरों के प्रचलित होने से मिट जाएँगे। जो लिखा रहेगा वही पढ़ा जाएगा और सब तरह की आसानी होगी।'

'समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरूप होता है', इस अवधारणा के साथ 1878 में 'भारतमित्र' का प्रादुर्भाव होता है। यह हिन्दी पत्रकारिता, साहित्य और भाषा तीनों दृष्टियों से एक उल्लेखनीय परिघटना है। भारतमित्र की भाषा नीति थी-'आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा कीजिये। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिये। यही अच्छी भाषा की कसौटी है। जहाँ तक हो सके वाक्य छोटे हों। क्लिष्ट शब्द न आने पायें। मुहावरे का ख्याल रखें।' 'सार सुधानिधि' और 'हिन्दी बंगवासी' भी उसी कालखण्ड में प्रकाशित हुए। इनके मनीषी संपादकों ने हिन्दी भाषा को समृद्ध करने में अहम भूमिका निभाई। बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशम्भू के चिट्ठों ने ऐसी धूम मचाई थी कि गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन उनका अँगरेजी अनुवाद सुना करता था। हिन्दी ने इस दौर में भाषिक तेवर के नए प्रतिमान गढ़े। हिन्दी पत्रकारिता के युग निर्माता संपादकों का यशस्वी कृतित्व भविष्य की सुदृढ़ नींव रच गया।

'उचित वक्ता' के संपादक दुर्गाप्रसाद मिश्र की यह टिप्पणी दृष्टव्य है -'आजकल हिन्दी साहित्य की विचित्र दशा वर्तमान है। इसकी कुछ स्थिरता ही नहीं देख पड़ती। विविध प्रकार के रंग-बिरंगे लेख प्रकाशित होते हैं। कोई तो संस्कृत शब्दों पर झुक रहे हैं और ज्यों ही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन होती है कुछ सरल

कीजिए कि पट पलटकर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गए, फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत शब्दों के मिलाने से या उर्दू शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट न होगी बस चट बदल गए और दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाने में उतारू हो गए। सारांश यह कि ग्राहकों की खोज में भाषा भी भटकाते रहते हैं और लेख प्रणाली को स्थिर नहीं रख सकते। हिन्दी के वर्तमान लेखकों में यही दोष वर्तमान है। अधिकांश लेखनदास लोग घर से सतुआ बाँधकर हिन्दी लिखने का व्यापार करने को निकलते हैं। ये लेखक क्या हैं मानो बहुरूपी स्वांग हैं। इनको जब जैसा मालिक मिला और जिस प्रकार लिखने में उद्दत हो जाते हैं। सुतरां ऐसे लेखों से हिन्दी की यथेष्ठ हानि हो रही है।'

प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' में हिन्दी भाषियों का आह्वान करते हैं –

'चहहु जो साँचहु निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत-सन्तान।
जपौ निरन्तर एक जबान।
हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान।।'

कालाकांकर का 'हिन्दोस्थान' विशुद्ध हिन्दी भाषा का पहला दैनिक समाचार-पत्र था। (समाचार सुधावर्षण में हिन्दी के साथ-साथ बांग्ला में भी लिखा जाता था)। मदन मोहन मालवीय 'हिन्दोस्थान' के संपादक थे। उनकी भाषा नीति थी-'भाषा की उन्नति करने में हमारा सर्वप्रधान कर्तव्य यह है कि हम स्वच्छ भाषा में लिखें। पुस्तकें भी ऐसी ही भाषा में लिखी जाएँ। ऐसा यत्न हो जिससे जो कुछ लिखा जाए वह हिन्दी भाषा में लिखा जाए। जब भाषा में शब्द न मिलें तब संस्कृत से लीजिए या बनाइए।'

खड़ी बोली हिन्दी के इस विकास काल में संपादक हिन्दी भाषी पाठकों को भाषा-प्रेम में कोताही के लिए फटकार लगाने से भी नहीं चूकते थे। 'भारत भ्राता' की टिप्पणी पर गौर करिए 'हिन्दी की दीन हीन दशा सर्वसाधारण पर भली-भाँति विदित है। संप्रति इसके पाठकगणों की जैसी रुचि और प्रेम हिन्दी भाषा विषयक ग्रंथों तथा समाचार-पत्रों के पठन-पाठन की ओर है उसे अवलोकन कर कदापि कोई भलाई की आशा नहीं कर सकता।'

'हिन्दी बंगवासी' में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि पूरे समाचार-पत्र की वर्तनी एक जैसी रहे। एक प्रयोग यह भी किया गया कि अँगरेजी पदनामों को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्हें सरल रूप में लिखा जाता था। जैसे सेक्रेटरी का 'सिकतर, मजिस्ट्रेट का 'मजिस्टर', आदि। मूर्धन्य संपादक अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है-'पत्रकारी का वह प्राथमिक विद्यालय था। पत्रकार के लिए भाषा की एकरूपता पहली आवश्यकता है। एक शब्द जिस रूप में एक जगह लिखा गया है उसी रूप में सर्वत्र लिखा जाना चाहिए, यह बात 'हिन्दी बंगवासी' में कुछ दिन काम करने से आ जाती थी।'

जब सन 1896 में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन काशी से हुआ तब भाषा के संबंध में यह निर्णय लिया गया 'इसके लेखों की भाषा ठेठ हिन्दी हो। उसमें संस्कृत अथवा अरबी-फारसी के बड़े-बड़े शब्द न रखे जायं। जिन लेखों में अरबी-फारसी के बहुत से शब्द भरे हों उन्हें परीक्षक समिति अस्वीकार कर दे।' नागरी प्रचारिणी पत्रिका के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है। 'इसका उद्देश्य यह था कि इसके द्वारा हिन्दी में गद्य साहित्य की कमी दूर हो और ऐसे लेखों की संख्या बढ़ती रहे जिनका लक्ष्य केवल पाठकों का मनोरंजन करना नहीं वरन हिन्दी बोलने वालों के विचारों को कुछ बढ़ाना और उनकी दृष्टि को कुछ और दूर तक फैलाना हो।'

'शिक्षा' पत्रिका में हिन्दी के शुद्ध स्वरूप पर ध्यान दिया जाता था। शिक्षा ने ही बताया कि राजनैतिक शब्द गलत है, सही शब्द 'राजनीतिक' है। अन्तर्राष्ट्रीय के स्थान पर 'अन्त:राष्ट्रीय' शब्द को सही निरूपित किया गया।

आचार्य द्विवेदी का भाषा अनुशासन :- इण्डियन प्रेस के स्वामी बाबू चिंतामणि घोष के संकल्प से सन 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन हुआ। जनवरी, 1903 से महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पत्रिका के संपादन का दायित्व ग्रहण किया। हिन्दी भाषा के नव-संस्कार का स्वर्णयुग यहाँ से आरंभ होता है। चतुर्वेदी जी के संपादन की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है-'ऐसा लगता है जैसे आदि से अंत तक उसे एक ही व्यक्ति लिखता हो।' 'सरस्वती' की सबसे महत्त्वपूर्ण देन यह मानी जाती है कि उसने हिन्दी लेखन की वर्तनी को शुद्ध किया और भाषा को व्याकरण सम्मत बनाया। हिन्दी को मानक स्वरूप देने में सरस्वती ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के 18 वर्ष के संपादन काल में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अनेक रचनाकारों-कवि, कथाकार, निबंधकार, यात्रावृत्तांतकार, अनुवादक, साहित्येतर लेखकों को तराशा और आगे बढ़ाया। संपादन करते हुए बहुधा द्विवेदी जी पुनर्लेखन कर दिया करते थे, परंतु मूल भाव यथावत रहा आता था।

'द्विवेदी जी ने नवंबर, 1905 की सरस्वती' में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक। लेख में लेखकों की भाषा संबंधी भूलें बतलाईं। संस्कृत साहित्य में शृंगार रस की प्रधानता पर उन्होंने चोट की और 'कालिदास की निरंकुशता' शीर्षक लेख लिखा। एक आलेख में उन्होंने 'अनस्थिरता' शब्द का प्रयोग किया। इस पर 'भारतमित्र' संपादक बालमुकुन्द गुप्त ने आपत्ति की और बताया कि सही शब्द 'अस्थिरता

है। हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं और संपादकों में इसको लेकर शास्त्रार्थ छिड़ गया। आलोचना–प्रत्यालोचना के ऐसे सिलसिले ने हिन्दी को मानक और जीवन्त भाषा बनाने का वातावरण रचा। शब्द–मंथन और साहित्य–मंथन की लहर चल पड़ी। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने सर्वथा सटीक मूल्यांकन किया है–'किसी भाषा के बारे में किसी एक व्यक्ति और एक पत्रिका ने उतना काम नहीं किया जितना हिन्दी के बारे में इन दोनों (आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और सरस्वती) ने किया।'

जब प्रयाग जैसी उन्नत नगरी से 'सरस्वती' जन्म ले रही थी तभी सुदूर छत्तीसगढ़ के पेण्ड्रा में मनीषी संपादक–साहित्यकार माधवराव सप्रे 'छत्तीसगढ़ मित्र' के माध्यम से हिन्दी सेवा का अनुष्ठान आरंभ कर रहे थे। उनका संकल्प था–'इसमें कुछ संदेह नहीं कि सुसंपादित पत्रों के द्वारा हिन्दी भाषा की उन्नति हुई है। अतएव यहाँ भी 'छत्तीसगढ़ मित्र' हिन्दी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान दे। आजकल भाषा में बहुत सा कूड़ा–कर्कट जमा हो रहा है, वह न होने पावे इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध मार्मिक विद्वानों के द्वारा समालोचना भी कहे।' यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि हिन्दी की पहली मौलिक कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' सप्रे जी ने लिखी। हिन्दी समालोचना शास्त्र का विकास सप्रे जी ने किया। हिन्दी की आर्थिक शब्दावली गढ़ने का कार्य माधवराव सप्रे ने किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली योजना में अर्थशास्त्र खण्ड का दायित्व सप्रे जी को सौंपा गया था। अर्थशास्त्र में अँगरेजी के तब प्रचलित 1320 शब्दों के लिए सप्रे जी ने व्यापक अध्ययन के उपरान्त हिन्दी के 2115 शब्द बनाए।

भरतपुर हिन्दी संपादक सम्मेलन (1927) के अध्यक्षीय आसन से माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था–'आज के हिन्दी भाषा के युग को पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी द्वारा निर्मित और तेज को पण्डित माधवराव जी सप्रे द्वारा निर्मित कहना चाहिए। यह सेवाएँ सब सज्जनों की हैं किन्तु संपादकीय व्यवस्था, विचार प्रवाह और भाषा शैली के रूप में वर्तमान युग को द्विवेदी जी और सप्रे जी का ही युग कहना होगा।'

बीसवीं शताब्दी का आरंभ हिन्दी उन्नयन के प्रयत्नों को फलीभूत करने के उपक्रमों के साथ हुआ। पत्रकारिता में सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य हिन्दी भाषा के प्रयोग के पक्षधर मदनमोहन मालवीय ने जब प्रयाग से 'अभ्युदय' का प्रकाशन आरंभ किया तब उन्होंने एक नई और महत्त्वपूर्ण पहल की। अभ्युदय में यह अपील प्रकाशित की जाती थी कि 'कृपा कर पढ़ने के बाद 'अभ्युदय' किसी किसान भाई को दे दीजिए।'

समाज सुधारकों और राजनीतिक चिंतकों के नेतृत्व वाले 'बांग्ला नवजागरण' और 'मराठी नवजागरण' के बरअक्स 'हिन्दी नवजागरण' की अगुआई संपादक–साहित्यकार कर रहे थे। माधवराव सप्रे हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत थे। सप्रे जी के दीर्घ निबंध 'स्वदेशी आन्दोलन और बायकाट' ने पराधीनता के अभिशाप के विरुद्ध जनमानस को झकझोरा। 'भारत की एक राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्रीय जागृति की मीमांसा' जैसे निबंधों से स्वाधीनता की चेतना को बल दिया। हिन्दी में राजनीतिक शब्दावली के विकास का पथ इससे प्रशस्त हुआ।

हिन्दी भाषा के उन्नयन में सन 1915 में प्रयाग से प्रकाशित पत्रिका 'विज्ञान' का उल्लेखनीय अवदान है। प्रवेशांक में विज्ञान संपादक ने लिखा–'अधिकांश वैज्ञानिक विषय हमारी भाषा के लिए नवीन हैं, उसको पाठकों के सामने उपस्थित करने में हमें अनेक गढ़े हुए शब्दों का आश्रय लेना पड़ेगा।' 'विज्ञान' का प्रकाशन सन् 1915 से अनवरत हो रहा है। इस सुदीर्घ अवधि में अनेक हिन्दी विज्ञान लेखकों को पत्रिका ने प्रोन्नत प्रोत्साहित किया। शब्दावली विकसित की और विज्ञान चेतना के प्रसार के अनुकूल साहित्य निर्माण का पथ प्रशस्त किया।

'आज' का योगदान :– हिन्दी वर्तनी को मानक रूप देने तथा यथा आवश्यकता नए शब्द गढ़ने में 'आज' की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण है। 'आज' के संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 1925 में टिप्पणी लिखी थी–'साहित्यिक दृष्टि से आजकल के लेखक पन्द्रह साल पहले के लेखकों से निम्न कोटि के ही ठहराए जाएँगे। कारण यह है कि साहित्य का अध्ययन बहुत कम लोग करते हैं। अँगरेजी साहित्य अथवा किसी विषय में विश्वविद्यालय का प्रमाणपत्र पा जाना ही हिन्दी के लेखक बनने की योग्यता का द्योतक हो गया है। फलत: दिन–दिन हमारी पुस्तकों के शब्द तो हिन्दी और संस्कृत, पर वाक्य अँगरेजी बनते चले जाते हैं। भाषा में न जोर रह गया है न हृदयग्राहिता। रचना कौशल घटता जा रहा है।' इसी चिंता ने 'आज' को भाषा उन्नयन की दिशा में प्रवृत्त किया। आज के संपादक मण्डल के वरिष्ठ साथियों–कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय और मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव ने विचारपूर्वक हिन्दी वर्तनी की एकरूपता निर्धारित की। भाषिक शुद्धता का आग्रह, नए–नए शब्दों का गढ़ना भी इसी कार्यनीति का हिस्सा था। यह कहने में कतई अतिशयोक्ति नहीं कि 'आज' ने जो पथ प्रशस्त किया, जिस वर्तनी का प्रचलन किया, वही बाद के दशकों में देश भर के हिन्दी पत्रों ने अपनाई।

हिन्दी में 'हड़ताल' शब्द का प्रचलन सरस्वती ने किया, इसी शीर्षक से माधवराव सप्रे का निबंध प्रकाशित कर। अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने पहले पहल 'नृसिंह' में अँगरेजी के नेशन के लिए 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया। पहले बांग्ला के प्रभाव से जातीय शब्द चलता था, जिसका स्थान मराठी प्रभाव वाले 'राष्ट्र' ने लिया। भरतपुर संपादक सम्मेलन में सभापति माखनलाल चतुर्वेदी ने 'जर्नलिस्ट' के लिए 'पत्रकार' शब्द चुना था। यद्यपि वे स्वयं इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे।

सबसे ज्यादा नए शब्द 'आज' ने बनाए और प्रचलित किए। अँगरेजी शब्द मिस्टर के लिए श्री, मेसर्स के लिए 'सर्वश्री' ब्लैकआउट के लिए 'अंधकुप्प', इंटरनेशनल मानीटरी फण्ड के लिए 'अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष', कोरम के लिए 'गणपूर्ति', 'हाई कमिश्नर' के लिए 'उच्चायुक्त', 'सेशन कोर्ट के लिए' 'सत्र न्यायालय', 'इन्फ्लेशन' के लिए 'मुद्रास्फीति', डेमोक्रेसी के लिए 'लोकतंत्र', 'ब्यूरोक्रेसी' के लिए 'नौकरशाही', 'प्रेसीडेण्ट' के लिए 'राष्ट्रपति', 'प्राइम मिनिस्टर' के लिए 'प्रधानमंत्री', 'पार्लियामेण्ट' के लिए 'संसद', 'नान कोऑपरेशन' के लिए 'असहयोग' शब्द आज की देन हैं। ऐसे सैकड़ों शब्द पत्रों, संपादकों ने बनाए और सुसंगत होने के कारण वे प्रचलित भी हुए। अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से भी बहुत से शब्द हिन्दी में आए। हिन्दी ने उन्हें अपने रंगरूप में ढाल कर अपनाया। परन्तु सहज स्वाभाविक रीति से, थोपे गए शब्दों के समान नहीं।

लक्ष्मण नारायण गर्दे के 'विजय' ने 1931 में चिन्ता जताई थी 'बांग्ला, मराठी और गुजराती साहित्य के वृक्ष तो फले-फूले हैं, हिन्दी साहित्य का वृक्ष सिंचाई की कमी से मुरझाया ही रहता है और दूसरी ओर से विदेशी भाषा की बकरी उसे चर जाती है।'

हिन्दी साहित्य और संस्कृति में जनपदों की महत्ता के व्याख्याकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) से 'मधुकर' का प्रकाशन कर हिन्दी की प्राणवायु सदृश लोकभाषाओं और लोकसंस्कृतियों का अध्ययन तथा दस्तावेजीकरण करने पर बल दिया। आंचलिक साहित्य और साहित्यकारों का महत्व स्थापित किया। उन्हें मान्यता दी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हरिद्वार अधिवेशन में जनपदों की साहित्यिक सांस्कृतिक महत्ता को सार्वजनिक स्वीकृति प्रदान की गई। प्रकारान्तर से यह साहित्य जगत में विकेन्द्रीकरण का आन्दोलन था। बनारसीदास चतुर्वेदी मानते थे कि बोलियों में बाँटकर हिन्दी की लोकभाषाओं की उपेक्षा अथवा अवहेलना वास्तव में हिन्दी को कमजोर करेगी। बिना लोकभाषाओं के समावेश के हिन्दी एक प्रकार से अपाहिज हो जाएगी।

हिन्दी पत्रकारिता में शब्द संधान का कार्य अनवरत है। सन 1952 का एक दृष्टान्त देखिए-दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में हाकी टूर्नामेण्ट हुआ। यह बहस चली कि हैटट्रिक के लिए हिन्दी का कौन-सा शब्द प्रयोग में लिया जाए। दूसरे दिन 'नवभारत टाइम्स' में प्रेमनाथ चतुर्वेदी का दिया 'तिकड़ी' शब्द छपा और सटीक होने के कारण चलन में भी आ गया।

हिन्दी पत्रकारिता की शब्द संपदा :- माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय ने 'स्वतंत्र भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता' शोध परियोजना (2005-09) के अन्तर्गत 'हिन्दी पत्रकारिता की शब्द संपदा' का अध्ययन कराया था। कोशकार डॉ. बदरीनाथ कपूर, डॉ. रामाश्रय रत्नेश और डॉ. शिवकुमार अवस्थी ने परिश्रमपूर्वक महत्त्वपूर्ण हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रयुक्त उन शब्दों, मुहावरों और कहावतों का कोश तैयार किया जो प्रचलन से बाहर होते जा रहे हैं। जिस दौर में हिन्दी पत्रकारिता पर अँगरेजी शब्दों के अवांछनीय प्रयोगों की भरमार ने भाषा संकट उत्पन्न कर दिया है, उस दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण काम हुआ। माधवराव सप्रे समाचार-पत्र संग्रहालय, भोपाल में उपलब्ध दिनमान, धर्मयुग, कल्पना, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, रविवार, ज्ञानोदय नवनीत, कादम्बिनी, चाँद, माधुरी, कर्मवीर, सुधा, सरस्वती, त्यागभूमि, मतवाला, हिन्दी प्रदीप, विशाल भारत आदि पत्रिकाओं और मूर्धन्य संपादकों की ग्रंथावलियों से शब्द-संचयन का कार्य किया गया। उनके अर्थ दिए गए। इससे स्पष्ट हुआ कि हिन्दी में प्रभावी लेखन के लिए प्रचुर शब्द संपदा विद्यमान है। जरूरी होने पर अन्य भाषाओं से केवल वही शब्द ग्रहण करना चाहिए जो हिन्दी में उपलब्ध नहीं हैं। इसी श्रृंखला में 'हिन्दी की वर्तनी उपयोगी पुस्तक संत समीर ने तैयार की। इससे हिन्दी के प्रवाहमयी प्रयोग का पथ प्रशस्त हुआ।

वर्तमान हिन्दी पत्रकारिता में अँगरेजी शब्दों की घुसपैठ का सिलसिला चल रहा है। इसे नई पीढ़ी की भाषा का नाम दिया जा रहा है। दरअसल, यह बाजार की भाषा गढ़ी जा रही है। भाषा बाजारू होते जाना संस्कृति संकट का कारण बन रहा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आगाह किया था-'हिन्दी विकृत करना भी एक लाक्षणिक प्रयोग है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि हिन्दी में अनुचित शब्दों का अनुचित ढंग से प्रयोग करके कोई उस भाषा को बिगाड़ता है। वस्तुत: बिगाड़ता है तो उस जन समूह को जिसकी भाषा हिन्दी है।'

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, मुख्य मार्ग क्रमांक 3, पत्रकार कॉलोनी के सामने, भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.-7999 460151

बालों की दवाई, शिकाकाई, कहाँ से आई

–अजित वडनेरकर

त्वचा और बालों की देखभाल के देसी तरीकों का उल्लेख आयुर्वेद में है। शिकाकाई, रीठा, आँवला जैसी दर्जनों वनौषधियों का प्रयोग हिन्दुस्तान में होता आया है। शिकाकाई बेहद लोकप्रिय औषधि है और इसके इस्तेमाल की विधियाँ अब विदेशी कास्मेटिक्स में भी नज़र आती हैं। मूलत: यह द्रविड़ भाषा का शब्द है और तमिळ के ज़रिए भारतीय भाषाओं में प्रसारित हुआ है।

कुछ बरस पहले आन्ध्र और तमिलनाडु के सीमान्त पर बसे महाराष्ट्र के सोलापुर शहर में जाना हुआ। वहाँ के पुराने बाज़ार में तरह-तरह की जड़ी बूटियाँ बिक रही थीं। कुछ दवाओं और तेल आदि के विज्ञापनों में बालों का जूड़ा प्रदर्शित था। सोलापुर का आन्ध्रप्रदेश से गहरा सम्बन्ध है। वहाँ तेलुगुभाषी बहुतायत में रहते हैं। बहरहाल, एक ऐसी दुकान पर भी पहुँचे जहाँ विशुद्ध रूप से बालों की देखभाल वाली जड़ी-बूटियाँ ही थीं। वहाँ जूड़े के लिए अनेक लोगों के मुँह से 'सिगा' अथवा 'सिगाई' शब्द सुना।

सिगा अथवा सिगाई का आशय वहाँ के दुकानदार ने सिर की चोटी की ओर इशारा करते हुए बताया था शेंडी। मराठी में शेंडी का अर्थ होता है जूड़ा या सिर के बीच लपेट कर रखी चुटिया। शेंडी बना है शिखण्डिका से। शिख+अण्ड में शिखण्ड यानी जूड़े का भाव है। शिख यानी सिर के सबसे ऊँचे हिस्से पर बालों से बनाया अण्डाकार गुच्छा यानी शिखण्ड। संस्कृत में किसी भी शिखर, कलगी, तुर्रा के लिए चूड़ / चूड़ा जैसे शब्द हैं। चोटी, चुटय्या, चुटीला जैसे शब्द इसी शृंखला में आ रहे हैं।

चुट् का अर्थ है काटना। शैशव के संस्कारों में मुण्डन भी प्रमुख है जिसके तहत बच्चे के बाल काटे जाते हैं। पुराने दौर में उसे चूड़ाकरण कहते थे। चूड़ यानी चोटी (अथवा सिर के बाल) उतारना। चूड़ा का ही अगला रूप जूड़ा है। पौराणिक पात्र शिखण्डी का सिका, सिकु, सिक्कम। बहरहाल, शिखण्डिका के शिख या शिखा से अचानक तेलुगू का 'सिगा' पकड़ में आ गया जो अन्यथा नहीं आता।

चार्ल्स फिलिप ब्राउन के तेलुगु कोश में सिगा और सिका दोनों की प्रविष्टि है और उसका अर्थ जूड़ा, चोटीगुच्छ, चूड़ा या शिखा आदि ही बताया गया है। तमिळ लैक्सिकन में इसके कई रूप प्रचलित हैं जैसे-सिका, सिक्कु, सिक्कम, सिकाईताटू, सिकरिन, सिकुरम आदि। इनके संस्कृत रूपान्तर की कल्पना की जा सकती है मसलन शिखा, शिखु, शिखरम्, शिखरिणी आदि। द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत की तत्सम शब्दावली के नितान्त देसी रूप इस तरह घुले-मिले हैं कि यह कहना कठिन है कि संस्कृत ने द्रविड़ को प्रभावित किया है या द्रविड़ ने संस्कृत को।

काई यानी फल, सिका यानी शिखा। गौरतलब है कि तमिल में काई यानी kay फल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अनेक सन्दर्भों में इसका अर्थ कच्चा फल, सूखा फल भी दिया गया है। तो सिका-काई का अर्थ हुआ शिखा-काई अर्थात् चूड़ा-फल या शिखाफल। ज़ाहिर है कि इस नामकरण के पीछे बालों के काम आने वाले फल से ही तात्पर्य है। शिकाकाई का वानस्पतिक नाम अकेशिया कोनसिन्ना है। शिकाकाई ज्यादातर गर्म जलवायु में पैदा होने वाली झाड़ी है। इसका तेल भी बनाया जाता है और इसे पीस कर विभिन्न प्रकार की औषधियाँ भी बनाई जाती हैं। ध्यान रहे, शिव को शेखर कहते हैं क्योंकि वे सिर पर जटा बाँधते हैं। इसका रिश्ता गंगा से है। इसीलिए उसका नाम शिखरिणी भी है। पूर्वांचल के लोग अपने नाम के साथ शेखर लगाना पसंद करते हैं। इसी तरह अनेक दक्षिण भारतीय भी अपने नाम के साथ सेकरन् (तमिल, मलयाली), शेखरन् (तेलुगु) उपनाम लगाते हैं।

जी-37, फेज-1, ग्रीन मीडोज,
भोजपुर रोड, पी. ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

हिंदी और लोक भाषाएँ

अतिथि संपादक

श्रीराम परिहार

लोक भाषा बहता नीर

– श्रीराम परिहार

प्रकृति की एक संस्कृति होती है। प्रकृति की संस्कृति के मण्डप में मानव संस्कृति का जन्म हुआ है। मानव को प्रकृति से उपहार स्वरूप जो अनुपम वरदान मिला; वह वाक् शक्ति है। वाक् के ही स्वर, संकेत, लिपि, वर्ण, अर्थ रूप में वर्ण–शब्द–अर्थ की युति का रूप भाषा है। मानव की संस्कृति है। अत: मानव की अभिव्यक्ति की भी भाषा के रूप में एक संस्कृति होती है। इस अर्थ में भाषा संस्कृति की संवाहक है। भाषा संस्कृति ही है। संस्कृति गतिशील होती है। उसमें देश काल के अनुसार कुछ छूटता है। कुछ नया जुड़ता है। कुछ है जो निरंतर संग–साथ चलता रहता है। यह हमेशा संग–साथ रहकर स्वयं जीवित रहकर संस्कृति को जीवित बनाए रखने वाला ऊर्जा–स्रोत मूल है। वही मूल्य हैं। वही संस्कृति का रिक्थ है। भारतीय संस्कृति का वही मूल सनातन है। वही मूल्य शाश्वत है। संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक आधार भाषा है। अत: भाषा भी निरंतर विकसित होने वाली संस्कृति–संगिनी है। भाषा स्थिर नहीं होती है। वह कभी ठहरी नहीं है। हाँ उसका रूप और स्वरूप विशेष, काल विशेष में अपना समृद्ध भाषा संसार रच लेता है। उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति उस काल की पहचान और सम्पदा बन जाती है। उसी में संस्कृति के उपादान– अध्यात्म, धर्म, दर्शन, पुराण, साहित्य, कला, कर्म, वाणी पाते हैं। अभिव्यक्त होते हैं।

कोई भी भाषा कूप–जल नहीं होती है। विशेषकर संस्कृत तो नहीं है। कबीरदास ने संभवत: कूप–जल का अर्थ, संस्कृत के सम्बन्ध में कुएँ के ठहरे हुए जल के रूप में नहीं लिया है। उनका आशय संगृहीत जल से है। कुएँ का जल भी ठहरा हुआ नहीं रहना। ठहरा हुआ आभासित होता है। कुएँ में नया जल झिरों से, स्रोतों से निरंतर आता रहता है। कुएँ का जल निरंतर उलीचा जाकर जन–जन के, जीव–जीव के प्राण–सिंचित करता है। संस्कृत के सम्बन्ध में भी कबीरदास ने ज्ञान के संचित भण्डार के ही अर्थ में कहा है। ज्ञान के मौलिक स्रोत संस्कृत के कूप में हैं। उसके साहित्य–जल से आदिम वैदिक युग से आज तक जन–मानस और संस्कृति रस–रस हो रही है और पुष्ट होती रहेगी। कबीरदास का मन्तव्य संस्कृत को कूप–जल कहने के अर्थ में ज्ञान–राशि का संचित कोष ही रहा है। भक्त कबीर जैसा शब्द और सर्जक–साधक अपनी कहन और वाणी में अत्यन्त सतर्क और गम्भीर है। कबीर सन्त और भक्त एक साथ हैं। विभेद नहीं है। जो भक्त है, वह सन्त होगा ही। जो सन्त है वह प्रकृति और प्रवृत्ति में भक्त होगा ही। सब भाषाएँ बहता नीर होती हैं। काल विशेष और देश विशेष में वे कूप–जल के रूप में साहित्य–संस्कृति का संग्रहण बनती जाती हैं। कूप के समान पर उपकारी और कल्याणक बनकर मन–प्राण को सींचती रहती हैं।

भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में प्रवाहमान स्वरूप बहुत महत्ता का है। यह निर्विवाद है कि सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है। संस्कृत की जननी कौन? कोई भी भाषा आकाश से नहीं उतरती है। संस्कृत की कहन–बनक–गठन भी समाज से ही हुई है। समाज के भीतर रहने वाले मानुष से ही हुई है। उस समय के लोक से ही हुई है। संस्कृत के पहले कोई लोक की भाषा अवश्य रही है। उससे ही संस्कृत के शब्द–अर्थ–रूप का स्वरूप बना है। अत: देववाणी के पूर्व भी भारतीय लोक की लोक भाषा अवश्य रही है। भले ही उसे नाम–रूप से हम और भाषा–इतिहास परिचित न हों। क्योंकि भाषा का रूप–गठन, स्वरूप –निर्धारण और विकास धीरे–धीरे होता है। अत: संस्कृत भी एक वाक् और वद् की प्रक्रिया से निकलकर ही देववाणी की व्यास–पीठ पर आसीन हुई है। यह प्रक्रिया निश्चित ही लोक–उद्भूत रही है। जब संस्कृत परिष्कृत रूप में प्रतिष्ठित होकर साहित्य–सर्जन और साहित्य–चिन्तन की भाषा के रूप में संस्थापित हुई है। लोक की निरन्तर भाषा सर्जन प्रक्रिया के कारण पाली का रूप–आकार सामने आता है। पाली भी बहुत समय तक लोक–भाषा के रूप में ही संचालित होती रही होगी। पाली में साहित्य–सर्जन होने लगा और वह ज्ञान–विज्ञान–उपदेश की भाषा बन गई; तब लोक की गतिशील भाषा–सर्जन–प्रक्रिया से प्राकृत भाषा का उद्भव होता है। बहुत समय तक प्राकृत लोक–भाषा के रूप में समाज में समादृत रही है। प्राकृत साहित्य–रचना और परिनिष्ठित ज्ञान की भाषा हुई; तब अपभ्रंश का उद्भव होता है। अपभ्रंश भी लोकभाषा दीर्घकाल तक

लब्ध प्रतिष्ठ निबंधकार, लोक साहित्य के अध्येता

बनी रहती है। अपभ्रंश में साहित्य साधना, ज्ञान-साधना, तंत्र-साधना, सिद्ध-साधना होने की प्रक्रिया में लोक ने अपभ्रंश के नए रूप में हिन्दी का जन्मोत्सव मनाया। हिन्दी का जन्म तो सरहपाद के समय हुआ, लेकिन गर्भावस्था का काल दो-तीन सौ वर्षों का रहा है। यह एक लोकभाषा से भाषा बनने की सहज किन्तु निरन्तर प्रक्रिया है।

प्रत्येक लोक भाषा की भी एकाधिक बोलियाँ हैं। मैथिली, राजस्थानी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी आदि-आदि की भी एक ही क्षेत्र या एक ही प्रान्त के अन्तर्गत दो-दो, तीन-तीन, उपबोलियाँ हैं। राजस्थानी-मेवाड़ी, हाड़ोती, डोंढाड़ी, मारवाड़ी, मेवाती आदि। छत्तीसगढ़ी-सरगुजिहा, जसपुरी, कुडुख, पंडो, बिंजवारी, लरिया आदि। ब्रज-कन्नौजी आदि। मैथिली-अंगिका आदि। हरियाणवी-अहीरवाती, बागड़ी आदि। हिमाचली-बिलासपुरी, काँगड़ी, चम्बयाली, लाहौली, आदि। गढ़वाळि-जौनसारी, बधाणी, राठी, रमोल्या, दयोल्या, रवांल्टा, भोटिया आदि। बुन्देली-लुधान्ती, पँवारी, खटोला, बनाफरी, कुंद्रा, निभट्टा, भदौरी आदि। मालवी -सेंधवाड़ी, दशोरी आदि। निमाड़ी-क्षेत्र एवं जाति के अनुसार गोंडी, बारेली, भीली, कोरकू आदि। यह सब जमीन से निपजी और लोक-प्रज्ञा से रचित विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसमें लोक सबसे पहले और मूल में है। साधक, सिद्ध, योगी, यति, संन्यासी, बटुक, भक्त, सन्त, उपदेशक, प्रचारक, ज्ञानी, तपसी, कलाकार बाद में हैं। इन सब की भूमिका लोक भाषा के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त, एक देश से दूसरे देश में प्रसार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय रहती है। लोक भाषा के साथ-साथ ये संस्कृति के भी संवाहक और प्रचारक होते हैं। अत: भाषा-साहित्य की रचना में लोक भाषा का प्रवाह अनवरत-अविरल रहा है।

साहित्येतिहास में लोक भाषा के लिए देशी, देश्य, देशज शब्दों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत साहित्य की भाषा को लेकर भी वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत संबोधन प्रयुक्त होता रहता है। यह लौकिक संस्कृत, वैदिक संस्कृत की लोक-सम्पृक्त विकास-कड़ी है। इसी तरह 'प्राकृत और देशी', 'अपभ्रंश और देशी' की पारस्परिकता पर भी विचार किया जाता रहा है। देशी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नाट्यशास्त्र में हुआ है। भरत मुनि के अनुसार जो शब्द संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से भिन्न हों, उन्हें देशी मानना चाहिए। भरतमुनि के इस मत से अधिकांश परवर्ती विद्वान सहमत हैं। 'देशी' का प्रयोग कहीं पर 'शब्द' के लिए हुआ है। कहीं पर 'भाषा' के लिए हुआ है। 'शब्द' के रूप में यह 'विशेषण' है। 'भाषा' के रूप में 'संज्ञा' है। 'देशी भाषा' कहते हैं तो वह 'संज्ञा' रूप है। पादलिप्त ने 500 ई. के आसपास अपने ग्रन्थ 'तरंगावई कहा' में प्राकृत भाषा को 'देसी वयण' कहा है-'पायय भाषा रइया माहट्टय देसी वयण णिवद्धा'। (डॉ. उपाध्ये द्वारा लीलावई की भूमिका) स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' की कथा देशी भाषा में कही 'णविणयामि देशी महापुराण'। (1-8-10) लोक की अपनी भाषा साधारण रूप से अपनी स्वाभाविक सक्रियता में विकसित होती रहती है। एक लोकभाषा जब परिनिष्ठित रूप से साहित्य-सर्जन की क्षमता प्राप्त कर लेती है, तो लोकभाषा या जनभाषा या देशी भाषा अपनी लोकसंगत यात्रा पर बढ़ जाती है। लोक भाषा से भाषा और पुन: अगला चरण लोक भाषा का, यह क्रम सतत् चलता रहता है।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से पहले छुटपुट रूप में देशी भाषा का उल्लेख प्रान्त या क्षेत्र या भूभाग विशेष के सन्दर्भ में ही हुआ है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में देश शब्द का उल्लेख प्रान्त के अर्थ में ही किया है-'एङ प्राचांदेशे।' (1-1-75) वेदव्यास ने महाभारत में अनेक भाषाओं में व्यवहार का संकेत किया है- 'नाना चर्म मृग छिन्ना, नाना भाषाश्च भारता:।' **(महाभारत, शल्यपर्व, अ. 46)** बारहवीं शती के वैवाकरणाचार्य हेमचन्द्राचार्य ने देशी भाषा के शब्दों की एक 'नाममाला' ही तैयार कर दी। 'नाममाला' में ऐसे शब्द निर्देशित किए हैं-जिनकी व्युत्पत्ति प्रकृति-प्रत्यय नियम से नहीं हुई है। उन्होंने देशी शब्द उन्हें माना जो लक्षण सिद्ध नहीं होते हैं। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार-'देशी वे शब्द हैं, जो व्याकरण के नियमों से अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय आदि से सिद्ध नहीं होते। जो संस्कृत कोषों में भी नहीं पाए जाते। जिनकी सिद्धि गौणी लक्षणा से भी सम्भव नहीं हो सकती।' **(देशी नाममाला, 1-3)**

विवेचित प्रसंगों के आधार पर कह सकते हैं कि देशी शब्द लोक की ध्यान्यात्मक प्रवृत्ति, क्रियमाणता, आकार और प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर लोक द्वारा निर्मित वे शब्द हैं; जो न तो संस्कृत कोष में पाए जाते हैं; न ही व्याकरण के नियमों में व्युत्पत्ति और प्रत्यय के आधार पर सिद्ध होते हैं। ये अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति में खाटी लोकज (देशज) हैं। इनके आधार पर या इनकी बहुलता के आधार पर रचित भाषा लोकभाषा या देशीभाषा कही जा सकती है। ये शब्द और यह भाषा लोकभूमि की उपज है। देशज शब्दों की प्रकृति और लोकभाषा की बनक तथा अर्थवत्ता मिट्टी के रंग में रँगी हुई और भूमि की गंध में सनी हुई होती है।

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में भारतीय भाषाओं के उदय के साथ ही लोक भाषा को 'देशीभाषा', 'ग्राम्यगिरा' रूप में सम्बोधित किया गया है। विद्यापति ने अपनी साहित्य-भाषा को 'देसिलबयना' कहा है। तुलसीदास ने अपनी भाषा को 'ग्राम्यगिरा' सम्बोधित किया। कबीर ने अपनी भाषा को 'बहता नीर' कहा है। मीराँ ने राजस्थानी में ही गिरधर के प्रति आत्म निवेदन किया-'बाला मैं वैरागण हूँगी।' सन्त ज्ञानेश्वर ने देशी महाराष्ट्री का प्रयोग किया। गुरु नानकदेव ने

भारत के क्षेत्र विशेष की बोली को अपनी अमृतवाणी का आधार बनाया। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक प्रान्त में, प्रत्येक लोक भाषा के अनेक-अनाम-अपरिचित, अलमस्त भक्त, कवि, लोक गायक, कलाकार हैं, जो लोकभाषा के माध्यम से ही अपनी आत्माभिव्यक्ति करते रहे हैं। कर रहे हैं। किसान, श्रमिक, सामान्य जन सब इन लोकभाषाओं के शिल्पी हैं। यह प्रवाह निरन्तर है। अविरत है। क्योंकि संस्कृति अविरत है। संस्कृति के बीच में बैठा-सक्रिय जीवन निरन्तर है। शब्द की भी अपनी संस्कृति होती है। वह अपने अर्थ में खुलती है। अर्थ-विस्तार में प्रकाशित होती है।

देशज शब्द, देशी भाषा, लोकभाषा के आदिम स्रोत की ओर बढ़ते जाते हैं, तो भारत के मूल जन, मूल लोग, मूल निवासी मिलते हैं। ये मूल निवासी गिरिजन हैं। वनजन हैं। वनवासी हैं। माटीपुत्र हैं। धरतीपुत्र हैं। ग्राम्यजन हैं। इनके ही और इनके ही अभिव्यक्ति-उछाह से लोकभाषाओं, कलाओं, लोकविज्ञान, लोककौशल और संस्कृति की रचना हुई प्रतीत होती है। ऐसी प्रतीति भी होती है। हमारी समस्त भारतीय लोकभाषाओं की संस्कृति-रचना में इन्हीं माटी पुत्रों का लोक-मानस, इनकी ज्ञान-ज्योति, इनकी शब्द-रचना-क्षमता, इनकी भाषा, अभिव्यंजना, इनकी आत्माभिव्यक्ति इनका सहृदय-उच्छ्वास तरलायित होता है। लोक भाषा हिन्दी और भारतीय भाषाओं की सहायक स्रोतस्विनी हैं।

लोक भाषा या भाषा मानव-निर्धारित सीमाओं के पार जाती रहती हैं। लोक भाषा भौगोलिक रेखाओं का अतिक्रमण करती है। जीवन के व्यापकत्व और फैलाव के साथ ही उसका भी व्यास बढ़ता जाता है। वह भूगोल के साथ नहीं; व्यक्ति-जीवन के साथ चलती है। मनुष्य की आवा-जाही के साथ ही वह भी आती-जाती है। लोक भाषा मिट्टी की गन्ध लेकर जन्मती है। पुष्प की सुगन्ध की तरह फैलती है। तितलियों के पंखों पर सवार होकर यात्रा करती है। भँवरों की गुञ्जार की तरह अनेक मानव-व्यवहारों और कला-रूपों की अभिव्यक्ति में स्फुरित होती है। एक लोक भाषा के कई शब्द पड़ोसी लोक भाषा या दूर बसी हुई भाषा के घर-आँगन में चहचहाते रहते हैं। वे शब्द उसी लोक भाषा के अपने भी हो जाते हैं। वे उस लोक भाषा के अपने ही होते हैं। लोक भाषा निमाड़ी के अनेक शब्द मराठी में हैं। गुजराती में हैं। राजस्थानी में हैं। मारवाड़ी में हैं। मालवी में तो अनेक हैं। यह भी है कि इन लोक भाषाओं के ये शब्द निमाड़ी में हैं। लोक भाषा निमाड़ी का 'अरु' शब्द ब्रज अवधी में मिलता है। 'अरु आवजो'। और आइए। 'छे' क्रियापद गुजराती में भी हैं। 'सू छे'। क्या है। निमाड़ी में होगा-काई छे। ऐसे ही यही क्रियापद 'छे' भुआणी में भी है। लोक भाषा निमाड़ी के कुछ शब्द तो नेपाली में भी मिलते हैं। कहाँ तो निमाड़ क्षेत्र और कहाँ नेपाल। इसी तरह एक लोक भाषा अपने पड़ोस की लोक भाषा से शाब्दिक और आत्मीय सम्बन्ध बनाती है। वहाँ न भेद है। न विभेद है। न दीवार है। न परकोटा है। वहाँ लोक मन का विस्तार है। लोक भाषा बहता नीर है। वह लोक गगन में निश्छल-सहज-तरल-अकुण्ठ बहती है। जल में फाँक नहीं होती है। आकाश में दीवार नहीं होती है।

एक लोक भाषा के कुछ शब्दों का दूसरी भाषा में ठीक-ठीक अनुवाद नहीं हो सकता। शब्दानुवाद तो क्या भावानुवाद भी कठिन है। लोक अपने क्षेत्र, प्रकृति और परिवेश के आधार पर लोक भाषा के शब्दों को गढ़ता है। इस क्रिया में उस क्षेत्र के लोक के मानस की विशेष भूमिका होती है। बुद्धि-कौशल का सहयोग तो उसमें स्वाभाविक होता ही है। शब्द का अनुवाद हो सकता है। लोक-मानस का अनुवाद कैसे होगा। 'ढाण्टाली', 'किचकिच', 'दचकना', 'डेंडलाना', 'कचघाण', 'बसोंदो', 'दखिणाँ रो चीर' आदि लोक भाषा निमाड़ी के शब्दों का अनुवाद कठिन है। हिन्दी में भी इनके सटीक अर्थ प्रकट करने वाले समानार्थी शब्द खोजना-बनाना कठिन है। इनके स्थान पर ये ही शब्द ठीक बैठते हैं। प्रत्येक लोक भाषा के क्रिया, प्रकृति, आकार, ध्वनि के आधार पर लोक-मानस द्वारा रचे गए शब्दों का सटीक शब्दानुवाद और भावानुवाद नहीं हो सकता है। निकटतम या सांकेतिक अर्थ भले ही लगा लें। लोक भाषा के कुछ या अनेक शब्दों के पर्यायवाची/समानार्थी जस के तस नहीं होते हैं। यह लोक भाषा की अपनी विशेषता है। लोक भाषा, लोक भाषा ही है। उसका अपना वैशिष्ट्य है। अपना रूप-स्वरूप है। अपनी कद-काठी है। अपनी अस्मिता है।

लोक भाषा व्याकरण के नियमों को शिथिल भी करती है। कुछ शब्दों एवं क्रियापदों को तो वह अपने लोक, अपनी जलवायु, अपने भूगोल, अपनी प्रकृति और अपने लोक और अपने लोक के कण्ठ-पथ के आधार पर तथा जिह्वा की लोच के अनुसार सरल बना लेती है। अर्थ-संकुचन और अर्थ-विस्तार स्थिति-परिस्थिति, कर्म-क्षेत्र और ध्वन्यात्मकता के आधार पर होता रहता है। लोक भाषा अपने क्षेत्र से बाहर और भाषा, प्रान्त एवं देश के बाहर और अधिक अपनत्व भाव से व्यक्ति-व्यक्ति, मन-मन, संस्कार-संस्कृति को जोड़ती है। दूसरे भाषा क्षेत्र में या विदेश में अपनी लोक भाषा में बात करते हुए दो व्यक्ति या व्यक्ति समूह सुनाई पड़ जाए तो उसके पास व्यक्ति या हम हुमसकर जाते हैं। उनसे पारिवारिक सम्बन्ध बन जाता है। घर-बार, यात्रा, उद्देश्य, कार्य, कब-कहाँ-कैसे सबके बारे में पूछ लेते हैं। लोक भाषा जोड़ती है। अपरिचित को परिचित में बदल देती है। दूरस्थ को निकटतम ला देती है। यह शब्द का शब्द से, अर्थ का अर्थ से, संस्कार का संस्कार से, संस्कृति का संस्कृति से जुड़ाव है। लोक भाषा मन-वाणी है।

माधव राव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल और मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा समिति, हिन्दी भवन न्यास द्वारा भारतीय भाषा महोत्सव के अनुष्ठान के क्रम में जिन लोक भाषा मर्मज्ञों ने अपने हिन्दी और लोकभाषाओं से सम्बन्धित आलेख भेजे हैं, उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। इसमें लगभग 13 लोक भाषाओं के आलेख हमें प्राप्त हो सके हैं, जो हिन्दी और अन्य लोक भाषाओं के अंतर्संबंध पर प्रकाश डालते हैं। इनसे हिन्दी के साथ उनकी पारस्परिकता का परिचय तो मिलता ही हैं, साथ ही उन लोक भाषाओं की अन्त: प्रकृति और रचना-प्रकृति भी आलोकिक होती है। सभी लोकभाषा विद्वानों के प्रति साधुवाद। सप्रे संग्रहालय के संस्थापक एवं निदेशक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर जी, हिन्दी भवन न्यास के अध्यक्ष श्री सुखदेव प्रसाद जी दुबे एवं हिन्दी भाषा-साहित्य को समर्पित श्री कैलाशचन्द्र जी पन्त के कुशल मार्गदर्शन में यह हिन्दी और लोकभाषाओं के साहित्य तीर्थ का पुण्य कार्य सम्पन्न हो सका है।

शब्दब्रह्मणि निष्णात: परं ब्रह्माधिगच्छति। (ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)।

इति शुभम्।

आजाद नगर
खण्डवा-450001 (म.प्र.)
मो. - 94253 42748

बी-फार्म
'अक्षरा' के स्वामित्व तथा अन्य ब्यौरे

प्रकाशन स्थान	:	भोपाल
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक	:	श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन 1, एम. पी. नगर, भोपाल, (म.प्र) फोन : 0755-2550752
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
प्रकाशक	:	कैलाशचन्द्र पन्त
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	मंत्री संचालक, म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल (म.प्र)
प्रधान संपादक	:	मनोज कुमार श्रीवास्तव
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल (म.प्र)

अन्य व्यक्तियों के नाम और पते जिनका पत्रिका पर स्वामित्व है / अधिकार है / शेयर है :
म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल-462002

मैं कैलाशचन्द्र पन्त एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिक से अधिक जानकारी और मेरे विश्वास में ठीक है।

कैलाशचन्द्र पंत
(प्रकाशक)

ब्रज भाषा और हिंदी का अंतर-संबंध

– सोमदत्त शर्मा

ब्रजभाषा, खड़ी बोली (कौरवी) और हिंदी तीनों एक ही भाषा की तीन अवस्थाएँ हैं। ब्रजभाषा अपनी औकारांतता, तत्सम शब्दावली और आंतरिक परिवेश के कारण पहचानी जाती है। औकारांत शब्दावली के कारण कई भाषा विज्ञानी कन्नौजी को अलग मानते हैं लेकिन डॉ. धीरेंद्र वर्मा इसे ब्रजभाषा ही मानते हैं। कौरवी या खड़ी बोली एक समय मेरठ और बागपत के आसपास बोली जाने वाली लोक बोली रही हो लेकिन आज वह पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की कुल आठ बोलियों का प्रतिनिधित्व करती है और, जिसे वृहत्तर संदर्भ में हिंदी कहा जाता है वह आज शौरसैनी अपभ्रंश की पाँचों उपभाषाओं– पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी की कुल सत्रह बोलियों की प्रतिनिधि भाषा है। आज की मानक भाषा के रूप में जिस हिंदी की प्रतिष्ठा है वस्तुत: वह नए परिवेश में ढली खड़ी बोली और वृहत्तर संदर्भ में विकसित हिंदी का सम्मिलित रूप है। (1. **भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी पृ. 230-231**) इसमें अरबी, फारसी, अंग्रेजी और उर्दू के शब्द भी कालांतर में जुड़ते चले गए। इस तरह एक विस्तृत फलक वाली भाषा के रूप में उभरी हिंदी आज भारत की समृद्धतम भाषाओं में से एक होकर सामने आई है। अंत: इसमें ब्रज और खड़ी बोली दोनों के तत्व मौजूद हैं। ब्रज भाषा और हिंदी के अंतर-संबंधों को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

भाषा का स्वरूप ध्वनियों (स्वर और व्यंजन), शब्द समूह, रूप संरचना और वाक्य विन्यास जैसी व्याकरणिक संरचनाओं से बनता है। अर्थ को भाषा का पाँचवाँ अंग माना गया है। अर्थ से ही उस समाज की अनुभवशीलता और सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के विकास की उच्च अवस्था का पता चलता है जिसमें भाषा विशेष का प्रचलन रहता है। उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा में 'तैल' शब्द तिल के रस के संदर्भ में प्रयुक्त होता था। लेकिन अनुभव बढ़ा तो हिंदी में सरसों, नारियल आदि के रस के संदर्भ में भी प्रयुक्त होने लगा। यहाँ तक कि किरासन के लिये भी 'मिट्टी का तेल' शब्द का प्रयोग होने लगा। ध्यान देने की बात है कि 'अर्थ' निर्धारण में सिर्फ भौतिक अनुभवों का ही समावेश नहीं होता बल्कि समाज की उस 'ध्रुव चेतना' का भी समावेश रहता है जिसे सहस्राब्दियों में अर्जित किया जाता है। इस चेतना को 'चिति' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। (2. **श्रीसहास्रिका, डॉ. ई. इलापवुलूरि, श्लोक 22**)

अर्थ निर्धारण में इसकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। उदाहरण के लिए 'भक्ति' शब्द भारत की 'ध्रुव चेतना' का महत्त्वपूर्ण शब्द है। 'नारद भक्ति सूक्त' में यह शब्द आराध्य के प्रति परमप्रेम या आत्मनिवेदन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। (3. **नारदभक्ति सूक्त, 12**)

हिंदी साहित्य के भक्ति काल में यह आत्मनिवेदन राम और कृष्ण जैसे आध्यात्मिक चरित्रों के प्रति किया गया है। तुलसीदास की रामचरितमानस और सूरदास के पद इसका उदाहरण हैं। लेकिन भक्तिकाल का यह केंद्रीय भाव समय बदलने पर हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में 'भारत माता' के प्रति प्रकट होने लगा। आधुनिक काल में परम्परागत आराध्यों के अतिरिक्त 'मातृभूमि का स्वरूप' भी एक देवता के रूप में उभरा है। (4. **वासुदेवशरण अग्रवाल रचना संचयन, संपा. कपिला वात्स्यायन, पृ. 175**) और स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में लिखे गए राष्ट्रीय हिंदी साहित्य में उसके प्रति भी भक्ति भाव प्रकट किया गया है।

स्वर ध्वनियाँ–प्राय: सभी भाषा वैज्ञानिक इस तथ्य से सहमत रहे हैं कि अपभ्रंश के समान ही ब्रज भाषा और आदिकालीन हिंदी में प्रयुक्त होने वाले मूल स्वरों की संख्या आठ है। (5. **भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा-भोलानाथ तिवारी**)

ये स्वर हैं –

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ। (**भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी पृ. 231**)

ब्रज भाषा और साहित्य के अध्येता

आगे चलकर आदिकालीन हिंदी (1000ई.–1500 ई.) में इन स्वरों के अतिरिक्त दो नए स्वर 'ऐ', 'औ' और विकसित हो गए जो संयुक्त स्वर थे और जिनका उच्चारण अए (ए अर्धविवृत), तथा 'अओ' था ।' (6 वही)

व्यंजन ध्वनियाँ–यही समानता दोनों की व्यंजन ध्वनियों में भी रही। उच्चारण की दृष्टि से व्यंजन ध्वनियों में बस इतना बदलाव आया कि जहाँच, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे आदिकालीन हिंदी में आकर वे स्पर्श संघर्षी हो गए और तब से अब तक स्पर्श संघर्षी ही हैं। सम्भवत: ब्रज भाषा में भी यही स्थिति रही है। (7 वही)

इसी तरह संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में जोन, र, ल, सव्यंजन दंत्य ध्वनियाँ थीं आदि कालीन हिंदी में वर्त्स्य हो गईं। (8 वही)

जैसे आदिकालीन हिंदी में दो नए स्वर विकसित हो गए थे उसी तरह दो नए व्यंजन भी आदिकालीन हिंदी में विकसित हो गए–ड और ढ। ब्रज भाषा में भी ये ध्वनियाँ यथावत मिलती हैं। (9 वही)

शब्द समूह :– हिंदी ने अपनी आदिकालीन अवस्था में अपभ्रंश से बहुत कुछ ग्रहण किया ब्रज भाषा भी इस अर्थ में पूर्ववर्ती भाषाओं की ऋणी रही। फिर भी परवर्ती काल में हिंदी और ब्रज भाषा का स्वरूप भिन्न दिखाई देता है।

'ब्रज भाषा और खड़ी बोली का उदय लगभग साथ ही हुआ। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज भाषा खड़ी बोली से पहले लोकप्रिय तथा प्रौढ़ हो गई। खड़ी बोली उठी तो बहुत पहले ही लेकिन एक तो जन्म के साथ ही इसे मातृभूमि छोड़कर दक्षिण में प्रवासी होना पड़ा, दूसरे यह शुरू–शुरू में विदेशी भाषा भाषियों के हाथ पड़ गई, तीसरे विदेशी धर्म प्रचार का साधन बन गई और चौथे संयोग से सामान्य जन समुदाय से दूर नगर और राज दरबार में बँध गए। इसलिए आरम्भ में इसका उत्थान ब्रज भाषा की अपेक्षा मंद पड़ गया क्योंकि खड़ी बोली के ठीक विपरीत ब्रज भाषा का विकास उसकी ठेठ जन्म भूमि में ही हुआ। उसे संस्कृत की विशाल परम्परा का आधार प्राप्त हुआ, वैष्णव भक्ति के प्रचार का गौरव और सबसे बढ़कर लोक हृदय के प्रतिनिधि भक्त कवियों का सम्बल मिला।' (10. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, डॉ. नामवर सिंह, पृ., 101)

हम देखते हैं कि 16 वीं शताब्दी से पहले की भाषाओं में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द ग्रहण करने की प्रवृत्ति मिलती है। वैष्णव धर्म के उत्थान के बाद इस प्रवृत्ति में बदलाव आया। धार्मिक आंदोलनों के लिए शास्त्रार्थ और प्रवचनों का चलन बढ़ा। इसका असर यह हुआ कि रसखान जैसे मुस्लिम कवियों में भी संस्कृत शब्दों को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ी। मुस्लिम सूफी कवियों की रचनाओं में उपलब्ध संस्कृत शब्द इस बात की गवाही देते हैं कि उन दिनों जन साधारण के बीच भी इन शब्दों का प्रचलन था। 19 वीं शती तक आते–आते यह स्थिति और मजबूत हुई। सुरेंद्र माथुर ने इसके कारण गिनाए हैं। जैसे ये रचनाकार संस्कृत के पठन–पाठन के प्रचलन के बीच शिक्षित हुए थे। ये अपने धर्म और संस्कृति के प्रति आस्थावान थे? दैनिक जीवन के उपनयन संस्कार, विद्यारम्भ या विवाह संस्कार जैसे अनेक कर्म संस्कृत आचार्यों से कराए जाते थे। संस्कृत की सूक्तियों के उद्धरण तथा तत्सम और पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को विद्वत्ता का परिचायक मान लिया जाता था। इन्हीं सब कारणों से उनका यह मत बना कि–'ब्रज भाषा के समर्थक प्रेमियों ने संस्कृत के सैकड़ों शब्द तत्सम रूप से अपनाए।सूर ने अपने काव्य में दूरदर्शिनी बुद्धि का परिचय देने के लिये 80 प्रतिशत शब्दों को अपनाया। परंतु 19 वीं शताब्दी के ब्रजवासी कवियों ने 15प्रतिशत–20प्रतिशत से अधिक नए तत्सम शब्द नहीं ग्रहण किए।' (11. उन्नीसवीं शती की ब्रजभाषा, सुरेंद्र माथुर, पृ. 68)

उदाहरण के लिए–भूख, प्यास, खान–पान सम्बन्धी शब्द–

सरस (जगद्विनोद 447)
रसाल (काव्यनिर्णय 2/45)
गोरस (जग्द्विनोद 138)
तंदुल (पद्माभरण 332)
नीर (वही, 332)
दाडिम (काव्यनिर्णय 8/26–22/17)

रहन–सहन, वेश–भूषा, काव्यालंकार सम्बंधी शब्द –

अंजन (पद्माभरण 146)
दर्पण (वही 268)
मानिक (वही 238)
केसर (वही 244)
मुक्ता (वही 271)
कुंडल (जगद्विनोद 619)

शरीर के अंग सम्बंधी शब्द–

अधर (हिम्मत बहादुर बिरुदवली 147)
मुष्टिका (वही 149)
गात (वही 151)
पलक (पद्माभरण 177)
भुज (वही 158)
उरजात (काव्य निर्णय 2/48,–10/40)
कुम्भ (वही 18/18)
पीतपाट (वही 10/5)
नितम्ब (वही 9/39)

पारिवारिक/सामाजिक स्थिति के द्योतक शब्द–

स्वामि (हिम्मत बहादुर विरुदावली 133)
अरि (वही 107)
हिंदूपति (वही 165)
भ्रात (पद्माभरण 299)

गुण और मनोदशा –

सगुण (पद्माभरण 104)
कोष (वही 305)
मृदु (वही 307)
क्रोध (जगद्विनोद 413)

चेतन प्राणी–

तुरंग (हिम्मत बहा विरुदावली 81)
मयूर (वही 81)
बक (वही 82)
मतंग (वही 83)
गज (वही 83)
हय (वही 87)

कोकिला (पद्माभरण 14)–इसी तरह जल, थल, नभचारी जीव जन्तु, प्रकृति के विविध अंग, पारिभाषिक शब्द, आदि ब्रज भाषा का शब्दकोश भरते रहे।

हिंदी में बहुत से विदेशी भाषाओं के शब्द भी आ गए। लेकिन परम्परा से प्राप्त ब्रजभाषा की शब्दावली को भी विषयानुसार उपयोग में लाया जाता रहा। बालकृष्ण शर्मा नवीन तथा निराला की कविताओं में ऐसे प्रयोग खूब मिलते हैं–

हे बलिवेदी, सखे प्रज्ज्वलित माँग रही ईंधन क्षण-क्षण। (नवीन)
और
एक बार बस और नाच तू श्यामा।
सामान सभी तैयार कितने ही हैं असुर,
चाहिये कितने तुमको हार?
कर मेखला मुंड-मालाओं से बन बन अभिरामा,
एक बार बस और नाच तू श्यामा।
भैरवी मेरी तेरी झंझा,
तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुझसे पंजा
लेगी खंग और तू खप्पर,
उसमे न रुधिर भरूँगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर भर (निराला)

इन कविताओं में 'सखे', श्यामा, असुर, मेखला, मुंडमाला, अभिरामा, भैरवी, खप्पर, रुधिर शब्द परम्परा से प्राप्त शब्द हैं। इन कविताओं का उल्लेख डॉ. तारकनाथ बाली ने अपने 'हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास' (पृ. 250) में किया है। **(12. हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास, डॉ. तारकनाथ बाली, पृ. 250)**

इसी कारण भक्ति आंदोलन का प्रारम्भ होने से अपभ्रंश की तुलना में ब्रजभाषा में तत्सम शब्दावली बढ़ने लगी थी। प्रारंभ में शायद हिंदी के संदर्भ में भी यही स्थिति रही हो लेकिन मुसलमानों के आगमन से पश्तो, फारसी और तुर्की भाषाओं का प्रभाव भी पड़ने लगा। इन भाषाओं के शब्द भी हिंदी में आने लगे और जैसा पहले कहा जा चुका है कि खड़ी बोली हिंदी अपने जन्मस्थान से दूर दक्षिण में फली–फूली इसलिए हिंदी का विकास कुछ विस्तृत भूमि पर हो सका। परिणाम यह हुआ कि –

फारसी की शिक्षा और दरबार में फारसी का प्रयोग होने से हिंदी, क, ख, ग, ज, और .फ ये पाँच नए व्यंजन हिंदी में प्रचलित हो गए। जैसे–कत्ल, कानून खत, कागज, फस्ल, गजल आदि। अरबी (शामिल, कबूल, शायर, जाहिर, जिक्र आदि), तुर्की (कराबीन, तोप, बेगम, हरौल आदि) अरबी फारसी के शब्द भी देशज रूप ग्रहण करते गए। यद्यपि ब्रज भाषा में बहुत कम ऐसे प्रयोग हुए हैं। लेकिन अस्पताल, कम्पनी, लाकडाक, हवलदार, सूबेदार और जमादार जैसे आंग्रेजी के शब्द तब ब्रज भाषा में भी प्रचलित होना एक नई सम्भावना के वायस बनने लगे थे। उदाहरण देखें–

अस्पताल–चलै ही किती ही जहाँ अस्पतालै

(हम्मीर हठ, छंद 191)

कम्पनी–ग्वाल कवि बाढ़े रार राठ घन घट्टन कौकम्पनीकम्पमाला हो छवि छायौ है

(कवि हृदय विनोद, छंद 46)

हम्मीर हठ (छंद 46) तथा षड्ऋतु वर्णन (35) में ऐसे और भी प्रयोग मिलते हैं।

इनमें हम देखते हैं कि शब्दांत का 'अ' कम से कम मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया। अब आम का उच्चारण 'आम्' हो गया। लेकिन कई शब्दों में जहाँ 'अ' के पहले संयुक्त व्यंजन था वहाँ 'अ' यथावत रहा। कुछ स्थितियों में अक्षरांत 'अ' का भी लोप होने लगा। पूर्वकालीन 'जपता' शब्द का उच्चारण अब 'जप्ता' हो गया।

वस्तुत: यह हिंदी का नया अवतार था जिसमें पहले की खड़ी बोली की तुलना में अधिक खुलापन था। इस खुलेपन को फोर्ट विलियम कालेज और लल्लुलाल जैसे भाषा मुंशी का साथ मिला।

इन्होंने खड़ी बोली गद्य को आगे बढ़ाया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ब्रज भाषा और खड़ी बोली हिंदी दोनों में रचनाएँ कीं। विषय वैविध्य होने से आधुनिक ब्रज भाषा काव्य का रंग भी बदलता दिखता है।

व्याकरण–भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि 1000 ई. या 1100 ई. तक आदिकालीन हिंदी का व्याकरण अपभ्रंश के निकट था। हिंदी में काफी रूप ऐसे थे जो अपभ्रंश के थे। समय के साथ अपभ्रंश के व्याकरणिक रूपों में कमी आती गई और हिंदी ने अपने रूप विकसित कर लिए। 1500 ई. तक आते–आते हिंदी अपने आप में समर्थ हो गए। वह अब अपभ्रंश की संयोगात्मकता की जगह वियोगात्मकता का रूप ले चुकी थी। संस्कृत, पालि, प्राकृत की तुलना में अपभ्रंश में नपुंसक लिंग की अस्पष्ट स्थिति थी लेकिन आदिकालीन हिंदी में नपुंसक लिंग का प्रयोग बिलकुल समाप्त हो गया।

मध्यकालीन हिंदी (1500 ई. से 1700 ई.) तक आते–आते अपभ्रंश के रूप हिंदी से पूर्णत: निकल गए। जो बचे उन्हें हिंदी ने आत्मसात कर लिया। हिंदी पहले की तुलना में अधिक वियोगात्मक हो गई। परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग और बढ़ गया। वाक्य रचना भी फारसी से प्रभावित होने लगी। **(13. हिन्दी विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, भोलेनाथ तिवारी, पृ. 233)**

विभक्ति प्रयोग–

1– 'उ' विभक्ति –

'उ' विभक्ति का प्रयोग अपभ्रंश से लेकर अवधी और ब्रज भाषा तक इसका अबाध प्रयोग मिलता है।

जैसे –स्यामु हरित दुति होय (बिहारी) /

पापु (बिहारी 266)

उसासु (बिहारी 314)

दक्खिनी हिंदी और खड़ी बोली में इसका लोप हो गया। ब्रज भाषा में सूरसागर में इसके प्रयोग कम मिलते हैं।

2–हिं–विभक्ति–ब्रज भाषा में इसका प्रयोग करण, अधिकरण, कर्म और सम्प्रदान सब जगह बहुतायत में होता है। सुरेन्द्र माथुर के अनुसार ब्रज भाषा में परसर्गों के प्रयोग के साथ प्राचीन विभक्तियों के विकसित रूप भी सुरक्षित रहे। जैसे–

राधेहिं सखी बतावत री (कर्म) (सूर, 3558)

राज दीन्हों उग्रसेनहिं (कर्म सम्प्रदान) (सूर, 3485)

ले मधुपुरहिं सिधारे (अधिकरण) (सूर. 3594)

धर्यो गिरिवर बाम कर जिहिं (करण) (सूर 3027)

(वही, सुरेंद्र माथुर, पृ. 3)

आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी में आकारांत संज्ञाओं के एकारांत विकारी रूप इसी 'हि' के अवशेष हैं। जैसे लड़का का विकारी रूप 'लड़के' ये सभी कारको में परसर्ग के पहले प्रयुक्त होते हैं।

3–'न्हि', न्ह विभक्ति और उसके रूप–इसका प्रयोग कर्म, सम्प्रदान, करण, अधिकरण और सम्बंध कारकों में प्राय: परसर्ग के साथ विकारी रूप में आता है। ब्रज भाषा में 'न्ह' का महाप्राणत्व लुप्त हो गया है और केवल 'न' के रूप में अवशिष्ट रहा गया है। इसके दो रूप 'नि' और 'नु' मिलते हैं। जैसे–

1–सखी इननैननिते घनघोर **(सूर)**

2–पलनि प्रकटिबरुनीनुबढ़ि, नहिं कपोल ठहरात **(बिहारी)**

परसर्ग–ब्रज भाषा में मूल शब्दों के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनों रूपों के साथ परसर्गों के प्रयोग मिलते हैं। जैसे–

1–तब हम अब इन्हीं की दासी **(सूर, 3501)**

2–हिरदै माँझ बतायो **(सूर, 3512)**

3–धिक मो कौं धिक मेरी करनी **(सूर, 3013)**

भाषा वैज्ञानिक आर्य भाषाओं के विकास में परसर्गों का विशेष योगदान मानते हैं। लेकिन आज अवस्था इतनी बदल गई है कि इनके मूल को पहचानना भी कठिन मालूम पड़ता है।

केरउ परसर्ग–इसकी उत्पत्ति संस्कृत के कार्य से हुई है। ब्रजभाषा में यह को, का, कै, की, के रूप में वर्तमान हैं। लेकिन आधुनिक खड़ी बोली हिंदी में इनके स्थान पर का, के, की मिलते हैं।

माँह/मँह (चंन्द्र बिंदु)–इन का अस्तित्व पुरानी ब्रज में था। /आगे चलकर आधुनिक ब्रज और खड़ी बोली हिंदी में 'मँह' का 'ह' लुप्त होकर 'में' और 'मैं' रह गया। जैसे–हमको सपने हूँ में सोच (सूर)/ या झिलमिल पट में झिलमिली (बिहारी)/ । लागि–इसके लिए खड़ी बोली में 'लिए' का प्रयोग मिलता है। इसी तरह 'उप्परि' (अपभ्रंश) के ऊपर, पर, पै, और 'केहि' के कहै, कौ जैसे रूप ब्रज भाषा में भी मिलते हैं।

सर्वनाम–कामता प्रसाद गुरु ने अपने हिंदी व्याकरण में आधुनिक हिंदी में कुल 11 सर्वनाम बताए हैं। ये हैं–मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन और क्या। इनके प्रयोग की दृष्टि से 6 भेद हैं– पुरुष वाचक, निजवाचक, निश्चय वाचक, सम्बंध वाचक, प्रश्नवाचक और अनिश्चय वाचक। कामता जी ने इन 11 सर्वनामों के कई विकारी रूप भी बताये हैं। **(14. हिंदी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, सं. 2009)** अपभ्रंश से उद्भव होने के कारण इनमें से अधिकांश का मूल वही है। जैसे–
हुउं (चंद्रबिंदु)/ हौं –
इनमें उत्तम पुरुष/एक वचन कर्ता कारक के अपभ्रंश में अधिकांश प्रयोग मिलते हैं जिनका प्रचलन ब्रज में तो रहा किंतु खड़ी बोली में बंद हो गया।

मइं (चंद्र बिंदु) और मैं–यह करण कारक, एक वचन का रूप है और संस्कृत के 'मया' का रूपांतर है।
ब्रज में इसका प्रयोग हौं की तरह ही मिलता है। जब कि, खड़ी बोली में कर्ता के रूप में 'हौं' के स्थान पर केवल इसी का विकारी और अविकारी दोनों रूपों में प्रयोग होने लगा –
जैसे–ब्रज–औरनि जानि मैं दीन्हे (सूर)
खड़ी बोली–मैं सोया/मैंने सपना देखा

खड़ी बोली में भूतकालिक सकर्मक क्रिया के सभी कर्ताओं की भाँति 'मैं' के साथ भी 'ने' परसर्ग लगने लगा। इसी हम, मो, मोहि, तईं, तैं, तुम, तुम्ह, तुझ, वह, आदि के प्रयोग ब्रज भाषा और खड़ी बोली हिंदी में भिन्न–भिन्न रूपों में देखे जा सकते हैं।

क्रिया पद–'ब्रज भाषा क्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप भूतकाल निष्ठा रूप है जो अपनी ओकारांत विशिष्टता के कारण हिंदी की सभी बोलियों से अलग प्रतीत होता है। चल्यौ, गयौ, कह्यौ आदि रूपों में यह विशिष्टता परिलक्षित होती है।' **(15. उन्नीसवीं शती की ब्रजभाषा, सुरेंद्र माथुर, पृ. 6)**

क्रिया विशेषण एक जैसे ही प्रतीत होते हैं इनमें थोड़ा ध्वनि परिवर्तन भर दिखाई देता है। जैसे अज्ज–(हेम. 4/414 झअद्य = आज)
तो हेम.4/339) ढतत: = तौ (ब्रज)
इसी तरह स्थान वाचक, रीतिवाचक आदि में ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं।

सर्वनाम विशेषण–सर्वनाम विशेषण के बारे में सब जानते हैं कि पुरुष वाचक और निज वाचक सर्वनामों के अतिरिक्त सभी विशेषण हैं। लेकिन पता तभी चलता है जब संज्ञा के साथ इनका प्रयोग होता है। जैसे–यह औरत /वह आदमी।
चउंतीसढ चौंतीस
अट्ठवीसढ अट्ठाईस

आधुनिक हिंदी में सौ के बाद की संख्याओं के ऐसे ही रूप प्रचलित हैं। अपूर्णांक बोधक संख्यायें हिंदी में भी रूपांतर के साथ आई हैं। जैसे –
अद्ध–आधा / दिय–झ डेढ़

अर्थ–अर्थ निर्धारण के लिए यद्यपि अनेक सिद्धांत बनाए गए हैं लेकिन इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत समाज की 'ध्रुव चेतना' या 'चिति' की समझ के कारण शब्दों की अर्थवत्ता का निर्धारण माना जाना चाहिए। क्योंकि इसी से समाज की मानसिक ऊँचाई का पता चलता है। सामाजिक–सांस्कृतिक विकास और उपलब्धियों का आभास होता है। एक ही शब्द जब अपना अर्थ विस्तार करता है तो वह कितनी दूर तक जाता है इसका उदाहरण 'भक्ति' शब्द के संदर्भ में इस लेख के शुरू में ही दिया गया है। ऐसे और भी शब्द खोजे जा सकते हैं जो पुराने होते हुए भी नए संदर्भों के साथ हमारे बीच टहल रहे हैं।

आई -94, गोविंदपुरम
गाजियाबाद–201013 (उ.प्र.)
मो–8377003475

हिंदी और लोकभाषा अवधी

– रामबहादुर मिश्र

अवधी ने एक परम्परा बनाई है। एक समय इसे हिन्दी की उपभाषा कहा जाने लगा था। अवधी की अपनी संस्कृति है, उस संस्कृति को बचाकर ही भारतीय संस्कृति को बचाया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में समाहित अनेक संस्कृतियाँ भाषा से ही आई हैं। जहाँ तक अवधी की बात है तो वह भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण लोकभाषा है और हिन्दी को समृद्ध करती है। आज पूरी दुनिया में अवधी बोलने और जाननेवालों की संख्या दस करोड़ के आसपास है। विश्व भाषा में अवधी को 29वाँ स्थान प्राप्त है। भारत में गुरु गोरखनाथ और नेपाल में संत कुकरिप्पा अवधी के आदिकवि हैं। अमीर खुसरो को भी अवधी का प्राचीन कवि माना जाता है। अवधी का प्रादुर्भाव छठी शताब्दी से हुआ। यह आम बोलचाल, राजकाज और साहित्य की भाषा रही है।

अवधी एक प्राकृत भाषा है। दुनिया की किसी भी संस्कृति का अध्ययन हम अवधी के माध्यम से कर सकते हैं। नीग्रो, निशाद (यहाँ तक आस्ट्रेलिया) द्रविड़, किरात, मंगाल आदि परवर्ती संस्कृतियाँ हैं। कोशल में यज्ञ संस्कृति सबसे उत्कृष्ट रूप में विकसित हुई। यज्ञ संस्कृति का आविष्कार कोशल में ही हुआ। बाद में अन्य देशों ग्रीक, रोमन, ईरान आदि देशों में यज्ञ संस्कृति का विकास हुआ। नए शोधों से प्रमाणित हो चुका है कि अवधी का व्याकरण सातवीं सदी में ही स्पष्ट हो गया था। हेमचंद के शब्दानुशासन, वर्णरत्नाकर, प्राकृत पैंगलम, कीर्तिलता, संदेश, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, प्रबंध चिंतामणि कुमार पाल आदि में अवधी का व्याकरण देखा जा सकता है। गोरखनाथ की सम्पूर्ण रचनाओं में सर्वनाम, क्रियापद, सहायक और क्रिया विशेषण आदि का प्रचुर शब्दभंडार अवधी में है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि में अवधी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषिक दृष्टि से हिन्दी की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाषा है। अवधी उ.प्र. में बोली जानेवाली यह सबसे महत्त्वपूर्ण लोकभाषा है जिसे भारतीय आर्यभाषा की पूर्वी हिन्दी शाखा की सबसे प्रमुख बोली के रूप में जाना जाता है। महाजनपद काल में कोशल महाजनपद भारत का सबसे गौरवशाली और शक्तिशाली राज्य था। गौतम बुद्ध के जन्म से बहुत पहले इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रियों ने इसकी स्थापना की। यह दो भागों में बँटा था–अयोध्या के आस–पास का क्षेत्र उत्तर कोशल तथा छत्तीसगढ़ एवं म.प्र. के कुछ जिले दक्षिण कोशल के अन्तर्गत आते थे। उत्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में गंगा नदी तक इसका विस्तार था अवध का वर्तमान भाग इस जनपद का केन्द्रीय भाग था। इस कोशल साम्राज्य की एक भाषा थी जो थी तो आर्य भाषा पर संस्कृत से भिन्न बोल चाल की भाषा थी। इसको कोसली प्राकृत कहना उचित होगा। अवधी वस्तुत: कोसली प्राकृत का ही विकसित रूप है। इसकी साहित्यिक परम्पराएँ भी अति प्राचीन हैं। समस्त जनपदीय भाषाओं में अवधी ही एक भाषा के रूप में सामने आई और उसने एक सुदीर्घ और उत्कृष्ट साहित्यिक परम्परा को जन्म दिया। अवधी के प्रथम कवि मुल्ला दाउद ने चौदहवीं शताब्दी में चंदायन की रचना की किन्तु इससे पूर्व बारहवीं सदी में दामोदर भट्ट ने संस्कृत के समानान्तर उक्ति व्यक्ति प्रकरण नामक ग्रंथ में अवधी व्याकरण की रचना कर दी थी। यह इस बात का प्रमाण है कि अवधी बारहवीं शताब्दी तक एक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी। डॉ. राम विलास शर्मा के अनुसार सम्राट हर्षवर्धन के काल सातवीं सदी में कन्नौज में अवधी बोली जाती थी। डॉ. शर्मा ने अवधी काव्य परम्परा के संदर्भ में विचार करते हुए कहा कि यह काव्य परम्परा संभवत: मुल्ला दाउद से पहले विद्यमान थी।

अवधी भाषा भाषी क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसके उत्तर में नेपाली, पश्चिम में कन्नौजी, दक्षिण पश्चिम में बुंदेली, दक्षिण में बघेली, दक्षिण पूर्व में छत्तीसगढ़ी और पूरब में भोजपुरी, नेपाली जाती है। बघेली और छत्तीसगढ़ी अवधी की हो उपबोलियाँ हैं। अवधी न केवल उत्तर

अवधी भाषा और साहित्य के अध्येता

प्रदेश के पच्चीस जनपदों की भाषा है वरन मध्यप्रदेश और बिहार तथा नेपाल की तराई के विस्तृत भूभागों में फैली हुई महत्त्वपूर्ण भाषा है जिसे भारत में बारह उर्दू बोलने वाले लोग भी समझते हैं।

हिन्दी के संवर्द्धन में अवधी का सर्वप्रथम स्थान है। हिन्दी साहित्य की प्रमुख पाँच धाराएँ हैं जिनमें प्रेमाख्यान काव्य, संतकाव्य, रामकाव्य, कृष्ण काव्य, और रीति काव्य हैं। इनमें से तीन धाराओं प्रेमाख्यान, संत काव्य तथा राम काव्य का इतिहास तो अवधी से ही है शेष कृष्ण काव्य के साथ ही रीति काव्य भी अवधी में रचे गए हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक रचित अवधी साहित्य ने हिन्दी को अत्यंत समृद्ध किया है। भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यान परम्परा वैसे तो बहुत पहले से है जो संस्कृत भाषा से प्रारम्भ होकर राजस्थानी तत्पश्चात् अवधी में आयी लेकिन प्रेमाख्यान परम्परा को ख्याति अवधी ने ही दिलाई। अवधी के प्रेमाख्यान फारसी कविता की मसनवी शैली में लिखे गए। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता, भाईचारा, प्रेम और साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने में सूफी संतों का बड़ा योगदान है। मुल्ला दाउद मलिक मोहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान, शेखनवी, कासिम शाह, नूर मोहम्मद, शेख निसार, आलम आदि सूफी साधकों ने दुनिया को प्रेम का संदेश अवधी में ही दिया। रहीम के बरवैनायिका भेद की भाषा ठेठ अवधी है। सूफी कवियों के अतिरिक्त अनेक हिन्दू प्रेमाख्यानकारों ने भी अवधी में ही सर्जना की है।

हिन्दी साहित्य की संत साहित्य धारा में अवधी संतों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भक्तिकाव्य के दो प्रभेद तो प्राय: सर्व स्वीकृत हैं निर्गुण एवं सगुण। अवधी में एक तीसरी धारा भी प्रवाहित रही है जिसमें निर्गुण-सगुण दोनों का समन्वय दिखाई देता है। उत्तर मध्यकाल की-संत परम्परा में सर्वाधिक पंथ प्रचलित हुए जिनमें सतनामी नानक पंथ, गुलाल पंथ, साईंदाता, रामसनेही शिवनारायण आदि सम्प्रदाय प्रमुख हैं। प्रमुख अवधी संतों में दादू, सुन्दरदास हरिदास, गरीबदास, तुलसीदास निरंजनी, यारी साहब, भीखा साहब, पल्टू साहब बुल्ला साहब, मलूकदास, जगजीवनदास, धरणीदास, दरिया साहब, दूलनदास, देवी दास, नेवलदास आदि उल्लेखनीय हैं। निर्गुण संत काव्य धारा के प्रमुख साहित्यकारों में रैदास, धर्मदास, ईश्वरदास, साहेब नेवलदास, बोधेदास, किसोरदास स्वामी राम लग्नानंद आदि की काव्यभाषा अवधी ही है। हिन्दी संत काव्य पर नाथ पंथी कवियों मुख्यत: गोरखनाथ का गहरा प्रभाव पड़ा। गोरखनाथ ने बोलचाल वाली सहज जनभाषा अवधी का प्रयोग किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है –

हँसिबा, बोलिबा रहिबा संग, काम क्रोध न करिबा संग।
हबकि न बोलिबा डबकि न चलिबा धीरे धरिबा पाँव,
गरब न करिबा सहजै रहिबा भनत गोरख राव।

हिन्दी साहित्य की रामकाव्य धारा अवधी की अति विशिष्ट धरोहर है। विगत 6 शताब्दियों में राम काव्य परम्परा के अधिकांश कवियों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति का मूल माध्यम अवधी के ही रखा। गोस्वामी तुलसीदास और उनके रामचरितमानस ने विश्व साहित्य में हिन्दी को प्रतिष्ठित किया। यद्यपि तुलसी से पहले रामानंद अवधी काव्य सृजन का श्रीगणेश कर चुके थे फिर भी अवधी को शीर्ष पर पहुँचाने का श्रेय तुलसी को ही है। उनके प्रभाववश अनेक कवियों ने अवधी को अपना काव्य माध्यम बनाया। इनमें प्रमुख है सूरजदास अग्रदास, नाभादास, लालदास, ईश्वरदास, जानकी, रसिक शरण, रामप्रिया शरण, प्रेमकली, सहजराम वैश्य, प्रयागराज, झामदास, रामचरण दास, महाराज विश्वनाथ सिंह, जनककिशोरी शरण, रसिक अली, बनादास, ललकदास, रामगुलाम द्विवेदी रघुनाथ दास, हरिदास, सीताराम शरण, सीताप्रसाद, बलदूदास हनुमान शरण, शीतला सिंह, सीताराम दास, प्रेमहर्षण, मधुसूदन दास, सरयूराम पण्डित नवल सिंह रुद्रप्रताप सिंह आदि।

अवधी की कृष्ण काव्य परम्परा भी बहुत समृद्ध रही है। भक्तिकाल में तो कृष्ण चरित प्रचुरता के साथ लिखा गया आधुनिक युग में भी यह परम्परा समृद्ध है। अवधी के प्रमुख कृष्ण काव्यकार है, जायसी, लालदास, ललक दास, माधव कवि, सबल श्याम, भूपति, मंगलदास, चरनदास, नवलदास, ब्रजवासी मोहनदास, देवीप्रसाद, रघुनाथ दास, महेश अवस्थी, द्वारकाप्रसाद मिश्र, रामस्वरूप मिश्र 'विशारद' माधवदास आदि।

अवधी साहित्य बहुत ही समृद्ध तथापि आश्चर्य है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में उसे समुचित स्थान नहीं दिया गया। हिन्दी साहित्य की सात मुख्य धाराओं में अकूत अवधी सर्जना हुई है जिसकी विहंगावलोकन प्रस्तुत है –

1. **अवधी संत काव्य धारा**–अवधी काव्यधारा के आदि कवि मुल्ला दाउद जिन्होंने 1379 ई. में चंदायन प्रबंध काव्य की रचना है। उसके बाद संत कबीरदास (सन् 1665 को लगभग) संत कीनाराम (सं. 1684) संत जगजीवन दास (सं. 1727) सहजराम 18वीं शती,

महात्मा बनादास (सन् 1821–1920) संत ललकदास (1880) शीतलसिंह गहरवार, रुद्रप्रताप सिंह, संत अमीरअली, संत रामसेवक, देवानन्द साहब, सुखलाल दास सतनामी आदि संतों ने अवधी में अनेक आध्यात्मिक रचनाएँ की।

2. **अवधी की प्रेमाख्यानक काव्य धारा**–मुल्ला दाउद (1379 ई.) कुतुबन (1560 वि.) मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा 1577 वि. में पद्मावत की रचना, उसमान कवि जवाहिर, ख्वाजा अहमद ने 1962 वि. में नूरजहाँ नामक महाकाव्य की रचना की अवधी में लिखे गए प्रेमाख्यान के रचयिता प्राय: सभी मुसलमान थे, जिन्होंने फारसी, मसनवी परम्परा को अपना आधार बनाया। लोकप्रचलित तथा ऐतिहासिक कथाओं को लेकर इन प्रेमाख्यानों का ताना–बाना बुना गया इसके द्वारा अवधी भाषा को साहित्यिक गरिमा प्राप्त हुई। प्रमुख प्रेमाख्यानों में चंदायन (मुल्ला दाउद), मृगावती (शेख कुतुबन), पद्मावत (मलिक मो. जायसी), मधुमालती (मंझन), चित्रावली (उसमान), रतनावली (जनकवि), ज्ञानदीप (शेख नबी) हंस जवाहिर (कासिम शाह), इन्द्रावत (नूरमोहम्मद), अनुराग बाँसुरी (नूर मोहम्द), पुपुपावती (हुसैन अली), नूर जहाँ (ख्वाजा अहमद), कथा कुबरायल (अली मुराद), प्रेमदर्पण (मोहम्मद नसीर), युसुफ जुलेखा (शेखनिसार) आदि प्रमुख प्रेमाख्यानक हैं।

3. **अवधी राम काव्यधारा**–अयोध्या तथा अवधी भाषा–भाषी क्षेत्र के निवासियों ने तो अवधी में काव्य रचना की ही सुदूर प्रदेशों में रामभक्तों ने भी अवधी में ही रामकाव्यों की रचना की है। अस्तु अवधी में रामविषयक प्रबंध काव्यों और मुक्तक काव्यों की एक लम्बी परम्परा विद्यमान है।

गोस्वामी तुलसीदास अवधी के विश्वविख्यात कवि हैं। यद्यपि तुलसी से रामानंद अवधी काव्य सृजन का श्रीगणेश कर चुके थे फिर भी अवधी को शीर्ष पर पहुँचाने का श्रेय गोस्वामी जी को ही है। उनके प्रभाववश अनेक कवियों अवधी सर्जना को प्रमुखता दी। इनमें सूरजदास (ईश्वरदास), पुरुषोत्तमदास, अग्रदास, नाभादास, लालदास, बालकृष्ण बाल अली, जानकी रसिक सरन, प्रियाशरण प्रेमकली, सहजराम वैश्य, प्रयागदास, रामसखेजी, सरजूराम पंडित, झामदास, रामचरण दास, शिवप्रसाद, मधुसूदन, कृपानिवास, महाराज विश्वनाथ सिंह, रुद्रप्रताप सिंह, जनकराज किशोरी शरण, रामगुलाम द्विवेदी, नवल सिंह कायस्थ, रघुनाथ दास, जीवाराम, युगलप्रिया, रामसनेही पतित दास, हरिदास, उमापति त्रिपाठी, शीलमणि, रामशरण तिलक, माधवसिंह 'क्षितिपाल', बैजनाथ, जानकीप्रसाद, अनुमान शरण, शीतला सिंह, वृषभानुकुँवरि, 'राम प्रिया', बदलूदास, रामवल्लभ शरण, सियाशरण, सीताराम दास, लालमाधव सिंह, बैजनाथ कुर्मी, चतुर्भुज शर्मा, डॉ. महेश प्रतापनारायण अवस्थी, डॉ. दीनानाथ शुक्ल, नरेन्द्र शर्मा, आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप', शिवनाथ मिश्र, चन्द्रशेखर सिंह आदि प्रमुख हैं।

4. **अवधी कृष्ण काव्यधारा**–यह एक भ्रांति है कि रामकाव्य अवधी में लिखा गया और कृष्ण काव्य ब्रज में। इसका प्रमाण तुलसीदास के समकालीन कृष्ण भक्त कवि लक्षदास ने अवधी में दोहा, चौपाई, छंद में 'कृष्णरस सागर' की रचना की। इसके पश्चात् लगभग पचास कवियों ने आधुनिक युग के पूर्व अवधी में कई कृष्णकाव्य लिखे इस काव्यपरम्परा में महाकाव्य, खंडकाव्य और मुक्तक सभी प्रकार के ग्रंथ लिखे। अवधी के प्रमुख कृष्णकाव्यकार हैं–लालदास, मलिक मोहम्मद जायसी, चरनदास, ब्रजवासीदास, माधव कवि, सबल स्याम, भूपति, मंगलदास, चरनदास, नवलदास, ब्रजवासी दास, मोहनदास मंचित, मंचित रत्नाकुँवारी बीबी, देवी प्रसाद, गणेशप्रसाद कायस्थ, रघुनाथ दास के साथ ही आधुनिक काल में महावीर प्रसाद नारायण त्रिपाठी, द्वारका प्रसाद मिश्र, रामस्वरूप मिश्र 'विशारद', दाऊदयाल गुप्त, परमानंद जड़िया, डॉ. महेश प्रतापनारायण अवस्थी, गुरुप्रसाद सिंह 'मृगेश' आदि प्रमुख है। प्रमुख अवधी कृष्ण काव्यों में कन्हावत, कृष्णरससागर, विनोद सागर, ब्रज चरित्र प्रेमरत्न, कृष्ण प्रिया, ब्रजवन यात्रा, हरिचरित्र, कृष्ण खंड, कृष्णायन नाम से आधा दर्जन प्रबंध काव्य लिखे गए हैं।

5. **अवधी रीति काव्य धारा**–अयोध्या सिंह उपाध्याय (रस कलश) ब्रजनंदन पाण्डेय, राजेश दयालु राजेश (बरवै हजारा) डॉ. देवकीनंदन श्रीवास्तव डॉ. महेश प्रतापनारायण अवस्थी, डॉ. मुहम्मद अखलाक, डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ'।

6. **अवधी की आधुनिक प्रबंध काव्य धारा**–महात्मा बनादासमाधव सिंह, हरिपाल सिंह, गदाधर सिंह, महावीर प्रसाद त्रिपाठी, रामस्वरूप मिश्र 'विशारद', द्वारिका प्रसाद मिश्र, सत्यधर शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ पाठक, परमानंद जड़िया, आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप', संकठाप्रसाद सिंह 'देव', आशुतोष श्रीवास्तव आदि।

7. **आधुनिक अवधी काव्य धारा** –

अ. **प्रथम उत्थान काल**–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पं. प्रतापनारायण मिश्र, रामचरित उपाध्याय।

ब. **द्वितीय उत्थान काल**–महावीर प्रसाद द्विवेदी कल्लू अल्हैत' शिवरत्न शुक्ल सिरस, अवध बिहारी त्रिपाठी 'अवधेश', ब्रजकिशोर पाण्डेय, दयाशंकर दीक्षित 'देहाती'।

स. **तृतीय उत्थान काल**–अवधी प्रगतिवादी काव्य

अवधी की वृहद्त्रयी ने आधुनिक काल में अवधी को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दिलाई इनमें बलभद्र प्रसाद दीक्षित 'पढ़ीस', पं. वंशीधर शुक्ल और चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' का नाम आता है। इस त्रयी ने अवधी की भूमि को इतना उर्वर बना दिया कि अवधी पूरे वैभव के साथ साहित्य पटल पर उपस्थित हुई। इसके बाद तो भारत और नेपाल में सभी विधाओं में अवधी सर्जना होने लगी। कुछ प्रतिष्ठित और स्थापित अवधी कवियों, साहित्यकारों के नाम इस प्रकार हैं –

गुरुप्रसाद सिंह 'मृगेश' (बाराबंकी), आचार्य विश्वनाथ पाठक (फैजाबाद), त्रिलोचनशास्त्री (सुल्तानपुर), केदारनाथ अग्रवाल (बाँदा), उमादत्त सारस्वत (सीतापुर), द्वारिका प्रसाद यादव 'यदुचंद' (लखनऊ), लक्ष्मण प्रसाद मित्र (सीतापुर), कमला चौधरी (लखनऊ), चतुर्भुज शर्मा (सीतापुर), डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' (लखनऊ), सुमित्रा कुमारी सिन्हा (लखनऊ), चन्द्रशेखर पाण्डेय 'चन्द्रमणि' (रायबरेली), सत्यनारायण द्विवेदी श्रीश (फैजाबाद), दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' (जौनपुर), डॉ. श्याम तिवारी (बस्ती), डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन' (प्रतापगढ़), डॉ. श्यामसुन्दर मधुप और डॉ. गणेशदत्त सारस्वत (सीतापुर), लवकुश दीक्षित (सीतापुर), पं. सत्यधर शुक्ल 'खीरी', पारसनाथ मिश्र 'पारस भ्रमर' (बहराइच), जुमई खाँ आजाद (प्रतापगढ़), विकल साकेती (अम्बेडकरनगर), डॉ. महेश अवस्थी (प्रयागराज), आद्याप्रसाद मिश्र 'उन्मत्त' (प्रतापगढ़), काका बैसवारी (उन्नाव), डॉ. जयसिंह व्यथित और आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' (सुल्तानपुर) डॉ. विद्याविन्दु सिंह (अयोध्या), डॉ. अरुण त्रिवेदी (सीतापुर), आनन्दप्रकाश अवस्थी 'नन्हे भैया' (रायबरेली), जगदीश पीयूष (अमेठी), डॉ. रामबहादुर मिश्र (बाराबंकी), आचार्य सूर्य प्रसाद निशिहर और इन्द्रेश भदौरिया (रायबरेली), निर्झर प्रतापगढ़ी और अनुज नागेन्द्र (प्रतापगढ़), मनोज मिश्र 'कप्तान' (श्रावस्ती), विनय विक्रम सिंह (नोयडा), ओम निश्चल (दिल्ली), डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ' और डॉ. अशोक अज्ञानी, डॉ. सुशील सिद्धार्थ, सच्चिदानंद तिवारी 'शलभ' (लखनऊ), पद्मश्री बेकल उत्साही (बलरामपुर), अरुण तिवारी (अम्बेडकर नगर), ज्ञान प्रकाश 'आकुल' और 'फारूख' सरल (खीरी) आदि।

प्राचीन काल में अवधी राजकाज की भाषा थी। अवध क्षेत्र के उन राज्यों में जहाँ अवधी को राजभाषा की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उनमें बलरामपुर (गोण्डा) और रीवा (म.प्र.) राज्य प्रमुख हैं। अवधी के समकालीन परिदृश्य में जहाँ एक ओर अनेकानेक विधाओं में सर्जना हो रही है वहीं अवधी संस्थाएँ अवधी भाषा–साहित्य और संस्कृति के संरक्षण संवर्धन में प्रयासरत है, कुछ प्रमुख संस्थाएँ इस प्रकार है–अवधी परिषद (लखनऊ), अवधी अकादमी (गौरीगंज अमेठी), दिव्या समिति (सुल्तानपुर), अवधी साहित्य संस्थान (अयोध्या), अवधी अध्ययन केन्द्र (लखनऊ), अवध भारती संस्थान (हैदरगढ़, बाराबंकी), अवधी मंच (कादीपुर), अवधी साहित्य संस्थान (अमेठी), बंशीधर शुक्ल स्मारक समिति (खीरी), अवधी सांस्कृतिक प्रतिष्ठान (काठमांडो), नेपाल अवधी विकास मंच, नेपाल अवधी पत्रकार संघ, अवधी सांस्कृतिक प्रशिक्षण संस्थान, अवधी सांस्कृतिक विकास परिषद बांके नेपाल आदि। निबन्ध के अतिरिक्त यात्रा संस्मरण, जीवनी डायरी, पत्र साहित्य आदि अवधी में लिखे गए। नेपाल सरकार ने स्वाध्याय, प्रौढ़शिक्षा, चिकित्सा, साक्षरता जैसे विषयों पर अनेक पुस्तकों को अवधी में प्रकाशित कराया है, जिनका विवरण इस प्रकार है –

1. अवधी संस्कृति (व्रत औ तिउहार सं. 2066) विक्रममणि त्रिपाठी, विश्वनाथ पाठक।
2. हमहू पढ़ब औ मनन करब (परिवार समाज औ गाँव कै विकास सं. 2066) विक्रममणि त्रिपाठी।
3. हमहू पढ़ब औ सिखब औ करब (समूह योजना व्यवसाय सं. 2063) विक्रममणि त्रिपाठी।
4. हमहू जानब औ ध्यान देब (मानव शरीर औ स्वास्थ्य सं. 2066) विक्रममणि त्रिपाठी।
5. हमहू पढ़ब औ करब (गिरधारी काका औ पेड़ बातचीत सं. 2066) विक्रममणि त्रिपाठी।
6. अवधी संस्कृति–प्रकाशक नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान सं. 2069।

सारांशत :– अवधी का साहित्य हिन्दी के समानान्तर ही समृद्ध है। जिस प्रकार से अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण हिन्दी प्रभावित हो रही है, वही प्रभाव अवधीपर भी है। हिन्दी की समृद्धि में अवधी की शब्दावली, कहावतें, मुहावरें और उसका लोकसाहित्य बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस दिशा में शासन प्रशासन और स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमि प्रभावी होनी चाहिए।

अध्यक्ष-अवध भारतीय संस्थान
सम्पादक अवध ज्योति
'अवधी भवन'आर.एन.नगर कालोनी
अर्जुन गंज, लखनऊ-226002 (उ.प्र.)
मो. 9450063632

बुन्देली भाषा की लोकजीवनी शब्दशक्ति से समृद्ध हिंदी

– सरोज गुप्ता

भाषा की प्राणशक्ति शब्द हैं। शब्द विचारविनिमय और भाषा के निर्माण के सर्वोत्तम साधन हैं। शब्द की व्युत्पत्ति नाद से हुई। नाद प्रकृति व चराचर में सर्वत्र परिव्याप्त है तथा शब्द का आदि रूप नाद ही है। बुन्देली में कहा जाता है–'छितौ चिटचिटा सबद जलौ बुदबुद ध्वनि। अग्नौ भुकभुक् शब्द वायवी सी–सी–रीति: ।' **(1. बुन्देली भाषा कोश–डॉ. रामनारायण शर्मा पृ. 2)** इस प्रकार शब्दों से बोल निर्मित हुए और बोल से बोली बनी जो व्याकरण से संस्कारित होकर भाषा कहलाई। भाषा के विभिन्न रूप, अर्थ, ध्वनि, शब्द सम्पदा एवं वाक्य विचार की दृष्टि से सम्यक विवेचन हेतु क्षेत्रीय भाषाओं का विशेष महत्त्व है। शताब्दियों पूर्व के अनेक बिछड़े हुए शब्द, उनकी परम्पराएँ, अर्थादेश आदि इनमें सजीव पाए जाते हैं, जो भाषा विज्ञान के लिए तो लाभप्रद हैं ही इतिहास, संस्कृति और धर्म की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। **(2. बुन्देली कहावतों का भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन–डॉ. वीरेन्द्र निर्झर पृ.–8)**

प्राचीन शब्दावली संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, देशी और विदेशी शब्द रुपों का रोचक सम्मिश्रण बुन्देली में देखने को मिलता है। लौकिक संस्कृत के विकसित शब्दों में बुन्देली शब्दों की भरमार है। बुन्देली में पक्षी वाचक सुआ शब्द शुक शब्द से सीधे संस्कृत से आया जबकि हिन्दी में फारसी का तोता शब्द प्रचलित है। बुन्देली में आखत शब्द संस्कृत के अक्षत–साबित तन्दुलों का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास को सँजोए है। शरारती व्यक्ति के लिए मुरहाटौ आज भी मराठों के अतीतकालीन आतंक की स्मृति दिलाता है। धूर्त व्यक्ति के लिए चरवांक शब्द नास्तिक चार्वाक के प्रति अनास्था व्यक्त करता है। प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी बुन्देली में प्रचलित हैं जो हमारी राष्ट्रीय एकता के द्योतक हैं। मराठी में थाली को ताट, कन्नडा में तट्टे, बुन्देली में टाठी कही जाती है। बड़े भाई के लिए तमिल में अन्ना बुन्देली में नन्ना प्रचलित है।

'ओना मासी धम्–'ऊँ नम: सिद्धम्' कात्यायन के पहले सूत्र का लोक रूप बुन्देलखण्ड में बहुत प्रचलित है। सारोवरना विरजो यामीं–स्वरो ऽवर्ण वर्जोनामी अर्थात् अ को छोड़कर शेष स्वरों की नामी संज्ञा होती है। आई ती बिसारो झन्या–अरू इति विसर्जनीय अर्थात् अ: की विसर्जनीय संज्ञा होती है। इस प्रकार पाणिनि व्याकरण से लेकर वैदिक संस्कृत के विभिन्न रूप बुन्देली में विद्यमान हैं। इस देश की शब्दानुशासन की सरस्वती ब्रह्मा, वृहस्पति, इन्द्र, भारद्वाज से निर्झरित होती हुई आचार्य काशकृत्स्न एवं शर्व वर्मा के तप से पवित्र होकर जो समयसिक्ता में लुप्तप्राय हो गई है, इस लुप्तप्राय ज्ञानधारा को बुन्देली–लोक भाषा के इन सूत्रों में मूल रूप में देख सकते हैं। हमारी ध्वनियों के जातीय वर्गीकरण घोष, अघोष, अनुनासिकता, अनुस्वार, जिह्वामूलीय, ऊष्माण एवं अन्त:स्थ ध्वनि भेदों को लोक भाषा का शिक्षक अपनी गुदड़ी के लाल की तरह आज भी सुरक्षित रखे हैं। **(3. बुन्देली एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन–सम्पादक आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल एवं पं. कैलाश बिहारी द्विवेदी पृ. 4–10)**

यह पाटियाँ–उक्तियाँ शिक्षण के बदले हुए सन्दर्भों में भी भाषा वैज्ञानिकों एवं शिक्षा शास्त्रियों के समक्ष कुछ विचारपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए गम्भीरता से अध्ययन एवं मनन के लिए प्रेरित करती हैं।

बुन्देलखण्ड भारत का हृदय क्षेत्र है और इस विस्तृत भू–भाग की मातृभाषा बुन्देली है। ऐतिहासिक दृष्टि से जब बुन्देलखण्ड की बात करते हैं तो अतीत के खण्डहरों में प्रसुप्त वीरों की कीर्ति–गाथाएँ साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक धरोहर धरती के गर्भ में दबी अतुल सम्पदाएँ, त्याग बलिदान की स्मृतियाँ स्वर्णिम पृष्ठों पर जगमगाती दिखाई देती हैं। बुन्देलखण्ड के अंतर्गत उत्तर प्रदेश के पाँच जिले और मध्य प्रदेश के 22 जिले आते हैं। बुंदेलखंड का अनुमानित क्षेत्रफल एक लाख तेरासी हजार पाँच सौ किलोमीटर है। बुन्देली भाषा और समाज का क्षेत्र भौगोलिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत

हिंदी भाषा की प्रोफेसर एवं बुंदेली भाषा की अध्येता

व्यापक है। बुन्देलखण्ड पुण्य भूमि एवं यज्ञ भूमि है। यहाँ पर सनातन काल से ऋषियों-मुनियों, ब्रह्मवादिनियों ने तुंगारण्य ओरछा, कालपी, पन्ना की डाँगों-वनों आदि स्थानों पर अपनी तपस्थली बनाकर साधनाएँ की हैं। वैदिक संस्कृत का प्रयोग इस धरा पर शताब्दियों तक होता रहा है। वैदिक और लौकिक संस्कृत, देशज तथा प्राकृत भाषा के शब्द बुन्देलखण्ड की प्राचीनता सभ्यता और संस्कृति के प्रमाण हैं। वैदिक शब्द-अर्गल से व्युत्पन्न आगड़, चरुक से चरुआ, कद्रुक से गडुआ, संदान से संधना, चाप्य से चपिया, असिद से हँसिया, व्यजन से विजना, घर्म से घाम, पई-पाँवने, योक्त्र-जोत-रस्सी, दाँय, बिरामनी-सरीसृप छिपकली की जाति का जन्तु, कुस्तम्बरी-कोथमीर-धनिया, यवांकुर-जवारे, समयसूचक घटी-घंटी, गड़ई-लोटा-लुटिया, अथर्ववेद की अस्थानी-सभाविशेष की सूचक बुन्देली में अथाई-चौपाल या सभा के अर्थ में खूब प्रयुक्त होते हैं। इसी तरह अंग्रेजी हिन्दी उर्दू संस्कृत के शब्द बुन्देली में रूपांतरित होकर न केवल नई शब्दसृष्टि की तरह आकर्षित करते हैं वरन् बुन्देली की प्रबल पाचनशक्ति को भी दर्शाते हैं। जैसे गैस लाइट आयल-घासलेट, लंकाशायर का लांग क्लाथ-लंकलाट, गैली का पौहन, गारंटी के लिए दर, इंपोर्टेड के लिए दिसावरी, डिजाइन के लिए भांत, रैक के लिए टाड़, आइडिया के लिए अटकर, शीटबैंड ऑटोमेटिक के लिए चमरगाँठ, ओब्लीगेशन के लिए थराई। ऑटोमेटिक के लिए अवढ़ारौ सरीखे अनेक शब्द बुन्देली शब्द सम्पदा के साथ हिन्दी को समृद्धशाली व गौरव प्रदान करते हैं।

परवर्ती काल में प्राकृत अपभ्रंश और देशी भाषाएँ भी पुष्पित पल्लवित होती रहीं यही कारण है कि बुन्देली में माधुर्य के साथ लालित्य भी देखा जा सकता है। विपुल साहित्य भंडार के साथ बुन्देली में जहाँ वीरता और राष्ट्रीयता के भाव विद्यमान हैं वहीं श्रृंगार, प्रेम, प्रकृति, ऋतु और संस्कार के गीतों की बहुलता है। बुंदेली को राजभाषा रहने का भी गौरव प्राप्त है। बुन्देलखण्ड में दो काव्यधाराएँ प्रचलित रहीं - एक प्रबन्ध काव्य दूसरा वीर काव्य-लोक गाथाएँ। वीर काव्य में जगनिक द्वारा बुन्देली भाषा में रचित-आल्हा उत्तरी भारत की जनता के गले का हार रहा। ईसुरी की फागें होली के अवसर पर रसिकों के हृदयों में फाग की रंग-बिरंगी फुलझड़ियाँ, बहारें जागृत करती हैं। बुन्देली में पूर्वजों के अनुभव, बात-बात में सीख देने वाली उक्तियाँ, कहावतें, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, स्वास्थ्यपरक गीत, लोक गाथाएँ, लोक कथाएँ, नौटंकी, लोक नाट्य भरे पड़े हैं। सदियों से प्रचलित वाचिक परम्परा को बुन्देलखण्डवासियों ने आत्मसात किया। आल्हा के कई खण्डों का गायन, 52 युद्धों की वीरता का बखान प्रामाणिकता के साथ गायन शैली में जन-जन के कंठों में ओज-शौर्य के साथ गाया जाता रहा है। वर्षा ऋतु में आल्हा गायकों की धूम मची रहती है।

बुन्देलखण्ड का विस्तार बुन्देली क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी के लगभग आधे क्षेत्र में फैला हुआ है। औपनिवेशिक रूप से दक्षिण में मैकल पर्वत को पार कर नागपुर के मैदानी क्षेत्र अमरावती, चान्दा तथा भण्डारा तक मराठी के साथ बोली जाने वाली हिन्दी को ग्रियर्सन ने बुन्देली का ही रूप माना है। इस क्षेत्र में बसने वाली जातियों अथवा स्थान के आधार पर बुन्देली के विविध रूप-लुधान्ती, पंवारी, खटोला, बनाफरी, कुंद्रा, निभट्टा, भदौरी आदि प्रचलित हैं। बुन्देलखण्ड की संस्कृति आरण्यक है। वनों, पहाड़ों और नदियों से आच्छादित होने के कारण इस भू-भाग की भाषा में शब्दों, सम्बन्ध तत्वों के रूपों तथा ध्वनियों के प्रयोगों में थोड़ा बहुत अन्तर दिखाई देता है। राहुल सांकृत्यायन ने लोक बोलियों के सात प्रमुख समुदाय बताए हैं-मागधी समुदाय, अवधी समुदाय, ब्रज समुदाय, राजस्थानी समुदाय, कौरवी समुदाय, पंजाबी समुदाय और पहाड़ी समुदाय। इन सात समुदायों में हिन्दी प्रदेश की बीस बोलियों को समाहित किया गया है। बुन्देली ब्रज समुदाय के अंतर्गत आती है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रज की सहोदरा होने के साथ बुन्देली का ऐतिहासिक महत्व एवं अपना अलग अस्तित्व भी है। **(4. बुन्देली का लोक काव्य-सम्पादक डॉ. बलभद्र तिवारी, बुन्देली जनः ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ.7-14)**

बुन्देलखण्डवासियों की वचनवक्रता, नवाचार व ज्ञान सम्पन्न होना अलग विशेषता, बुन्देलों और मुस्लिम शासकों के बीच अनेक बार युद्ध भी हुए। बाहर से आयी जातियों के प्रति आक्रामक होना यहाँ के लोगों का स्वभाव रहा है। रामायण, महाभारत काल से ही बुन्देलखण्ड का अस्तित्व ओरछा, महोबा, कालपी, चित्रकूट, पन्ना, बाँदा और कालिन्जर आदि के प्रमाण साहित्य व इतिहास के पन्नों में मिलते हैं।

बुन्देली की उपबोलियों की क्षेत्रीय स्थिति के आधार पर सर्वप्रथम परिनिष्ठित बुन्देली-झाँसी, जालौन, हमीरपुर का दक्षिण पूर्वी भाग, ग्वालियर, पूर्वी भोपाल, रायसेन, ओरछा, टीकमगढ़, ललितपुर, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबाद क्षेत्र में, पंवारी-ग्वालियर पूर्वोत्तरी भाग, दतिया और डबरा। लुधांती, राठौरी-जालौन, हमीरपुर जिले के कुछ भाग। खटोला-पन्ना सागर बण्डा छतरपुर बिजावर और दमोह।

भदौरी–भिण्ड ग्वालियर आगरा मैनपुरी इटावा बनाफरी–पूर्वोत्तर बुन्देलखण्ड बाँदा, चित्रकूट हमीरपुर का कुछ भाग बुन्देली भाषी कहलाता है। हिन्दी और लोक भाषा बुन्देली में परस्पर घनिष्ठ अंतर संबंध रहे हैं, विचारों के आदान–प्रदान और पारस्परिकता के सूत्रों की यदि विवेचना करें तो हमें इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। बुन्देलखण्ड के छत्रपति छत्रसाल महाराज ने–'इत जमुना उत बेतवा, इत चम्बल उत टोंस' कहकर चारों नदियों के किनारे बिखरे बुन्देली लोक साहित्य, संस्कृति और समसामयिक इतिहास की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। विंध्याचल की यह उपेक्षित उपत्यका साहित्य और सृजन, शब्द और अर्थ तथा अर्थ विस्तार की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। मानक हिन्दी के शब्दों के अभावों की पूर्ति के लिए बुन्देली के हजारों शब्द हैं जो भाषा की समृद्धि में महती भूमिका निभाते रहे हैं। अधिक के लिए शब्द छटा देखिए– ऐंन, मुलकन, खूबईं, बिलात, हरक, कसकें, जमकें, भौत, अगरौ, बेसी, मुलक्कौ, जादा, मुतकौ, कुलकौ, अतकारौ आदि। इसी प्रकार मिट्टी की स्थिति के लिए शब्द देखिए– गिलगिली, तीती, भींजीं, झंजानी, ठटानी, पड़ क्यानी, सूकी, रुखानी, उटकी आदि। वस्त्र पर पानी के प्रभाव की स्थिति देखिए–सियानों–नमी खाया हुआ, गदमसौ–पूरई तरह से सूखा न हो, तींतौ, भीजौ, चोरबोर–इतना अधिक गीला कि पानी टपके। ग्राम जीवन की झाँकी देखिए–पछुआ हवा, संजाबाती, गोरसी, तुलसी चौरा, पटा, पीढ़ा, सिंगौटा, खरिया के साथ हार–पहार, नदी कछार, बेर, करौंद, मकुई, झरबेरी आदि शब्दों के साथ टिकली, पैजन, करधन, चुनरियाँ, बाजूबंद आदि गहनों के साथ, रिश्तों में बड़की, छुटकी, दिदिया, बप्पा, महतारी, नाती–नतुरा आदि सगे सम्बन्धियों को दर्शाते शब्द हैं। बुन्देली की सांस्कृतिक परम्परा आचार–विचार, रीति–रिवाज, पर्व – उत्सव, कला–कौशल, विश्वास, प्रथाएँ, संस्कार आदि से संबंधित बेजोड़ शब्दावली मिलती है। बुन्देली वैदिक संस्कृत से अनुप्राणित होते हुए भी ब्रज, अवधी, कन्नौजी आदि लोक भाषाओं से अंतर–संबंध स्थापित कर आदान–प्रदान और पारस्परिकता के सूत्रों से सम्बद्ध है। डॉ. वागीश शास्त्री जी कहते हैं कि एक क्षेत्र की बुन्देली भाषा को दूसरे क्षेत्र के बुन्देली भाषी जन अच्छी तरह समझ–बूझ लेते हैं, बिना किसी कठिनाई के परस्पर सम्भाषण भी करते हैं। **(5. बुन्देलखण्ड की प्राचीनता–डॉ. वागीश शास्त्री लेख–बुन्देलखण्ड धारणाएँ और मत मतान्तर पृ. 47–49)**

बुन्देली भाषा के उद्भव और विकास के नियमों का बोध एक विशेष अर्थ में ध्वनियों के अध्ययन द्वारा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपेक्षित है। बुन्देली आज भी लोकजीवन की संजीवनी शक्ति है और जन–जन के मन, हृदय और बुद्धि को संस्कारित करने में सर्वथा सक्षम व समर्थ है।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
पं. दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं
वाणिज्य महाविद्यालय,
सागर -470001 (म. प्र.)
मो.- 9425693570

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई–बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट–कार्ड पर अपना पूरा नाम–पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है–

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

हिंदी और लोकभाषा बघेली

– बाबूलाल दाहिया

लोक भाषाओं या उनकी उपबोलियों का प्रादुर्भाव आवश्यकता के अनुसार हुआ है। परन्तु भाषा उनका परिष्कृत और कई लोक भाषाओं का विस्तृत स्वरूप होता है। इसलिए लोकभाषाएँ, भाषाओं का रूप विस्तार कर उन्हें उसी प्रकार अर्थवान बनाती हैं जैसे तमाम छोटी-छोटी नदियों की जलराशि सिमट किसी बड़ी नदी को विस्तारित कर उसे पानीदार बना देती है। अक्सर देखा जाता है कि किसी शब्द का उद्भव तो पहले बोलियों में हुआ पर आदान-प्रदान के माध्यम से उससे समृद्ध वहाँ की भाषा भी होती रही है। क्योंकि वह बहुत बड़े क्षेत्र को जोड़कर वहाँ की सम्पर्क भाषा का काम भी करती है। उदाहरण के लिए यदि सर्प शब्द का प्रादुर्भाव हुआ होगा तो सीधे कोई उसे देखकर सर्प-सर्प नहीं चिल्लाने लगा होगा। बल्कि उसके साथ बनने का कुछ न कुछ कारण भी रहा होगा। हो सकता है आदिम मानव के किसी रहवास में सर्वप्रथम एक अनाम जन्तु आया हो जिसके सूखी घास या पत्तों के बीच चलने से सर-सर की ध्वनि निकलती रही हो। फिर वह जन्तु परिवार के किसी व्यक्ति को काटकर चला गया जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

अस्तु आदि मानवों के बीच घास पत्तों के सरसराहट से निकली उस ध्वनि के आधार पर उसकी पहचान अब (सर-सर) की ही बन गई होगी। लेकिन जब वही प्राणी पुन: उनके रहवास के आस-पास दिखा तो देखने वाला भयाक्रांत हो सर! सर! सर! कहता हुआ चिल्ला उठा होगा। उसके मुँह से उक्त आवाज सुन परिवार के सदस्य चौकन्ना हो समझ गए कि 'वह जन्तु पुन: हमारे रहवास में आ गया जो परिवार के अमुक सदस्य को काट दिया था और वह तीन-चार घण्टे में ही हमारे बीच से चल बसा था।' इस तरह सभी बचाव की मुद्रा में आ गए तभी एक व्यक्ति ने अपनी लाठी उठाया और उस सर-सर के ऊपर ऐसा प्रहार किया कि सप्प-सप्प की आवाज के साथ वह पूर्णत: शान्त हो गया। परन्तु जब तीसरी बार वही जन्तु उन गुफा वासियों को कहीं दिखा होगा तो लोग अब उसे सर-सर-सर के बजाय सूखे पत्ते और लाठी की संयुक्त ध्वनि के आधार पर ही (सर-सर-सप्प!) कहने लगे होंगे जो कालांतर में 'सर्प' शब्द बन गया। परन्तु वह शब्द जब हिन्दी में आया होगा तो कार्य के आधार पर नहीं बल्कि (सर-सर-सप्प) का एक परिष्कृत रूप ग्रहण कर सर्प या साँप के रूप में जो उसके बनने के मूल कारण से कोसों दूर था। कहना न होगा कि हमारी लोक भाषाओं के शब्द जंगल में उगे उन बेतरतीब पेड़ों की तरह हैं जहाँ कहीं महुआ अपनी मादकता बिखेर रहा है तो कही करौंदा अपनी सुगंध। अगर आस-पास ही फलों से लदे तेंदू, चार आदि उगे हुए हैं तो वहीं पीले फूलों से लदा अमलतास और समस्त जंगल में अपने फूलों की लालिमा बिखेर देनेवाला पलाश भी। क्योंकि वहाँ किसी के लिए कहीं कोई रोक-टोक नहीं है। जो जहाँ चाहे उगकर अपना विस्तार कर सकता है। लेकिन भाषाएँ हमारी लोकभाषाओं के चरित्र से अलग विकास की छवियाँ गढ़ती हुई इस तरह परिस्कृत होती हैं जैसे कलेक्टर या किसी मंत्री की बगिया के सभी पौधे सिलसिले वार ही लगे मिलेंगे। अगर कोई पौधा किसी निर्धारित स्थान से अलग उगने की धृष्टता करता है तो बागवान अपनी तीक्ष्णधार की खुरपी से खोद कर उसे बाउंड्री के बाहर का रास्ता दिखा देगा।

इस तरह लोक भाषाएँ या बोलियाँ जंगल के पेड़ पौधों जैसी बंधन रहित उन्मुक्त हैं तो भाषाएँ कलेक्टर या मंत्री की बगिया की तरह सुसज्जित। परन्तु भाषा का अपने अधिकृत क्षेत्र की तमाम लोक भाषाओं से वही रिश्ता है जो किसी माँ और बेटी के बीच होता है। सीमित क्षेत्र ही सही पर लोक भाषा अपने क्षेत्र विशेष में लोक ब्यौहार की समूर्ण भाषा ही होती है जिसमें अपनी आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त शब्द होते हैं। क्योंकि जब कोई शहर का व्यक्ति दूकान में गेहूँ चावल खरीदने जाता है तो उसका मात्र दस-बारह शब्दों में ही काम चल जाता है। या, तो वह झोला लेंगे या बोरा, साइकल पकड़ेंगे, या रिक्शा। मोल-भाव, बाट-तराजू, पैसा-दाम। बस इतने शब्दों में ही उसके घरों में गेहूँ चावल आ जाएगा। परन्तु वही गेहूँ - चावल जब गाँव का कोई किसान अपने खेतों में उगाता है तो खेत की तैयारी से लेकर कट-मिंजकर उसके भंडार गृह में आते-आते लगभग ढाई-तीन सौ शब्द बनते हैं। लेकिन वह शब्द हिन्दी या

पद्मश्री विभूषित बघेली भाषा, साहित्य और संस्कृति के अध्येता-साहित्यकार

अन्य भाषाओं के नहीं होते? वे होते हैं लोकभाषाओं के बघेलखण्ड में वे बघेली के होंगे, बुन्देल खण्ड में बुन्देली के या मालवा, निमाड़ वाले क्षेत्र में मालवी, निमाड़ी के। इसके बाबजूद भी वे मजबूती अपनी भाषा को ही प्रदान करते हैं जिसके अंतर्गत बहुत सारी बोलियाँ उसकी उप भाषा के रूप में होती हैं।

बघेली शब्द सम्पदा के प्रमुख स्त्रोत-अंग्रेजी में गाँव को (विलेज) कहा गया है जिसका आशय (विला) यानी कि राजमहल के आस-पास बसने वाले सेवकों-गुलामों की बस्ती होता है। पर बघेल खण्ड में देखा जाए तो यहाँ गाँव में कृषि आश्रिति समाज के किसान, श्रमिक, खेती के उपकरण बनाने वाले शिल्पी एवं कुछ अन्य तरह की सेवाएँ देने वाले समुदायों के लोग तो रहते थे पर अंग्रेजों के विलेज की तरह कोई किसी का गुलाम नहीं था। बल्कि परस्पर एक दूसरे के सहयोगी का रिश्ता ही रहा है जिनमें आपस में वस्तु विनिमय होता था। यही कारण था कि उनके सभी के अपने-अपने कार्य क्षेत्र और उन कार्यों की अलग-अलग शब्दावलियाँ थीं। यहाँ तक कि उनके कार्यों से जुड़े उपकरणों एवं निर्मित वस्तुओं के अलग-अलग नाम भी थे जो हिन्दी के साथ मिलकर उसे भी समर्थवान बनाते थे अस्तु उनके अन्तर सम्बन्ध स्पस्ट थे। प्राचीन समय में गाँव में एक मुहावरे नुमा शब्द प्रचलन में था (सतीहों जाति) जिसका आशय था कि यदि किसी गाँव में 7 द्यमियों की जातियाँ निवास करती हैं तो वह आत्मनिर्भर गाँव माना जाता था। तब वहाँ बाहर से मात्र लोहा और नमक ही आता था। बाकी लोगों के जरूरत की समस्त वस्तुएँ गाँव में ही निर्मित हो जाती थीं। लोग बघेली में कहते कि-'कस हो? तुम व गाँव के आह्या जहाँ सतीहों जाति बसी लाग हईं?' अर्थात्-तुम उस गाँव के हो जहाँ समस्त जातियाँ निवास करती हैं? और वह उद्यमी जातियाँ थीं (लौह शिल्पी, काष्ठ शिल्पी, तेल प्रेरक, मिट्टी शिल्पी, बुनकर, चर्मशिल्पी, बाँस शिल्पी, नाई, धोबी) आदि। एक ओर तो वह अपने काम के लिए खुद ही उपकरण की परिकल्पना कर उन्हें मूर्तरूप देते तो दूसरी ओर उपभोक्ताओं के उपयोग की भी अनेक वस्तुएं बनाते। उदाहरण के लिए यदि मृदा शिल्पी (कुम्हार) ने अपने लिए चाक, थापा, पींढ़ी, साँचा जैसे उपकरण की जरूरत समझ उन्हें बनाया तो उपभोगताओं के लिए भी उसने 30-35 प्रकार के बर्तन बनाकर दिए। लेकिन वस्तुओं के गुणधर्मों के अनुसार अपनी-अपनी वस्तुओं का नामकरण भी उन तमाम शिल्पियों ने खुद ही किया। उनके समस्त उपकरणों के बघेली नामों ने हिन्दी के शब्द सम्पदा को किस प्रकार बढ़ाया यहाँ देना समीचीन होगा।

1- लौह शिल्पी (लोहार)-फरुहा, कुदारी, सबरी, कुल्हारी, तारा, उघन्नी, हँसिया, खुरपी, निहान, बसूला आदि पचास-साठ प्रकार की उपभोक्ता वस्तुएँ और हथौड़ा, निहाई, संसी आदि उपकरण खुद के उपयोग के लिए।

2- काष्ठ शिल्पी (बढ़ई)-खाटिया, मचिया, मचबा, तखता, हर, जुआ, पाटा, बैलगाड़ी आदि 50-60 प्रकार की वस्तुएँ एवं अपने काम में प्रयुक्त निहान, बसूला, रमदा आरी आदि भी।

3-तेल प्रेरक (तेली)-कोल्हू, लाठ, कुरुआ, पउठी, परी, तेलहड़ा आदि वस्तुएँ अपने लिए एवं तिल, अलसी, महुआ की गुल्ली, सरसों राई, नीम की गुठली आदि के तेल निकाल उपभोक्ताओं के लिए।

4-मृदा शिल्पी(कुम्हार)-चकबा, पींढ़ी, थापा, साँचा, कूँड़ा, पत्थर की बटइया आदि उपकरण अपने लिए एवं-गगरी, कलसा, मरका, मरकी, नाद, डहरी, डबुला, हड़िया, तेलइंया, पइना, चुकरी, दिया, दोहनी, मेटिया आदि तीस पैंतीस प्रकार के बर्तन उपभोक्ताओं के लिए भी।

5-चर्मशिल्पी-राँपी, फरुहा, सुतारी, गोड़इया आदि उपकरण अपने लिए वहीं पनही, सुत्तरिया, जोतावर, चपका, ढोलिया की चर्म पट्टिका, खलइता, तरसा एवं चमौधी आदि सात-आठ प्रकार की उपयोग की सामग्री उपभोक्ताओं के लिए।

6-बुनकर-चरखा, तकली, करघा, आदि उपकरण तो अपने लिए एवं ख्वार, पिछउरी, पुटकिहा आदि के साथ कई तरह के पहनने एवं ओढ़ने अदसाने के लिए कपड़े ग्राहकों के लिए।

7-बाँस शिल्पी-टाँगी, बाँका आदि उपकरण अपने लिए एवं सूपा दौरी, झाँपी, झपलइया, बेनमा, कुड़वारा, झउआ, टोपरा, बेलहरा आदि 20-25 प्रकार के बर्तन एवं उपभोक्ता वस्तुएँ ग्राहकों के लिए।

8-पत्थर शिल्पी-छेनी, टाँकी, हथौड़ा आदि उपकरण अपने लिए एवं चकिया, चकरिया, लोढ़ा, सिलौटी, जेता, खल, घिनोची, कुड़िया, पथरी, होड़सा, चौकी आदि 14-15 प्रकार की प्रस्तर वस्तुएँ ग्राहकों के लिए।

9-धातु शिल्पी-हथौड़ा, मोगरा, साँचा, संसी, पथरौटा आदि उपकरण तो अपने लिए एवं लोटा, थरिया, गिलास, तबेलिया, बटुआ, हाँडा, परात, घण्टी, पीकदान, कलसा, पानदान, डोलची आदि 40-50 प्रकार के बर्तन ग्राहकों के लिए। जो हिन्दी की उप भाषा बघेली के अंतर्गत नामकरण के कारण अंतत: हिन्दी को ही समृद्धता प्रदान करते थे। इनमें कुछेक नाम तो पहले ही हिन्दी के हो चुके थे।

बघेली का लोक साहित्य-वर्तमान 9 जिलों का सीमित क्षेत्र होने के कारण बघेली का लिखित साहित्य अन्य बोलियों के मुकाबले भले ही कमतर हो। पर वाचिक परम्परा के साहित्य को कम करके नहीं आँका जा सकता। इस मौखिक साहित्य में मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें, पहेलियाँ, लोकगीत, लोक-कथाएँ, झाड़-फूँक के मंत्र आदि अनेक विधाएँ हैं जो बघेली के साथ ही हिन्दी की शब्द सम्पदा को भी मजबूती प्रदान करती हैं। बानगी के तौर पर कुछ को यहाँ देना समीचीन होगा। मुहावरे-लोकोक्तियाँ बघेली में हजारों ऐसे मुहावरे लोकोकियाँ हैं जो लोक जीवन के क्रिया कलापों को अभिव्यंजित

करते हैं। और अब तो अपनी लोकप्रियता के कारण हिन्दी में अनूदित होकर उसके अंतर-संबंधों को और भी प्रगाढ़ बनाने लगे हैं। इधर कुछ कवियों की कविताओं और विद्वान लेखकों के लेखों, निबंधों में भी उनका समावेश हुआ है। बानगी के तौर पर कुछ दोहे प्रस्तुत हैं-

हिन्दी कविताओं में प्रयुक्त बघेली मुहावरे -

1- लाटा कटब (आपस में अत्यधिक प्रेम)

2- पाथर म दूब जमाउब। (दुस्तर कार्य को कर लेना)

हिन्दी दोहे

लाटा कटते इन दिनों,
दोनों के हैं खूब।
लगता उगवाकर रहें,
गे पत्थर में दूब।।

(अनुपम दाहिया)

1- हूंम करत म हाथ जरब (अच्छाई का परिणाम बुराई के रूप में दिखना)

2- नीक किहे म नांगा होब (अच्छा काम बिगड़ कर बुरा हो जाना)

अच्छाई के भी कभी,
रहे बुराई साथ।
इसीलिए जलजात हैं,
होंम किए में हाथ।।

(अनुपम दाहिया)

1- लेड़इंयन म दारू न खोउब (अनावश्यक कार्य में चीज बर्बाद न करना)

2- हुशियारी से काम करब (समझ बूझ कर काम करना)

समझदार का काम सब,
सोच समझ से होय।
ब्यर्थ लेड़इयों में कभी,
दारू देत न खोय।।
(अनुपम दाहिया)

1- पोबा और पीसा-बनी हुई रोटी एवं पिसा हुआ आटा।

2- तात भात का ढीसा-पका हुआ चावल का ढेला।

पोबा चाहे पीसा चाहे,
तात भात का ढीसा चाहे।
कल तक रहा भूत का संगी,
अब हनुमान चलीसा चाहे।।

(डॉ. शिव शंकर मिश्र 'सरस')

लोकोक्तियाँ

1-गीध के खोथइला म धरे से मांस नहि बचय?

(अपनी अमानत को उचित स्थान पर रखना ही समझदारी है।

अगर गिद्ध के पाल में,
रखें अमानत माँस।
उसके वापस लेंन की,
कभी करें मत आस।।

(रमेश प्रताप सिंह)

2-लोटबा हेरान, गगरी म हाथ डार के ढूढ़य।

(बड़ी वस्तुएँ गुम जाएँ तो छोटे स्थानों पर खोजने से नहीं मिलतीं)

लोटा तो चोरी हुआ,
चोर लेगया साथ।
खोज रहे वे घड़े में,
व्यर्थ डाल कर हाथ।।

(अनुपम दाहिया)

3-उनहीं तो रोमइन क रहा, पय आँखी म फिट किरिउ परिगय।

(एक और बहाने का सहारा मिल जाना)

रोना ही वह चाहतीं,
भले मनाएँ लाख।
और बहाना मिलगया,
पड़ी फिटकिरी आँख।।

(डॉ. राम यस बागरी)

4- लाख जाय पय, आपन साख न जाय।

(सब कुछ गवाँकर कर भी अपनी प्रतिष्ठा बचाकर रखना)

हम तो टस से मस नहीं
भले कष्ट हों लाख।
सब कुछ खोकर भी रखें,
बचा आपनी साख।।

(डॉ.रामयस बागरी)

5- **लहटी गाय गोलइदा खाय।**
धउर धउर मऊहारे जाय।।
(अपनी आदत से मजबूर)
जिसकी जैसी पड़ गई,
आदत कभी न जाय।
बार-बार मौहार ज्यों,
भागे लहटी गाय।।

(डॉ. रामयस बागरी)

कहावतें–बघेली के मौखिक साहित्य की एक विधा कहावत भी मानी जाती है जिसमें मौसम विज्ञान, खेती, किसानी, लकड़ी और पशुओं की पहचान का बहुत बड़ा अनुभव जनित ज्ञान छिपा है। कुछ कहावतें प्रस्तुत हैं –

पुखा पुनरबस भरे न ताल।
तौ पुनि भरिहैं अगले साल।।

लगतय अद्रा बोबय साठी।
सब दुख मार निकरय लाठी।।

करिया बरदा जेठ पूत।
बड़ी भाग मा होंय सपूत।।

हर सांदन धबई कय नास।
जाय न हरबी बढ़ई पास।।

यह तो बघेली की कहावतें हुईं। परन्तु बघेली की इसी पृष्ठिभूमि पर कुछ कहावतें हिन्दी में भी हैं जिससे उसके अंतर–संबंधों को देखा जा सकता है।

ढेला ऊपर चील्ह जो बोले।
गली गली में पानी डोले।।

जो जानहु पिय सम्पति थोड़ी।
लेलो गाय बियाउर घोड़ी।।

खेती करे रात्रि घर सोबे।
काटें चोर हाथ धर रोबे।। आदि–आदि।

पहेलियाँ–प्राचीन समय में जब आज जैसे मनोरंजन के साधन नहीं थे तब लोग घंटों पहेलियों में ही अपना बुद्धि विलास करते रहते थे। अस्तु बघेली में एक बहुत बड़ा मौखिक साहित्य पहेलियों के रूप में भी उपलब्ध है। यह दो तरह की होती हैं–
1–साधारण पहेली।
2–कूट पहेली।
साधारण पहेली का उत्तर तो एक वाक्य में ही खोजकर दे दिया जा सकता है। परन्तु कूट पहेलियों के उत्तर खोजना थोड़ा कठिन होता है।
पहेली –

घर रहय त दुवार से निकरि गा,
मैं कहाँ से जाँव।
(मेरा घर तो द्वार से ही निकल गया पर अब मैं कहाँ से निकलूँ)
उत्तर–मछुआरे के जाल में फँसी मछली।

बघेली की तरह ही उसी भावभूमि में कही गई हिन्दी की पहेली–

उड़े जहाँ खन खन करे,
बैठ डंख फैलाय।
मारे लाखों जीव पर, आप नहीं कुछ खाय।।

उत्तर–वही, मछली पकड़ने का जाल।
(सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू')

कूट पहेली –

आठ पाँव तरहंगा,
चार पाँव उपरंगा।
कहे से मनिहा झूठ,
दश आँखी एक पूँछ।।

इस कूट पहेली के अनुसार एक मृत पशु को चार लोग कंधे में रखकर लिए जा रहे थे। अस्तु जमीन में चलने वालों के आठ पैर हुए। साथ ही ऊपर की ओर चार पैर उस मृत पशु के। इसी तरह आठ आँख इनकी और दो उस पशु की कुल दस आँख तथा एक पूँछ उस मृत पशु की ही इस पहेली का उत्तर है।
बघेली से अनुप्रेरित और उससे अंतर–संबंध जोड़ने वाली हिन्दी की एक कूट पहेली–

शंख सो उज्ज्वल शशि वरण,
मलयागिरि को वास।
अरे वणिक तू तौल दे,
माँग पठाया सास।।

इस कूटपहेली के अनुसार किसी सासू ने अपनी बहू से कहा कि 'बहू तुम बाजार जा रही हो तो देवालय में जलाने के लिए आरती के लिए कपूर लेते आना।'

बहूँ ने हाँ तो कह दिया पर जब दूकान में गई तो एक समस्या सामने आ गई कि कपूर का नाम लेकर वह उस वणिक से कैसे माँगे? क्योंकि उसके पति का नाम (कपूर चंद) ही था और हमारे बघेल खण्ड में महिलाएँ अपने पति का नाम नही लेतीं। आखिर उसने उपाय खोज निकाला और वणिक से कहा कि 'मेरी सासू ने एक ऐसी वस्तु मँगाया है जिसका रंग शंख की तरह सफेद, बनावट चंद्रमा की तरह और मलियागिर (चन्दन) जैसी उसमें वास आती है। अस्तु वह मुझे दे दो?' वणिक समझ गया और उसे कपूर लाकर दे दिया।

इस तरह हमारी भाषा हिन्दी से लोक भाषा बघेली के बहुत सारे प्रसंगों में कुछ तो प्रत्यक्ष एवं कुछ अप्रत्यक्ष अनेक अंतर-संबंध जुड़े हुए हैं।

लोकगीत-यदि बघेली के लोकगीतों को देखा जाए तो उन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है-

1-**संस्कार गीत**-यह महिलाओं द्वारा रचे गए लोकगीत हैं जो हमारे संस्कारों से जुड़े होने के कारण जन श्रुति में पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं। इनकी 60-70 प्रकार की राग रागनियों की शैली होती हैं जो अलग-अलग अवसरों में गाए जाते हैं। इन गीतों में सोहर, कुँआ पूजन, विवाह, द्वारचार, परछन, कोहबर आदि अवसरों के समय गाए जाने वाले प्रमुख गीत होते हैं। संस्कारों से जुड़े होने के कारण यह गीत ग्रामीण शहर दोनों जगह प्रचलन में हैं। यहाँ कुछ गीत प्रस्तुत हैं-

कुँआ पूजन गीत-इसमें पुत्र-पुत्री जन्म के बारहवें दिन एक रस्म कुँआ पूजन की होती है। उसमें महिलाएँ संतान जनने वाली जच्चा को समूह के साथ लेकर यह गीत गाते हुए पानी भरने जाती हैं-

ऊपर घटा घहराय हो,
गोरी धना पानी क निकरीं।
जाय कहा मोरे बारे ससुर से।
दुअरा म कुँवना खनामय हो,
बहूँ उनकी पानी क निकरीं।।
जाय कहा मोरे बारे जेठ से।
दुअरा म कुँवना खनामय हो,
लहुरी बहूँ पानी क निकलीं।।
ऊपर घटा घहराय हो,
गोरी धना पानी क निकरीं।।

इस तरह कुँआ पूजन के 3-4 अलग-अलग शैली के गीत होते हैं।

सोहर गीत-हमारी बघेली में ननद और भाभी का रिश्ता हँसी-मजाक का होता है। संदर्भ है भाभी के पुत्र जन्म का जब ननद अपने गौर वर्ण के भतीजे को देख भाभी से हास्य-परिहास्य करती है। पर भाभी का उत्तर भी ईंट का जवाब पत्थर से कम नहीं है।

चतुरी खेलय ननदिया,
उहउ हँसि पूछइ,
उहउ हँसि पूछइ हो।
भउजी कउन छयल चित दीन्हे,
ललन अति सुन्दर हो।।
पान क बीरा लगायव,
अउ दोहरी सुपरिया,
अउ दो हरी सुपरिया हो।
ननदी ननदोइया हाथे म दीन्हेव,
न जानेव इहउ गुन हो।।

पउड़ का गीत-यूँ तो विवाह में अलग-अलग अवसरों पर कई तरह के गीत गए जाते हैं। परन्तु यहाँ हम एक गीत ही दे रहे हैं। विवाह में जब कन्या घर के अन्दर से आँगन में मंडप के नीचे आती है तो रास्ते में एक कपड़ा बिछाने की रस्म होती है। उसे बघेली में (पउड़) कहा जाता है। लोकगीत के अनुसार एक कन्या के ससुराल बाले उक्त पउड़ को लाना भूलगए थे अस्तु कन्या मंडप के नीचे आने को मना कर देती है। उस पर गीत है कि -

हाथ मा सें धउरी लीन्हे,
मुँख बीरा पान हो की,
बिना पउड़ ढेरिया मोरी,
चउके न जाय हो।
यतना जो सुनि पामय,
ससुरा फलाने रामा,
मूंडे कय मुरइठी लइके,
पउड़ मा दशामय हो।
यतना जो सुनय,
ननदोइया फलाने रामा,
काँधा कय आँगउछी लइके,
पउड़ म दशामय हो।
यतना जो सुनि पामय,
देवरा फलाने रामा,
हाँथे कय उरमलिया लइके,
पउड़ म दशामय हो।

विवाह या पुत्र जन्म पर सोहर, कुँआ पूजन आदि के गीत संस्कारों में इस तरह शामिल हैं कि भले ही शहर का कितना भी सुशिक्षित समाज हो पर उसे भी यह औपचारिकताएँ करनी ही पड़ती है। इसलिए हिन्दी के अंतर-संबंधों से सांस्कृतिक जुड़ाव तो वैसे ही है। पर अब कुछ सोहर गीत और विवाह गीत भी उसी पृष्ठिभूमि पर गाए जाते हैं जो बघेली के हिन्दी से अंतर-संबंधों को और भी सुदृढ़ कर रहे हैं। गीत तो हिन्दी में हैं परन्तु समस्त परम्पराएँ बघेली की ही होती हैं।

हिन्दी का सोहर गीत –

तुम तो अटारी चढ़ जाना, बहाना पिया हम कर लेंगी।
सासू जू आएँ पिपरी पिसन को, पिपरी पिसाई नेंग माँगें,
बहाना पिया हम कर लेंगी।

पोता तुम्हारो सासू हम भी तुम्हारी, बेटा तुम्हारे घर नहियाँ,
तिजोरी में ताला लगो है।
तुम तो अटारी चढ़ जाना, बहाना पिया हम कर लेंगी।।

ननदी जी आएँ सोबर पोतन को, सोबर पोताई नेंग माँगें,
तुम तो अटारी चढ़ जाना, बहाना पिया हम कर लेंगी।
भतीजा तुम्हारो ननदी हम भी तुम्हारी, भैया तुम्हारे घर नहियाँ,
तिजोरी में ताला लगो है।
तुम तो अटारी चढ़ जाना, बहाना पिया हम कर लेंगी।।

बघेली के पृष्ठभूमि में हिन्दी का विवाह गीत –

आजा प्यारी बन्नी, बन्ना तो फैसनदार है।
हाथ बना के कंगन सोहे,
कलगी की बहार है,
आजा प्यारी बन्नी, बन्ना तो फैसनदार है।।
माथ बना के मौरी सोहे,
फेंटा की बहार है।
आजा प्यारी बन्नी, बन्ना तो फैसनदार है।।

2– **पर्व गीत**–यह गीत होली दीवाली नवरात्रि, आदि के समय गाए जाते हैं।

दिवाली–दिवाली जगाने का गीत मुख्यत: यादवों द्वारा गाया जाने वाला नृत्य गीत होता है जिसमें ऊन के बालों से बुनी जालीदार डोर पहन कर वे नृत्य भी करते हैं। यह गीत प्राय: राधा कृष्ण के प्रेम–प्रसंगों अथवा गो चारण से जुड़े हुए होते हैं। यथा–

ऊमर फरी कठूमर,
घउचन फरी खजूर,
कउन कउन फर खइहा ददऊ,
गउअय गई बड़ी दूर।।

होली–होली में मुख्यत: फाग गाई जाती हैं जो दोकड़िया, चौकड़िया आदि कई तरह की होती हैं। उनमें कुछ तो बहुत अश्लील भी रहती हैं। नमूने के तौर पर एक दुकड़िया फाग गीत प्रस्तुत है –

का आमय दरबारी,
तोहरे का आमय दरबारी।
खोखली धरे सुपारी,
तोहरे का आमय दरबारी।।

बघेली फाग गीत की लोक प्रियता से प्रभावित कुछ गीत अब हिन्दी में भी रचकर गाए जाने लगे हैं। यथा –

बेसरिया ना झिगझोरो पिया,
झुलनी में दरेरा लागे।
झुलनी में दरेरा लागे पिया,
झुलनी में दरेरा लागे।।

भगत गीत–भगत गीत चैत अथवा क्वार माह में देवी उपासना के समय प्रतिपदा से अष्टमी तक गाए जाते हैं। कुछ गीतों में भक्तों व देवी के बीच प्रश्नोत्तरी भी होती है। यथा–

मइया के दुवारे एक तिरिया रोबय,
अँखियन बह जल धार हो मा।
धउ तोही सास ननद दुख दीन्हे,
की सइंयाँ दुख दीन हो मा।
मोरे दुआरे कहे रोये तिरिया,
जियरा क भेद बताव हो मा।।
ना मोहि सास ननद दुख दीन्हिन,
ना सइंयाँ दुख देंय हो मा।
टोला परोसी के बाँझ कहत हैं,
या दुख सहो न जाय हो मा।।
जा–जा तिरिया अपने भमन का,
तोही बालक हम देबय हो मा।।

पर इसी पृष्ठिभूमि में एक हिन्दी की भगत भी–

माई शारदा मढ़िया बिराजी,
कर सोलह श्रंगार होमा।
माथ में उनके बिंदिया सोहे,
सोहे महावर पांव होमा।।

3–जातीय गीत–यह गीत कुछ जातियों के नामों से चिह्नित हैं जिन्हें, करमा, दादर, बिरहा, सजनई आदि नामों से जाना जाता है। यूँ तो जातीय गीत तेली,कुम्हार, यादव, गड़ारी, धोबी, कोल आदि प्राय: सभी मेहनत कस जातियों में गाए जाते थे। पर लोहार, बढ़ई इसके अपवाद हैं। क्यो कि कि वह बसूला हथौड़ा चलाते इतना थक जाते

थे कि रात्रि में भोजनोपरांत फिर उन्हें खाट ही दिखती थी। कुछ जातियों के गीत प्रस्तुत हैं–

तेली जाति के विरहा गीत–अक्सर जातीय गीत उसी परिवेश के होते हैं जिस परिवेश में यह मेहनत कस जातियाँ रहती हैं। कहते हैं एक बार जेठ माह में इस तरह अंधड़ तूफान के साथ बारिश हुई कि एक तेली के मुहल्ले वाले कुम्हार के समस्त कच्चे बर्तन आदि घुल गए। उधर एक खटिक के आम जामुन भी झड़ गए जो उसने ठेके पर ले रखे थे। पर तेली ने अनुभव किया कि 'मेरा धंधा कितना निरापद है कि चाहे आँधी आए य पानी गिरे मेरे धंधे में कोई आँच आनेवाली नहीं है?' उसका वह अनुभव विरहा में आए बिना भला कैसे रहता? यथा–

आँधी देखे खटका रोबय,
पानी देख कुम्हार।
मन मन गलकय तेलिन बिटिया,
भला मोर रोजगार।।

इसी तरह एक धोबी कपड़े का गठ्ठर लेकर नदी में उन्हें धोने के लिए गया हुआ था। एक ओर वह कपड़े साफ कर रहा था तो नदी के दूसरे छोर में बकुला डुबकी लगा मछली पकड़ रहा था। धोबी ने सोचा कि 'आज मैं अपने कपड़ों की ऐसी फिंचाई करूँगा जिससे बकुला की तरह सफेद झक्क दिखने लगें। पर जब वह धोते-धोते थक गया और कपड़े सफेद न हुए तो उसी पत्थर में बैठ सुस्ताने लगा जिससे उसके मन में एक विरहा गीत सृजित हो उठा कि–

या तीरे धोबी ओढ़ना पिखारय,
वहैं बकुला करय असनान।
मोर बरन ना पइहे रे धोबी,
फार न ओढ़ना बिरान।।

एक भेड़ पालक गड़रिए के घर में भेड़, बकरी दोनों पली हुईं थीं। उसने अनुभव किया कि बकरी से हमारी भेड़ अधिक उपयोगी हैं। अस्तु वह अनुभव उसके विरहा गीत में आना स्वाभाविक था? यथा –

छेरी से गाजर भली,
कुटुर कुटुर फर खाय।
जियत ओढ़ाबय कारी कमरिया,
मरे गोस दइजाय।।

बघेलखंड में कोल आदिवासियों की बहुत बड़ी आबादी निवासरत है। उन्हें एक प्राचीन सम्मान सूचक नाम (गउटिया) से भी पिकार जाता है। जो मुखिया का पर्याय है। विपन्नता में जीवन यापन करने वाला यह समुदाय य तो बनी मजदूरी से अपनी आजीविका चलाता है या फिर जंगल से लकड़ी काट और बेचकर। पर अगर सूखा पड़ गया तो काम की तलाश में पलायन भी करना पड़ता है। कोलों के जातीय गीत को दादर कहा जाता है जो एक या दो पंक्तियों के अनुशासन में बँधा रहता है। उनका एक दादर गीत प्रस्तुत हैं –

बरखा न पानी,
झुखाय गई धानय।
चला चली गउटिन अब,
कोइलिया खदानय।।

लेकिन जब मानसून की बारिश हो गई तो पुन: उसे अपने गाँव की याद सताने लगती है। यथा–

गिरगा है दउगरा,
बहाए बूढ़ा कछरा।
चल गउटिन लउटि चली,
अब अपने देसरा।।

इस तरह बघेल खण्ड में अनेक जातियों के जातीय गीत हैं। पर नई पीढ़ी अब पूरी तरह भूलती जा रही है। अस्तु यह क्षति बघेली के साथ-साथ हिन्दी की भी है।

4–फुटकर गीत–फुटकर गीतों में टिप्पा राई आदि कुछ गीत आते हैं। टिप्पा प्राय: काम करते हए श्रम की दुरूहता को हल्का बनाने के लिए गाया जाता है। वह दो पंक्तियों के अनुशासन में बँधा एक प्रेमगीत है। इस गीत की मारक क्षमता हिन्दी के मुक्तक या दोहे की तरह ही होती है जो जवाब-सवाल में गाया जाता है। यहाँ उसी जवाब-सवाल में टिप्पा गीत प्रस्तुत हैं–

छुइला के पत्ता झिझिरियाँ देखाय।
छैला काहे दुबराने पसुरियाँ देखाय।।
गोहूँ कय रोटी गोजहरा भय।
मन लइगय बिटीबा उचहरा कय।।
खाते सेमइंया बतउते भाजी।
तोरे जियरा म छैला दगाबाजी।।
तोर मोर आरी दइउ जांनय।
जइसय गंगा म जमुना हिलोर मारय।।

इस तरह घण्टों-घण्टों तक यह गीत जवाब-सवाल में चलते रहते हैं।

बघेली लोक कथाएँ–बघेली में अनेक लोक कथाएँ हैं जो बघेली के साथ-साथ हिन्दी के साहित्यिक कोष बढ़ाने में भी सहायक रही

हैं। अब तो बहुत सारी कहानियों का हिन्दी या बघेली नाट्य रूपांतरण भी हुआ है और प्रतीक के रूप में कुछ कवि अपनी कविताओं में भी उनके सन्दर्भों को लेने लगे हैं। एक लोक कथा प्रस्तुत है–एक के करतूत कय सजा दूसर भोगय।

एक बार नदी के इस पार जब सियार के खाने के लिए मकाई खीरा, लेदी (फूट ककड़ी) आदि कुछ न बचे तो उसने एक ऊँट से कहा कि 'भाई इस पार क्यों सूखे पत्ते खा रहे हो? नदी के उस पार मुझे अपनी पीठ में बिठा कर ले चलो। मैं वहाँ तुम्हें ऐसे खेतों में ले चलूँगा जहाँ खाने–पीने की कोई कमी न रहेगी।

ऊँट उसके झाँसे में आ गया और सियार को पीठ में चढ़ा नदी के दूसरी पार उतार दिया। सियार उसे एक किसान के खेत में ले गया जहाँ लेदी (फूट ककड़ी) बोई हुई थी। सियार तो बढ़िया पकी हुई लेदी खाने लगा पर ऊँट उसके अत्ते–पत्ते ही खाता रह गया। दो लेदी खा लेने से ही सियार का पेट भर गया अस्तु वह बोला कि 'भैया मेरा पेट तो भर गया? मेरा मन अब हुआ–हुआ बोलने का करता है।'

ऊँट ने कहा 'अभी इतना जल्दी हुआ–हुआ मत बोलना भाई नहीं तो किसान जाग जाएगा। मुझे भी भर पेट खा लेने दो? अभी तो मेरा पेट ही नहीं भरा।' कुछ देर तक तो वह शांत रहा पर अपने स्वभाव के अनुसार थोड़ी देर बाद ही हुआ–हुआ करके वहाँ से चलते बना। सियार की बोली सुन खेत की रखवाली करनेवाला किसान डंडा लेकर बाहर निकला तो देखा कि उसके खेत में ऊँट घुसा हुआ है। फिर क्या था? बिना वजह ही उसे किसान के डंडे खाने पड़े। परन्तु बघेली लोककथा का यह प्रसंग हिन्दी के एक दोहे में कैसे आता है? डॉ. रामयस बागरी का दोहा द्रष्टव्य है–

ऐसा ही अब चल रहा,
सभी जगह ब्यौहार।
डंडा खाए ऊँट अरु,
लेदी खाय सियार।।

झाड़ फूँक के मंत्र–प्राचीन समय में जब आज जैसी चिकित्सा सुविधा नहीं थी तो कुछ बीमारियाँ झाड़–फूँक से भी ठीक की जाती थीं। कुछ में उनका मनोवैज्ञानिक असर भी हो जाता था। पर हर मंत्र में गौरा–पार्वती महादेव की दुहाई कहना अनिवार्य था।

आई हुई आँख दर्द का मंत्र–समुद्र,
समुद्र म खूँटा,
जेमा बँधा नीला नाटा।
ओखे चार आँखी,
दुइ उज्जर दुइ कारी
लाल लइगा, कारी दइगा।
गौरा–पार्वती महादेव कय दुहाई।

इस तरह हिन्दी के साथ उसकी इस उप भाषा बघेली के अंतर–संबंधों के अनेक उदाहरण हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि भाषाएँ–उप भाषाओं को समाप्त करने में भी अब कोई कोर कसर नहीं छोड़ रहीं। अगर हिन्दी ने एक मानक शब्द को अपना लिया तो वह बहुत सारे पर्यायवाची शब्दों को समाप्त कर देती है जिसका अपवाद हमारी बघेली भी नहीं है।

बालकों में प्राय: स्वभाव गत चंचलता होती है इसलिए उनके क्रिया कलापों पर हमारी बघेली में ढेर सारे पर्यायवाची शब्द मौजूद हैं जो इस प्रकार हैं।

1– टन्नपाली, 2– टपाकी, 3– अउठेरिहा, 4– उधमधारी, 5– उटपटाँगी 6– रसनिहा

परन्तु इतने पर्यायवाची शब्दों को हिन्दी का एक मानक शब्द ही समाप्त करने के लिए पर्याप्त है। वह है (शैतान बालक) इसलिए जैसे–जैसे हिन्दी का विस्तार हो रहा है लोक भाषाएँ सिकुड़नी भी शुरू हो गईं हैं। अब यदि वह जीवित बचेगी तो अपने रहमोकरम पर ही। आज गाँव में अगर एक भी ट्रैक्टर आ गया और उसने किसान के घर से हल को निकाल दिया तो हल के साथ जुआ, ओइरा बाँसा, ढोलिया आदि पचासों उपकरण चलन से बाहर हो जाते हैं। प्रत्यक्ष में उसका खामियाजा तो लोकभाषा बघेली ही भोग रही है पर भाषा से लोक भाषा का आत्मीय जुड़ाव होने के कारण परोक्ष रूप से हिन्दी भी उसके प्रभाव से अलग नहीं है।

पो. पिथौराबाग जिला
सतना–485001 (म.प्र.)
मो.–9981162564

हिंदी और लोकभाषा मालवी

– पूरन सहगल

लोक, लोक भाषा एवं लोक पुरुष तीनों का महत्व परस्पर जुड़ा रहता है। लोक की सीमा तो अगम और अपार है। जहाँ तक यह कायनात है वहाँ तक लोक विस्तारित है। समस्त शक्तियाँ लोक में समाहित हैं। सभी अवतार सम्पूर्ण वाङ्मय और सूचना ज्ञान लोक में निहित एवं समाहित है।

लोकभाषा तो हमारी माँ होती है। हमारी संस्कृति की प्रवक्ता होती है। उसकी मिठास माँ के अमृत दूध के समान सरस और प्राणदायिनी होती है। लोक पुरुष का महत्व लोकभाषा और लोक साहित्य के संरक्षक एवं संवर्द्धक का होता है। इस प्रकार यह त्रयी मिलकर लोक संस्कृति को समृद्ध एवं सर्वव्यापी बनाकर लोक कल्याणी स्वरूप प्रदान करती है। मालवी लोकभाषा पर चर्चा करने से पूर्व हमें मालवा पर भी चर्चा करना आवश्यक होगा।

एक संत ने मालवा की चतुर्सीमा निर्धारित करते हुए अपनी वाणी में कहा है–

'शिवना, शिप्रा, नर्मदा, चम्बल, तीन पठार।
यो म्हारो घर आंगणों, यो म्हारो घर बार।।

(1. संत अमरा भगत-डॉ. पूरन सहगल, पृ. 387)

संत के अनुसार शिवना, शिप्रा, नर्मदा, चम्बल और तीन पठारों से सिंचित और आवेष्ठित अंचल मालवा है। संत का कथन बहुत हद तक उचित भी है। नमर्दांचल के विषय में तनिक विचार करें तब वर्तमान स्थितियों एवं मान्यताओं के अनुसार निमाड़ांचल का पृथक अस्तित्व मान्य है। इसे स्वीकारना होगा। निमाड़ की लोकभाषा निमाड़ी का अपना लोक साहित्य एवं सृजित साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। निमाड़ी के ख्यातिनाम साहित्यकार पं. रामानारायण उपाध्याय, श्री वसंत निर्गुणे, श्री बाबूलाल जी सेन, श्री डॉ. श्रीराम परिहार आदि प्रभृति विद्वानों ने निमाड़ी साहित्य कोष का पर्याप्त मात्रा में समृद्ध किया है। ऐसी ही एक और साखी संत सेन भगत की भी मिलती है। वे कहते हैं –

चम्बल, नर्मद, सीपरा, करतो फिरूँ स्नान।
मालवा अत प्यारो लगे, सेना राखूँ ध्यान।। 1
इत चम्बल उत बेतवा मालव सीम सुजान।
दक्षिण दिसि है नर्मदा यह पूरी पहचान।।

हम मालवा को यदि वर्तमान स्थिति में देखें तो अधिक उचित होगा। मालवा भारत का हृदय अंचल है। आज का मालवा सम्पूर्ण पश्चिमी मध्यप्रदेश और उसके साथ सीमावर्ती पूर्वी राजस्थान के कुछ जिलों तक विस्तार लिए हुए है। इसकी सीमा रेखा के संबंध में एक पारम्परिक दोहा प्रचलित है, जिसके अनुसार चम्बल, बेतवा और नर्मदा नदियों से घिरे भू–भाग को मलावा की सीमा मानना चाहिए–

उत्तर दक्खन, पंचनद, म्हारो खास रहान।
दसपुर में सत संग सुण्यो, कथ्या सुण्या वखाण।।
जिण सुणया तिणलीरिवां, सैना राखूँ ध्यान।।
गागरोन का मुलक में कथ्या खूब वखाण।
किण सुणया, किया लीखिया, सैना राखूँ ध्यान।। (2 प्रकाशक-अमरा भगत अन्नपूर्णा समिति नरबदिया, वर्ष 2022 ई.)

मालवा के निकटवर्ती अंचलों में मेवाड़, हाड़ौती, भीलांचल, गुजरात, महाराष्ट्र, निमाड़ और बुन्देलखण्ड इन्द्रधनुष की तरह अपने–अपने रंग मालवा में बिखरते आ रहे हैं। इन सभी की मिठास और ऐश्वर्य को मालवा ने अपने अंदर समाया है, वहीं इन सभी को अपने जीवन रस से सींचा भी है। वसुधैवकुटुम्बकम् की बात को मालवा और मालवी ने अपने ढंग से सिद्ध किया है। आज क्षेत्र मध्यप्रदेश और राजस्थान के लगभग बीस जिलों में विस्तार लिए हैं। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं। वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्यप्रदेश के उज्जैन संभाग के नीमच, मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इन्दौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इन्दौर जिलों, भोपाल संभाग के सिहोर, राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता

मालवी भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

है। मालवी की सहोदरा निमाड़ी भाषा का प्रयोग बड़वानी, खरगोन, खण्डवा, हरदा और बुरहानपुर जिलों में होता है। मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में मालवी तथा अन्य निकटवर्ती बोलियों जैसे निमाड़ी, बुंदेली आदि के मिश्रित रूप प्रचलित हैं। इन जिलों में हरदा, होशंगाबाद, बैतूल, छिंदवाड़ा आदि उल्लेखनीय हैं।

भाषा, मानव मस्तिष्क की मनोवृत्तियों, विचारों और मनोभावों को व्यक्त करने की शक्ति का नाम है। मनुष्य की चिंतनशीलता को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा ही एक सशक्त माध्यम है। बिना भाषा के चिंतन प्रक्रिया भी संचालित नहीं हो सकती, जिस माध्यम से हम मनन या चिंतन करते हैं, वह भाषा ही तो होती है। उसे हम मौन भाषा कह सकते हैं। वही भाषा जब शब्दों द्वारा उन विचारों को अभिव्यक्त करती है तब वह मुखर हो उठती है।

यह तय करना चिंतक की मातृभाषा पर निर्भर करता है। वह कभी अपनी मातृभाषा में विचारों को व्यक्त करता है कभी किसी अन्य सम्पर्क भाषा में, भाषा तो भाषा होती है। नाद में ध्वनि, ध्वनि में शब्द और शब्द से सार्थक भाषा का स्वरूप तय होता है। वह हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, ब्रज, अवधी, मालवी अथवा राजस्थानी आदि हो सकती है। ये सभी नाम भाषा की विवशता नहीं है। हमारी सुविधा है।

भाषा की मानव जीवन में, अत्यंत महत्त्वपूर्ण अर्थवत्ता होती है। भाषा के बिना मनुष्य गूँगा और विचार कुंठित, बेअर्थे और बासे हो जाते हैं। भाषा तो पशुओं के पास भी होती है। मूक मानव के पास भी होती है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता अत्यंत सीमित एवं अनुमानों पर निर्भर करती है।

भाषा का उद्गम समाज से ही होता है और समाज में ही उसका विकास होता है। भाषा, समाज और संस्कृति का संबंध अत्यंत प्रगाढ़ और अटूट होता है। इनके संबंधों को अलग से पहचानना अथवा परिभाषित कर पाना न तो उचित होता है और न ही संभव। इनमें से किसी एक की पहचान या परिभाषा करते समय तीनों की परिभाषा एक साथ हो जाती है। संस्कृति और सभ्यता का विकास क्रम भाषा और संस्कृति के अंतर-संबंध बने रहते हैं। इनकी संगति और सहगम्यता तथा सहधर्मिता सदा संगत एवं अभिन्न बनी रहती है। भाषा की व्यापकता एवं व्यावहारिकता हमें संस्कृति का विकास क्रम तो बतलाती ही है, उसका प्रमाणिक लेखा भी प्रस्तुत करती है। भाषा का यह लेख ही हमारा साहित्य है। इस दृष्टि से भाषा, साहित्य और संस्कृति का त्रयी बनती है। भाषा की शक्ति का अनुमान तक लगा पाना कठिन होता है, उसकी पराशक्ति, अद्भुत एवं अगम्य होती है। भाषा में इतनी क्षमता होती है कि, वह इतिहास और संस्कृति तक में बदलाव कर दे। हमारे समग्र सामाजिक सरोकार, हमारी संस्कृति, हमारा इतिहास और हमारी सभ्यता इन सब पर भाषा राज्य करती है। वह इन सबकी रानी माँ कहलाती है। माँ इसलिए कि हमारी जिन पाँच माताओं का ऋषियों ने विधान किया है भाषा उनमें से एक है, शेष चार में जननी, जन्मभूमि, नदी और गाय है। नदी हमारी संस्कृति की सृजक एवं पोषक है। हमारी संस्कृति नदी-घाटी सभ्यता कहलाती है। वह गंगा, यमुना, कावेरी, सरस्वती, गोदावरी, सिंधु, नर्मदा, ताप्ति, चंबल, शिवना, शिप्रा आदि के रूप में हमें सांस्कृतिक संदेश देती हुई सदा कल-कल प्रवाहित हो रही है। हमारे वेद, पुराण, महाकाव्य तथा भाषा की नदी तटों पर स्थापित ऋषि आश्रमों की देन है।

लोक साहित्य को बोली और भाषा के चक्रव्यूह से घेरना उचित नहीं है। भाषा और बोली में वैसा ही संबंध है जैसा राधा और रुक्मणि में। राधा में लोक की सहजता, समर्पण, भावुकता और सरसता है। मिठास है भोपालन है। वह ग्राम्या है। रुक्मणि नागरिका है। उसमें चतुराई, सुघड़ता और एक सलीका है। बोली में चतुराई और सुघड़ता को भाषाविद आचार्यों ने परिनिष्ठा कहा है।

हिन्दी सर्व प्रकारेण सक्षम एवं समृद्ध भाषा है। पूरे देश में हिन्दी का वर्चस्व स्थापित है। उच्चारण की सहजता लेखन तथा ध्वनि की सहमता जैसी हिन्दी में है तथा इसकी लिपि नागरी में किसी भी भाषा को उसी भाव एवं उच्चारण से अभिव्यक्त करने की जो क्षमता है वह तो अद्भुत है।

हिन्दी की व्यापकता और परिनिष्ठा सर्वज्ञात है। किन्तु हिन्दी को अपनी शब्द सम्पदा बढ़ाने के लिए मालवी के शब्द भंडार को अपनाना चाहिए। यही कार्य अन्य बोलियों के लिए भी होना चाहिए। **(3 संत सेन भगत-डॉ. पूरन सहगल पृ. 387)**

मालवी की मिठास और रसीलापन हिन्दी की मिठास को और भी सरस बना देगा। मालवी की सरसता के विषय में लोक ने कहा है –

मीठी बोली मालवी, तन-मन मीठा लोग।
चाले मीठो वायरो, मीठा रस की ओग।। (4 प्रकाशक आदिवासी लोक कला एवं विकास परिषद, भोपाल, म.प्र. वर्ष 2013)

ऐसा ही वर्णन महाकवि कालिदास ने अपने ऋतु संहार में महाकवि कालिदास ने बखाना है–

द्रुमा सपुष्पा सलिला समद्मं, स्त्रिया सकामाः पवनः सुगंधाः।
सुखा–प्रदोषा, दिवश्च रम्या, सर्व प्रियै सचाहतरं वसन्ते।। **(5 लोकायन–डॉ. पूरन सहगल आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास परिषद भोपाल के पास प्रकाशनाधीन)**

कई ऐसी उदाहरणों के अतिरिक्त महात्मा कबीर ने तो स्पष्ट ही कह दिया था–
मालवा भूमि गहन गम्भीर, पग–पग रोटी डग–जग नीर। ऐसा है यह सरस मालवा और उसकी लोक बोली मालवी। यही बात तो लोक कह रहा है –
मिसरी मीठी मालवी, मीठा जण का बोल।
बोल्यां, सुण्यां रस चुवे, ज्यों अमरत को घोल।।
(6 श्री दलेलसिंह जी यादव-लोक साहित्य मर्मज्ञ संधारा)

मालवी की मिठास और सुवास ऐसी है जैसी तपती धरती पर प्रथम वर्षा से उठने वाली सौंधी सुगंध। उसकी मिठास तप्त मन को शीतलता प्रदान कर देती है। यदि हम संक्षेप में मालवी के उद्भव और विकास पर चर्चा करे तो कहना होगा।

मालवी और शौरसैनी प्राकृत की सरणी से होती हुई अवन्ती अपभ्रंश से अपना सीधा संबंध स्थापित करती है। प्राचीन जनपदों की अपनी–अपनी भाषाएँ कालावधि में प्राकृत अथवा अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुई किन्तु इन प्राकृतों का प्रमाणों के अभाव में रुप निर्धारण करना कठिन है। केवल शौरसेनी अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है, जिससे वर्तमान अनेक बोलियों की उत्पत्ति का अनुमान किया जाता है। साहित्यिक और साधारण जन की भाषा के मध्य अन्तर होने से जो साहित्य उपलब्ध है, वह बोली जाने वाली भाषाओं से कुछ सुंस्कृत वर्ग की भाषाओं का ही है। इस दृष्टि से प्राकृत की स्थिरावस्था के परिणामस्वरूप अपभ्रंश का विकास हुआ और अपभ्रंश का वैयाकरणिक नियमबद्धता आधुनिक भारतीय प्रांतीय भाषाओं का विकास हुआ।

वस्तुत: अपभ्रंश लोक में प्रचलित लोकभाषा का नाम है। जो विविध कालों, विविध स्थानों एवं विविध रूपों से बोली जाती है। अत: आज की भाषाएँ सीधे–सीधे पूर्वकालीन अपभ्रंशों की बेटियाँ है। इन्हीं बेटियों में अवन्तिजा (मालवी) भी है जबकि डॉ. सूर्यनारायण व्यास ने मालवी को प्राकृत पुत्री कहा है।

शौरसैनी प्राकृत से शौरसैनी अपभ्रंश, शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी एवं उसकी उपबोलियों का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रांतभेद से नागर अपभ्रंश एवं उपनागर अपभ्रंश का विकास हुआ। इसी नागर अपभ्रंश से गुजराती भाषा का उद्भव एवं विकास हुआ किन्ती रीतिभेज से उपनागर अपभ्रंश दो भागों विभक्त हो गई। प्रथम से डिंगल भाषा का उदय हुआ। यही राजस्थानी आज मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूण्डाड़ी और हड़ौती जैसी उपबोलियों को सहजेती हुई निरंतर विकासमान है। इसी प्रकार रीतिभोज से इसी उपनागर अपभ्रंश से पिंगल रीति का जन्म हुआ और इसी से ब्रज, बुंदेली, कन्नौजी, मालवी, निमाड़ी, हरियाणवी और खड़ी बोली का विकास हुआ।

मालवी का साहित्य एवं सांस्कृतिक वैभव–लोकभाषा लोक साहित्य की सहधर्मिणी होती है और वही लोक साहित्य की प्रवक्ता भी होती है। उसे हम शब्दों और व्याकरण में बाँधकर पूर्वनिर्धारित अथवा मनभाए स्वरूप में नहीं निखार सकते और न ही निष्ट अथवा परिनिष्ट बोली भाषा के बंधन में ही बाँध सकते हैं। लोकभाषा को हम किसी भी नाम से पुकारें रहेंगी तो वह लोक सम्मत ही।

मालवी लोकभाषा की मिठास मिश्री की मिठास जैसी मनभावन एवं आनंददायी है। मालवा और मालवी को कालीदास, वत्सभट्टी, पाणिनी, राजशेखर, श्यामल, वराहमिहिर, कक्क, रवि, वासुल जैसी विद्वानों मनीषियों ने वाङ्मय की भावभूमि ने संस्कारित किया है। मालवी के लोक साहित्य ने अन्तर्निहित सांस्कृतिक संदर्भों को खोज पाना कठिन नहीं है। वह तो मणिकांचन की तरह स्वमेव ज्योतित है। कई साहित्यकारों ने इसे अपनी ऊर्जा और ओजिस्वता से सींचकर रसीली बना दिया है।

इन लोककथा गाथाओं में कुछ भी संभव–असंभव नहीं होता, लोक से परलोक और सातों लोकों का गमनागमन ये लोक कथाएँ सहजता से कर आती है। पशु–पक्षी, देव–दावन, जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, लौकिक–अलौकिक, राजा–राजकुमार, रानी–राजकुमार इनमें सब होता है। प्रेम, घृणा, वीरता, डाह, त्याग, समर्पण, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकार लोककथा की भावभूमि होती है। यह संस्कारों और संस्कृति तथा मानव मूल्यों की स्थापना करती हुई समाप्त होती है। जिज्ञासा और रंजकता इसमें अंत तक बनी रहती है। यही मूल गुण लोककथा को लोकप्रिय भी बनाता है। लोकमय तथा लोक स्वीकृत भी। लोकगाथा में कथा तत्व तो होता ही है इसके अलावा प्रबंधात्मकता भी होती है। लोकगाथा में किसी आदर्श चरित्र के शौर्य, त्याग की यश प्रशस्ति का बखान होता है। गीतात्मकता इसका आवश्यक गुण होता है। किसी

उदात्त चरित्र का गीतमय, प्रबंधात्मक तथा अलौकिक बखान गाथा का मूल आधार होता है। यदि संक्षेप में कहें तो कह सकते हैं कि किसी लोक नायक, नायिका के जीवन की कीर्तिकथा को लोक भाषा में बखानना लोकगाथा है। वस्तुत: लोककथा ही कालांतर में लोकगाथा का विस्तृत एवं प्रबंधात्मक रूप प्राप्त करती है।

विरद वखाण, गाथा की ही भाँति यशोगान होते हैं। वे बखान बहुधा, चारणों, भाटों, बारहटों अथवा अन्य लोक गायक जातियों द्वारा गाए बखाने जाते हैं। नायिकाएँ भीं, वे कुछ लोक पुरुष अथवा स्त्रियाँ जिन्होंने अपने प्राणों तक को उत्सर्ग कर दिया और लोक पूज्य हो गए। वे सभी इन लोक विरदों के पात्र होते हैं। रामदेव, पाबू, देवनारायण, तेजा, डूंगजी, टण्ट्या भील और रामा भील के अलावा महाराज विक्रमादित्य, भरथरी, (भर्तृहरी) राजा भोज, गोगाजी एवं अनेक देवियाँ भी ऐसे लोक मान्य चरित्र हैं। इनकी विरदें, वखाण, आख्यान, गाथाएँ, लोक गायकों और लोक कवियों द्वारा कही और बखानी गई हैं।

ये सब विरद वखाण और गाथाएँ लोक कथाओं पर आधारित होते हैं। विरदों और वखाणों को भी गाथा साहित्य का ही स्वरूप मानना होगा। यहाँ तक कि वे विरद और वखाण भी गाथा साहित्य का ही स्वरूप हैं जिनमें एकाधिक नायकों का यशोगान हो। ऐसे अनेक विरद वखाण और विरद गाथाएँ मालवी लोक साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। लोक कथाओं का तो मालवी लोक साहित्य अखुट व अकृत भण्डार है। वाचिक परंपरा के इस अुकूल किन्तु अज्ञात लोक साहित्य का संकलन और संपादन सतत् शोध प्रक्रिया तथा प्रयास से ही संभव है।

मालवी लोक साहित्य में लोक कथा गाथाओं का संकलन कार्य योजनाबद्ध तरीके से सर्वप्रथम डॉ. श्याम परमार ने प्रारंभ किया। उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास षोडष भाग (हिन्दी साहित्य) मालवी लोक साहित्य खण्ड 3 पृष्ठ 458 से 482 में मालवी की लोककथा परंपरा पर विस्तृत प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं- ऐतिहासिक और अर्धऐतिहासिक कथाएँ जहाँ एक ओर लुप्त इतिहास की कड़ियों को जोड़ती हैं, वहीं दूसरी ओर व्रत कथाएँ, पशु-पक्षी संबंधी कथाएँ, चतुराई संबंधी कथाएँ, नीति कथाएँ तथा चमत्कार प्रधान कथावृत संपूर्ण पठार पर कौतुहल की सृष्टि की है। इन कथाओं के अनेक वृत्त ब्रज, राजस्थान और निमाड़ की कथाओं से मिलते हैं। नाथ साधुओं और सिद्धों के प्रभाव को व्यक्त करने वाली कथाएँ उल्लेखनीय हैं। विशेषकर कृषि जीवन के प्रभावों से मालवी कथाएँ भरी पड़ी हैं।

डॉ. बसंतीलाल बम्ब ने मालवी लोक कथाओं पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने शोध प्रबंध में लिखा है कि ये पद्बद्ध तथा संगीत तत्व से परिपूर्ण कथा-गाथाएँ जब रात्रि के सन्नाटे में अपने कथानक को यौवन की उत्ताल तरंगों पर अठखेलियाँ करती हुई भोर के भिनसार में अपने अस्तित्व को विलीन कर देती है। इस प्रकार लोक संगीत के स्वरों से शृंगारित रथ पर आरूढ़ होकर देश-देशांतर की अविराम यात्रा करने वाली भारतीय लोककथा की अधर धरी परंपरा, विश्व लोक कंठों में लोक धुनों की संगीतमयी साँसें, युगों, सदियों और मन्वतरों से भरी चली आ रही हैं।

यदि हम मालवी लोक साहित्य की बात करें तब हमें लोक कंठों पर अनेक लोकगीत, बन्ना-बन्नी, बधावे, बेटी विदाई, द्वाराचार, लोरियाँ, सूरजपूजा, पूर्वज, जैसे अनेक गीत सुनने के लिए स्वयं को तत्पर करना होगा। किसी प्रकार अनेक लोक कथाएँ, गाथाएँ, किंवदंतियाँ, लोकोक्तियाँ हमारे लोक गायकों, कथक्कड़ों और बड़े बुजुर्गों के कंठ से प्राप्त हो सकती हैं। इन विषयों पर विश्वविद्यालयों में शोध करवाए जा रहे हैं।

जैसा कि मैंने प्रारंभ में कहा भी है कि हिन्दी को अपना शब्द भण्डार सम्पन्न करने के लिए अन्य लोक बोलियों के साथ-साथ मालवी बोली के शब्दों को भी ग्रहण करना चाहिए। कई शब्द तो हिन्दी में प्रयुक्त हो भी रहे हैं। मालवी लोक बोली के कुछ शब्दों का उल्लेख ही यहाँ पर कर पाना उचित होगा। शोध पत्र की अपनी सीमा होती है।

उदाहरण के लिए कुछ शब्द यहाँ दिए जा सकते हैं-

पेंरडी-पानी के घड़े रखने का स्टेण्ड। कांकड़=गाँव की सीमा। मगरी=छोटी पहाड़ी। मचान=चार ख म्भों पर ऊँची छतदार व्यवस्था। डागरा=खेत की रखवाली हेतु चार खम्बों पर छतदार मचान। केरड़ी=बछड़ी। केरड़ा=बछड़ा। माचा=चारपायी। लूणी=मक्खन। कोठी=अनाज भरने की पारंपरिक मिट्टी से बना भंडार (ड्रमनुमा)। दादा भाई-बड़ा भाई। नाना=छोटा बच्चा। नानी=छोटी बच्ची। बाई=माता। रेवड़-भेड़ों का समूह। पचोर=पाँच नग। उगमणा-पूर्व। आतमणा=पश्चिम। धराऊ=उत्तर। लंकाऊ=दक्षिण। सीरख=रजाई। सिराणो=तकिया। छेवड़ो=घूँघट। गेड़िया=चलने में सहारे के लिए डंडा। ढालिया=कवेलूदार मकान के सामने (छायादार) कवेलूदार अहाता=बरामदा। लुगड़ा=ग्रामीण महिला द्वारा ओढ़ा गया वस्त्र। घाघरा=घेरदार लहँगा। काँचली=केचुँकी। पोलका=ब्लाउज। भाँडी=हाँडी। अँगरखा=विशेष प्रकार बदन पर पहना जाने वाला वस्त्र।

अँगोछा-तौलिया आदि।

ऐसे अनेक शब्द हैं जो हिन्दी में स्वीकृत हैं या स्वीकृत किए जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी ग्रामीण महिला की वेशभूषा का वर्णन करना अभीष्ट हो तो हम लहँगा, साड़ी, ब्लाउज नहीं लिख सकते। हमें घाघरा, लुगड़ा, काँचली, लिखना होगा। ऐसे ही अनेक शब्द हैं जिनके पर्याय हिन्दी के पास नहीं हैं। इसीलिए मालवी एवं अन्य लोक बोलियों के शब्दों को स्वीकार करना उचित है। इससे हिन्दी और भी सम्पन्न होगी।

मालवी अपने शब्द भण्डार और लोक साहित्य की दृष्टि से एक समृद्ध लोकभाषा है। इसे व्याकरण के घेरे में धकेलने का प्रयत्न कई विद्वानों ने किया है। मेरा मानना है कि कोई भी लोक भाषा बोली केवल शब्द कोश या व्याकरण से भाषा नहीं बन जाती। वस्तुत: शब्द कोश तो वैसा ही है जैसा तिजोरी में संग्रहित मुद्राओं का संग्रह। जब तक मुद्रा चलन में नहीं आएगी तब तक उसका क्या मूल्य और क्या महत्व? जो शब्द चलन में हैं वे ही उपयोगी एवं सार्थक हैं। शब्दों से तो शब्दावली बन सकती है। वह उसके पर्यायों में कैसे आ सकती है? लोकभाषाओं में प्रत्येक वस्तु और भाव के लिए शब्द हैं। उसे पर्याय नहीं खोजना पड़ते। इसीलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दी को अपने गोखड़े, दरवाजे, लोकज शब्दों के लिए सदा खुले रखना चाहिए। तभी उसकी परिनिष्ठता सार्थक हो सकेगी।

केवल बोली ही व्याकरण का अनुसरण क्यों करें? व्याकरण को भी बोली का अनुसराण करना चाहिए। मौखिक व्याकरण से भी ऊपर सामाजिक व्याकरण होता है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोक भाषा बोली उन्मुक्त भाव विह्वल किशोरी की तरह इधर-उधर फुगती अवश्य है किन्तु वह व्याकरण की कुल वंश मर्यादा कभी भी भंग नहीं करती।

लोक भाषा और लोक साहित्य हमारी लोक संस्कृति का सृजक एवं प्रवक्ता होता है। लोक तो जैसा मैंने कहा है अगम-अपार और अगम है। वह देवनारायण की गाथा में साढूमाता से उसके धर्म भाई फरनाजी कहते हैं-

भेण-भीणजी, केरड़ी, कन्या, बाममण धीव।
छटी तुरसी बीरवो, पूज राख ले जीव।। (7 मालवी संस्कृति और साहित्य-डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, पृ. 19)

बहन, भाणेज, बछिया (गाय) कन्या, ब्राह्मण पुत्री और तुलसी बिरवा पूजा योग्य होते हैं। इनकी पूजा अपने प्राणों की रक्षा करने जैसी है। यह है लोकाराधना। लोक संस्कृति का स्वर्ण पृष्ठ। लोक साहित्य में ही तो लोक संस्कृति के उज्ज्वल भाव निहित हैं। मालवी लोक बोली और उसका लोक साहित्य लोक संस्कृति को जहाँ उजागर प्रकाशित करता है वहीं उसका संरक्षण एवं संवहन भी करता है। निश्चित रूप से हिन्दी को इससे सम्पन्नता प्राप्त होगी।

लोक के स्तर पर प्राप्त होने वाली लोक संस्कृति ही हमारी भारतीय संस्कृति कहलाती है। लोक चेतना को परिचालित करने में उसकी अहम् भूमिका होती है। अत: लोक साहित्य में इसकी व्याप्ति स्वाभाविक है। लोक और लोक चेतना का चूँकि व्यापक प्राकृतिक जगत से घनिष्ठ संबंध होता है, इसीलिए लोक स्तर पर प्राप्त समूचा ज्ञान, व्यवहार, गाथाएँ, वार्ताएँ, देवी-देवता, सूर्य-चन्द्रमा, यहाँ तक कि वृक्ष, नदियाँ, कूप, बावड़ियाँ, सरोवर, पर्वत आदि सम्पूर्ण चराचर जगत लोक संस्कृति के ऐसे वरदायी आस्था केन्द्र हैं जिसकी चर्चा के बिना लोक संस्कृति की चर्चा पूरी नहीं हो सकती।

लोक हमारी सामाजिक सांस्कृतिक चेतना की गंगोत्री है। इसी ने समय के साथ सभ्यता और संस्कृति के सोपानों को रचकर मानवता की मंगल यात्रा का पक्ष प्रशस्त किया है अत: लोक, लोक चेतना और लोक संस्कृति की उपेक्षा करके न मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित किया जा सकता है और न ही उसके चरम गन्तव्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार लोक साहित्य और लोक संस्कृति का महत्व सहज अनुनेय है। वनस्पतियाँ, वृक्ष, पहाड़, नदियाँ, यहाँ तक कि पशु, पक्षी भी हमारी लोक संस्कृति के अंग रहे हैं। हमारे पर्व और त्यौहार, व्रत, अनुष्ठान, हमारे माँडने, चित्रावण, इसकी सजीव झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं के सान्निध्य में मनाये जाते हैं-गोवर्धन पूजा, आँवला नवमी, वट सावित्री, दशामाता (पीपल पूजा), मकर संक्रांति, होली, दशहरा, दीवाली, संझा आदि पर्व त्यौहार ये सभी इसी दृष्टि से देखे जाने चाहिए।

मालवी लोक बोली और लोक साहित्य अपने इस पावन दायित्व का निर्वाह परंपरागत रूप से करता चला आ रहा है। माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्य: का प्रकृति तथा पर्यावरण का अप्रतिम उदाहरण हमारी मालवी बोली और उसका लोक साहित्य बखूबी प्रस्तुत करता है।

लोक बोली किसी भी अंचल की हो वह माता तुल्य पूज्य होती है। मालवी भी मालवा की लोक बोली है। ऋषियों ने जब पञ्चज्योतिरयं पुरुष: का संस्कार दिया तब हम उन पाँच ज्योतियों में सूर्य-चन्द्र, दीप, वाणी और आत्मा का सदा वंदन करते रहे। ये पाँच ज्योतियाँ हमें असभ्यता से सभ्यता की ओर जाने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

अप संस्कृति से सुसंस्कृति की ओर जाने की प्रेरणा देती हैं। ये पाँच ज्योतियाँ ही हमारी संस्कृति की मूल सर्जक हैं। ये ही हमें मौन से मुखर बनाती हैं। इनका वंदन। बोली सदा अपने अंचल की प्रतिनिधि होती है। मालवा की सुख सम्पदा, शालीनता प्राकृतिक सुषमा का प्रतीक है हमारी लोक बोली मालवी। मैं अपना यह शोध पत्र मालवा की प्रशस्ति से समाप्त कर रहा हूँ-

देस मालवा हरया भरया बाग। 292
बागां सोवे फूलड़ा, कोयल पंचम राग।।
खेती मोती नीपजे, कद्यां पड़े न कार।
रम-जम बरसे मेवलो, दोजो दूधां धार।।293
अन्न घणो अर धन घणो, चारो होवे खूप।
धाप धाप गायां चरे, नसल-नसल का रूप।।294
राजा काढ़े गोचरी, गाम-गाम गोठाण।
गायां की रच्छा करें, हेल लुटा दे प्राण। 295
ज्वार हे माता अठे, सब को राखे मान।
मका छाछ की राबड़ी, हे मीठो पकवान। 296
धन्न मका की राबड़ी, पारे गुरब गरीब।
पेट भराई कर सके, जण को जसो नसीब। 297
सिपरा वेवे सरपटी, चम्बल सिवना धार।
धार वराजे कारका, उज्जैनी महाकार। 298
सांदपण को आसरम, सिद्धवट को धाय।
भरथरी ने तपसा तपी हरसिद्धाँ हे बाम। 299
कर-कर वेवे नरदमा पग-पग तीरथ राजा।
मन छायो वर दे सके, ओंकेसर माराजा। 300-(8 लोकायन-डॉ. पूरन सहगल पृ. 37 आदिवासी लोक संस्कृति एवं बोली विकास परिषद, भोपाल म.प्र.)

उपरोक्त लोकगथा में जिस प्रकार मुक्तकंठ से मालवा का प्रशस्तिगान लोकगायक द्वारा किया गया है, वह अद्भुत और अनुपम है। इतने कम पदों शब्दों में किसी अंचल के विषय में बखान कर देना गागर में सागर भर देना ही कहा जाएगा। स्तुतिकार लोक गायक का वंदन।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि अंचल के निवासियों पर अपने अंचल की सुषमा, सौम्यता, सहजता, सम्पन्नता और सुघड़ता का प्रभाव ही बोली भाषा को प्रभावित करता है। मालवी में ये सभी गुण उसके लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के स्पष्ट रुप से देखे जा सकते हैं। ऐसी सहजी एवं शालीन मीठी रस भरी मालवी माता का वंदन। ऐसी सक्षम और रसी लोक बोली मालवी की हिन्दी से सरोकार अत्यंत शुभ व सुखद होगा।

निदेशक मालवा लोक
संस्कृतिक अनुष्ठान,
मनासा-458110 (म.प्र.)

रचनाकारों से अनुरोध

- ***मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।***
- ***रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।***
- ***रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।***
- ***डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अतः लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।***
- ***'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।***
- ***आप अपनी रचनाएँ* myakshara18@gmail.com *पर ई-मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।***

लोक भाषा निमाड़ी और हिंदी

– अरुण सातले

भाषा वह है जिसे बोला जाए। भाषा की उत्पत्ति भाष धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, बोलना या कहना। भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार, भावना, दूसरे मनुष्य पर आसानी से प्रकट कर सकता है, और दूसरों के विचार स्पष्ट रूप से समझ सकता है। लोक भाषाएँ नदी की तरह प्रवहमान होती हैं। लोकजीवन से आत्मसात होती है, इसी कारण अपने कूल किनारों पर बसने वाली जनता की, सभ्यता, संस्कृति और अपनी शब्द संपदा से राष्ट्र भाषा को समृद्ध करती है।

'हिन्दी हमारे राष्ट्र की राष्ट्र भाषा है। किसी भी राष्ट्र की भाषा के दो स्वरूप होते हैं। एक राष्ट्र भाषा, दूसरी वहाँ के विभिन्न जनपदों में बोली जाने वाली लोक भाषा। राष्ट्र भाषा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। राज–काज की भाषा होने से राष्ट्रीयता का भाव जगाने और विभिन्न प्रान्तों को एक सूत्र में पिरोए रखने का श्रेय राष्ट्र भाषा को ही होता है। उसे लेकर ही राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण होता है। इस तरह देखा जाए तो किसी विश्व मान्य भाषा के सहारे प्रांत और राष्ट्रों में विभाजित संपूर्ण मानवीय जगत, वसुधैव कुटुम्बकम की तरह समीप आता जाता है। विभिन्न जनपदों में बोली जाने वाली लोक भाषाएँ, राष्ट्रभाषा की जड़ों में अंतर्निहित वह शक्ति है, जिसे लेकर ही राष्ट्र भाषा समृद्ध होती है। वे राष्ट्रीय इतिहास ही नहीं वरन् मानवीय जीवन की निर्माता होती है।'

भिन्न–भिन्न व्यक्तियों, जनपदों, प्रांतों को लेकर राष्ट्र भाषा बनती है, उसी तरह विविधता में सुन्दरता और एकता की तरह लोक भाषाओं से राष्ट्र भाषा समृद्ध होती है। उसका स्वरूप निखरता है। निमाड़ का लोकजीवन, सामाजिक –आर्थिक जीवन, धार्मिक जीवन, लोक त्यौहार, विश्वास एवं लोक मान्यताएँ, लोक संगीत, कलाएँ, लोक वाद्य, रंगमंच, लोक नाट्य, निमाड़ का साहित्यिक परिवेश यथा, गद्य, पद्य, शब्द कोष आदि के साथ निमाड़ की लोक कथाएँ, लोक कहावतें, पहेलियाँ, यहाँ की संत परम्परा, ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थल, गीत, संगीत, भित्ति चित्र, निमाड़ में लगने वाले मेले, लोगों का खानपान, रीति–रिवाज आदि निमाड़ को गौरवान्वित करते हुए उसके निजी महत्व, स्वायत्त पहचान निमाड़ की सांस्कृतिकता को प्रदर्शित करते हैं।

निमाड़ी की उत्पत्ति–निमाड़ी बोली है लेकिन अब वह भाषा बनने की प्रक्रिया में तेजी से आगे बढ़ रही है। उसमें साहित्य सर्जन हो रहा है। बोली लोक के निकट होती है। उसका सीधा रिश्ता लोक जीवन से रहता है। वह मिट्टी की गंध लिए होती है। जीवन उसके प्राकृतिक रूप में उसके शब्दों में होता है। लोक अपनी अनुभूतियों को बेपर्दा बयान अपनी बोली में करता है। लोक उसी के सहारे साहित्य के पथ पर चलता है। लड़खड़ाहट के क्षणों में बहुत गहरे स्तर पर बोली लोक को सँभालती है। लोक में बनावटीपन नहीं होता। बनावटीपन उसकी बनक में कहीं नहीं होता, अत: बोली भी अपने मूल में प्राकृत, सहज, सरल, सीधी और आत्मीय होती है। निमाड़ जनपद के उत्तर में मालवी, पश्चिम में गुजराती, दक्षिण में खानदेशी और पूर्व में भुआणी, इसकी सीमावर्ती भाषाएँ हैं। शब्दों का आदान–प्रदान किसी भी ीवित भाषा का लक्षण होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो निमाड़ी पर भी उसकी सीमावर्ती भाषाओं का असर रहा है। निमाड़ी का अपना पृथक साहित्य है, शब्द संसार है। निमाड़ी बोली भारत के नक्शे के जिस स्थान पर बोली जाती है, वह देश का हृदस्थल है। संस्कार व संस्कृति से लबालब निमाड़ी का महत्व क्षेत्र में ही न होकर संपूर्ण देश में है। भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति के संबंध में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने पाणिनी कालीन बोलियों का उल्लेख किया है कि सारे उत्तर भारत की एक बोली नहीं थी, वरन् अलग–अलग जनपद की अलग–अलग भाषाएँ थी, जिनके नाम निम्न थे–

'अंगिका, मागधी, काशिका, कौशली, बज्जिका, मल्लिका, चेदिका, वात्सी, कौरवी, पांचाली, मात्सी, शौरसेनी, आश्मकी, आवन्ती, गांधारी, काम्बोजी। इसमें आश्मकी, आवन्ती, और चेदिका का अलग उल्लेख करते हुए उनके स्थान पर आज क्रमश: निमाड़ी, मालवी, बघेली, बुन्देली को प्रचलित माना है।

निमाड़ी भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

'उत्तर से दक्षिण की ओर चलते हुए बीच के भू भाग की संज्ञा विन्ध्य पृष्ठ थी। पुराणों में इस प्रदेश के जनपदों को विन्ध्य पृष्ठाश्रयी कहा है। इनमें ये नाम उल्लेखनीय है–बघेलखण्ड का बड़ा भाग करुष जनपद, जहाँ अनेक जंगली जातियाँ पहले और आज भी बसती हैं। करुष के दक्षिण की ओर मेकल जनपद था, जो नर्मदा और शोण नदी का उद्गम स्थल है। पश्चिम की ओर पूर्वी मालवा का भू–भाग, जहाँ धसान नदी बहती है, प्राचीन काल का दशार्न जनपद था। इसके उत्तर पश्चिम में निषध जनपद, जहाँ आजकल नलकच्छ या नरवरगढ़ है। नर्मदा के तट पर निमाड़ जिले का भू–भाग, प्राचीनकाल से 'अनूप' कहलाता था, जिसकी राजधानी महिष्मती या ओंकार मांधाता थी। इसके उत्तर में अवंति जनपद (आधुनिक मालवा) था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इस प्रकार यमुना के दक्षिणी प्रस्त्रवण क्षेत्र से लेकर नर्मदा के काँठे तक का भू प्रदेश छः बड़े जनपदों में बँटा हुआ था। उत्तर पश्चिम में करुष, दशार्णऔर निषध, तीन जनपदों की पट्टी थी, इनके नीचे क्रमशः मेकल, अनूप, अवन्ति नामक जनपदों की दुहरी पेटी फैली हुई थी।'

निमाड़ी के स्वरूप का निर्धारण–निमाड़ी में सीमावर्ती प्रान्तों की भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं। जिनमें मुख्यतः राजस्थानी, गुजराती, मराठी भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं। इसका एकमात्र कारण है कि महाराष्ट्र, निमाड़ का पड़ोसी प्रान्त हैं। मराठों ने कई वर्षों तक निमाड़ पर शासन भी किया है। राजस्थान में मुगलों के बार–बार आक्रमण से भी कई राजस्थानी परिवार निमाड़ में आकर स्थाई रूप से बस गए। उनके संपर्क में रहने से निमाड़ी में राजस्थानी के शब्द भी मिलते हैं। निमाड़ी पर सबसे अधिक प्रभाव गुजराती भाषा का पड़ा है, इसका मुख्य कारण है कि गुजरात सीमावर्ती प्रान्त होने के साथ प्राकृतिक और सांस्कृतिक रूप से भी दोनों के बीच साम्य होने के कारण गुजराती के कई शब्द निमाड़ी में पाए जाते हैं। इसी प्रकार उत्तर में मालवी, दक्षिण में खानदेश (महाराष्ट्र), पूर्व में भुआणी, बुन्देली, पश्चिम में गुजराती, निमाड़ की सीमावर्ती भाषाएँ हैं। इन दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर अपना बना लेना, निमाड़ी के समयानुकूल शब्द संपदा बढ़ाना, निमाड़ी के जीवंत होने का परिणाम है।

सीमावर्ती भाषाओं से निमाड़ी भाषा का अंतर्संबंध :-

निमाड़ी और गुजराती–निमाड़ में गुजरात से कई जातियाँ यथा, लाड़, गुर्जर, नागर और मेघवाल (सौराष्ट्र) आदि जातियाँ विस्थापित होकर में बस गईं। इनके रीति–रिवाज, रहन–सहन आदि पर गुजराती संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। गुजराती की तरह निमाड़ी में भी छः क्रिया प्रयोग में लाई जाती है। इनके लोकगीतों में साम्य देखा जा सकता है। जैसे–गुजराती–

जी रे चाँदो तो निर्मल नीर / तारो क्यारे ऊगशे
तारो ऊगशे रे पाछली रात / मोतीड़ा घणा झूलशे

निमाड़ी / चंद्रमा की निरमळ जोत
तारो कंवऽ ऊगसे / तारो ऊगसे पाछली रात
पड़ोसेण जागसे जी / धमके से मही केरी माट
धमके से घड़ीलो जी

गुजराती और निमाड़ी के कई शब्दों में भी साम्य है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द निम्न हैं–
निमाड़ी में स्याळो, गुजराती में श्याळो, हिन्दी में जाड़ा। इसी प्रकार उंढाळो, उनालो, गरमी, अंगळई, आंगळी, अँगुली, घाघरो, घाघरो, लहंगा, आदि शब्द हैं जिनका गुजराती, निमाड़ी हिन्दी में साम्य है।

निमाड़ी और मराठी :– निमाड़ महाराष्ट्र प्रांत से लगा होने के कारण मराठी का प्रभाव भी निमाड़ी पर पड़ा है। जैसे, निमाड़ में ल की जगह ळ का, न की जगह ण का, प्रयोग मराठी भाषा से प्रभावित है, उदाहरण के लिए, दाळ, धवळो, वादळो, पाणी, धाणी, घाणी, घावणी आदि। मराठी में उंदिर का निमाड़ी में उंदरो अर्थात् चूहा हो गया। मराठी का मोहाळ निमाड़ी में मुहाळ हो गया, जो मधुमक्खी के छत्ते को कहते हैं।

निमाड़ी और राजस्थानी :– निमाड़ी और राजस्थानी शब्दों का साम्य भी इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है। जैसे, समेळो (सम्मेलन) धवळो (सफेद) गहणों (गहना) घणों (बहुत) तातो (गरम) अम्बो (आम) थारो (तेरा) म्हारो (मेरा) आदि।

निमाड़ी और मालवी :– निमाड़ी और मालवी भाषाएँ दोनों सगी बहनों की तरह है। मालवी के कई शब्द आंशिक परिवर्तन के साथ निमाड़ी के सहयात्री बने हैं। निमाड़ी का तुमखे मालवी में तमके, निमाड़ी का हऊँ मालवी में मैं, जवें निमाड़ी का मालवी में जद, निमाड़ी का नइ मालवी में नी हो जाता है। निमाड़ मालवी की कई परम्पराओं में समानता है। दोनों भाषाओं के लोकगीतों में भी समानता है। लोकगीतों के भाव एक है।

निमाड़ी की लिखावट और उच्चारण :– निमाड़ी शब्दों के उच्चारण में अर्थात् ध्वनि का एक विशेष संकेत है, तद्नुसार उन ध्वनि संकेतों को अ अर्थात् ऐसे शब्दों के आगे ऽ चिन्ह का प्रयोग करते हुए लिखा जाता है, ताकि सही उच्चारण करते हुए निमाड़ी बोली जा सके। निमाड़ी के ऐसे कई शब्द हैं जिनके अंत में आए अक्षर को दीर्घ करते हुए अ जोड़कर बोला जाता है। अ का संकेत ही ऽ चिह्न है, जिससे उस शब्द के अंतिम अक्षर के उच्चारण में जोर देते हुआ बोला जाता है। जैसे मखअ या मख ऽ, तुखअ या तुख ऽ, जेमअ या जेम ऽ। ऐसे कई शब्द हैं जिनके अंतिम अक्षर के बाद ऽ का चिह्न लगा होने से

उस अक्षर के उच्चारण में जोर देते हुए बोलते हैं। लिखावट में ऐसे शब्द के आगे ऽ चिह्न का प्रयोग करते हैं।

निमाड़ी में कुछ विशेष अक्षर हैं जिन्हें लिखने के लिए विशेष ध्यान रखना होता है। जैसे–ल की जगह ळ का प्रयोग होता है, जैसे–माला को माळा, काला, काळा, नाला, नाळा, कोयल, कोयळ आदि।

निमाड़ी में 'है' के स्थान पर छे का प्रयोग होता है। जैसे–कुण छे अर्थात् कौन है? काई वात छे याने क्या बात है। ऊ व्हां खड़ेळ छे अर्थात् वह वहाँ खड़ा है।

निमाड़ी में जब पहला अक्षर न आता है तो वह ल हो जाता है। जैसे–नींबू का लीम्बू, नीम का लीम। इसी प्रकार जब न अंतिम अक्षर के रूप में आता है तो ण हो जाता है। जैसे–पानी का पाणी, जामुन का जामुण, आँगन का आंगण, आदि।

निमाड़ी में सहायक क्रिया 'है' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग होता है। जैसे–चलता है का चल, दौड़ता है का दौड़ज, खाता है का खाज। इसी प्रकार जिस क्षेत्र में अनुसूचित जाति बाहुल्य क्षेत्र है वहाँ के कुछ लोग 'ज' के स्थान पर 'त' का प्रयोग करते भी पाए गए हैं। जैसे–तू खाता है को वे तू खात, तू जाता है को तू जात कहते देखे गए हैं किन्तु यही लोग स्वयं के लिए ज का ही प्रयोग करते हैं, जैसे–मैं जाता हूँ को हांऊ जाऊंज।

निमाड़ी में कर्ता कारण की विभक्ति 'ने' के स्थान पर बहुधा 'न' का प्रयोग होता है, साथ ही बहुवचन होने पर 'नन' का उपयोग होता है। जैसे– राम ने–राम न, लोगों ने, लोग नन, चिड़िया ने, चिड़ी न, परियों ने, परी, नन।

निमाड़ी में कर्म कारक की अभिव्यक्ति के लिए 'को' के स्थान पर ख ऽ का उपयोग करते हैं। जैसे–मुझको–मख ऽ, तुमको–तुमख ऽ, उनको, उनख ऽ।

निमाड़ी में सर्वनाम–हंऊ, तू, और ऊ है। ये तीनों एक वचन है। तीनों कालों में इनका स्वरूप निम्नानुसार होता है–
वर्तमान काल–हंऊ चलूँज, तू चल, ऊ चलज अर्थात् मैं चलता हूँ, तू चलता है, वह चलता है।

भूतकाल–हंऊ चल्यो, तू चल्यो, ऊ चल्यो याने मैं चला, तू चला, वह चला भविष्य काल–हंऊ चलूँगा, तू चलऽगा, ऊ चलऽगा अर्थात् मैं चलूँगा, तू चलेगा, वह चलेगा निमाड़ी के कुछ शब्दों में अनुस्वार का लोप हो जाता है, जैसे–

दाँत को दात कहते हैं, माँको माँय और हँसना को हसना बोलते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि निमाड़ी की लिखावट और उच्चारण का वैशिष्ट्य होने से हम निमाड़ी को उपभाषा न मानते हुए उसका एक पृथक अस्तित्व है, ऐसा मानना चाहिए।

निमाड़ी का साहित्य :- निमाड़ी लोक साहित्य में जीवन के हर संदर्भ को लोक ने अभिव्यक्ति दी है। जीवन का हर पल लोक मन का भाषिक उत्सव है। जीवन के विविध आयाम निमाड़ी साहित्य में अभिव्यक्त हुए हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी यह मौखिक रूप से प्रवाहित होता रहा। वाचिक साहित्य को बचाये रखने के लिए उन्हें लिपिबद्ध किया, इनमें प्रमुख रूप से यह कार्य लोक साहित्य मर्मज्ञ पंडित रामनारायण उपाध्याय ने समर्पित भाव से किया। उनके द्वारा रचित ग्रंथ 'निमाड़ी का सांस्कृतिक इतिहास' प्रमुख ग्रंथ है। हिन्दी के साहित्य संसार में उन्होंने निमाड़ी साहित्य की पृथक से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। निमाड़ का यह वाचिक साहित्य पाँच विधाओं में प्राप्त हुआ है। प्रथमत: लोक गीत, फिर लोक कथा, तृतीय लोकगाथा, चतुर्थ लोक नाट्य, पाँचवा लोकोक्ति। इन सभी विधाओं में जीवन के हास–परिहास, राग–विराग', जीवन संघर्ष, मनुष्य की विविध मन:स्थितियों का सजीव चित्रण हुआ है।

लोक गीत–निमाड़ी में सबसे अधिक लोक गीत ही हैं, जो जीवन के हर प्रसंग से संबंधित हैं–

1. पुरुषों के गीत–श्रृंगार गीत, विरहा, फाग, लावणी, कलगी, तुर्रा, भिक्षा, कबीर, गरबी, ग्वालन, कथा गाथा, काया अर्थात् मृत्यु गीत।

2. स्त्रियों के गीत–नामकरण, प्रभाती, सोहर, लोरी, विवाह, हल्दी, लग्न, विदाई, श्रृंगार, विरह, फाग, नदी गीत। इसके अतिरिक्त गणगौर पर्व जो की एक अनुष्ठानिक पर्व है, जिसका हर कारज गीतों से ही संपन्न होता है, जो स्त्री कंठ से ही अल्पना माधुर्य रचता है, इसे गीति पर्व से नवाजा गया है।

3. ऋतु गीत–सावन, कार्तिक, फागुन, चैत, वर्षा, बारहमासा।

4. व्रत त्यौहार–रक्षाबंधन, भुजरिया, दीवाली, संक्रांति, होली, डोडबोळ्ई ग्यारस।

5. श्रम गीत–हल जुताई, फसल बुआई, निंदाई, कटाई, चक्की गीत।

6. बच्चों के गीत– सांजाफूली, नरवत, गरबा, गीता भजन, सिंगाजी के भजन, आदी। इनके अतिरिक्त गणगौर गीत, शीतला माता, भीलट देव, मनौती, तीर्थ यात्रा।

7. अन्य गीत– नाम सप्ताह/राम सप्ताह, रास, खम्भ, और पौराणिक आख्यान

(1 से 7 गीतों का यह विभाजन डॉक्टर श्रीराम परिहार रचित ग्रंथ

'निमाड़ी का इतिहास' से साभार)
उदाहरण स्वरूप सूर्योदय सौंदर्य पर केन्द्रित लोक गीत-
सूरिमल ऊंगियो
ऊंगियो ते बयड़ा केरी कोर, सूरिमल,
तुम जागो हो मोठा भाई राय
तुम बाँधो हो पचरंगी पाग, सूरीमल,
तम लेवो हो राम को नाँव
तुम देवों हो गऊवा केड़ो दान, सूरीमल,
विवाह अवसर पर बेटी की विदाई का गीत बहुत ही मार्मिक है-
आला नीळा बाँस की बंसरी ऊ भी बजती जाय
अरुण भाई की बईण लाड़कली, ऊ भी सासरे जाय
तुम पछा फिरो, पछा फिरो वो लाड़ीबाई
पिताजी खे देवो आसिस।
खाजो पीजो पिताजी तुम राज करजो
जीवजो ते करोड़ बरीस।
छोड़यो माँय को मायरो, अरु पिता जी को लाड़

यह गीत गाते हुए बेटी को अश्रुपूरित उसे ससुराल विदा कर देते हैं। इसी प्रकार निमाड़ में सोलह संस्कारों के गीतों की रचना भी स्त्रियों के मधुर कंठ से मुखरित होती है।

निमाड़ी लोक कथा/वार्ता-लोक में कहानी जब बोलकर सुनाते हैं तो उसे कथा या वार्ता भी कहते हैं। इनमें नन्द भौजाई का हास परिहास, दुष्टतापूर्ण व्यवहार, पालतू जानवर, चंदन का पेड़, आदी। प्राय:क्षिति, जल, पाक, गगन, समीरा आत्मा परमात्मा अभिप्राय से संबंधित कथाएँ भी सुनाई जाती है। व्रतों में हरतालिका, सेळ्ई सातव, आदी कथाएँ हैं। व्यंग्यात्मक कथाएँ, मनुस की चारित्रिक दुर्बलताओं को लक्ष्य कर भी कथाएँ, वार्ताएँ कही जाती हैं। निमाड़ी में मिथक केन्द्रित कथाएँ भी हैं, जो आदिमानव के जीवन, तत्समय उनके विश्वास, आस्था-विश्वास, चरित्र, स्वप्न, घटनाओं पर केन्द्रित होती हैं। वैसे भी मिथक स्वप्नानुभूतियों की भाषिक अभिव्यक्ति है।

लोक मानुस अपनी कल्पना के माध्यम से प्रकृति के रहस्य को, संबंधों को, दैविय चरित्रों को, उनका मानवीकरण करते हुए ये कथाएँ कही जाती हैं, जो मानव के अतीत की स्मृतियों के साथ वर्तमान को संबल देते हुए, भविष्य की राह सुझाती है।

निमाड़ी गाथाओं में, पौराणिक चरित्रों के साथ वीरत्व भाव के पुरुषों की कथाएँ हैं। जैसे-हरिश्चंद्र गाथा, भीलट देव, गोंडिन नार, काजल राणीं इसे अतिरिक्त अहिल्यामाता, खाण्डेराव की कथा, श्रवण कुमार की कथा आदि हैं।

लोक नाट्य-निमाड़ी में लोक नाट्य के अंतर्गत रासलीला, खम्भ-जिसमें विविध स्वाँग अभिनीत किए जाते हैं। यह निमाड़ की लोकप्रिय नाट्य विधा है। जब इसे किसी मंच पर अभिनीत किया जाता है तो इसे गम्मत भी कहते हैं। इसमें नृत्य, गायन, वादन जिसमें मृदंग और झाँझ प्रमुख होते हैं, अभिनय का अनूठा संसार होता है। आजकल आधुनिक परिवेश के प्रसंगों को लेकर भी व्यंग्यात्मक शैली में प्रहसन किए जाते हैं।

निमाड़ी की कहावतें-निमाड़ी लोक कहावतों के संबंध मे पंडित रामनारायण उपाध्याय ने कहा है कि ये कहावतें 'शिला लेख पर लिखी राजाज्ञाएँ नहीं हैं वरन् मानव हृदय से उद्भूत भावनाओं के ऐसे पंछी हैं जो एक से दूसरे होंठ कर उड़ते हुए शताब्दियों से ओर-छोर नापते आए हैं। ये विचारों के ऐसे तिनके हैं जो डूबते को सहारा दे जाते हैं। ज्ञान के ऐसे सिक्के हैं जो सब कालों में समान रूप से चलते आए हैं।'

निमाड़ की कहावतों में स्त्री गुणों से संबंधित, पुरुष गुणों से संबंधित' कृषि संबंधी, नीति परक, हास्य, व्यंग्य आदि से संबंधित कहावतें हैं। कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं -
जुगु-जुगु चल ऽ मीरी भी नी हल ऽ, ऐसी सुन्दर और कोमलांगी, नाजुक स्त्री जो इतने धीमें चलती है कि उसकी साड़ी की पटलियाँ भी नहीं हिलतीं।

लाड़ीबाई को लटको, सुपारी को कटको, नई नवेली दुल्हन घूँघट को इधर-उधर उठा कर देखते हुए चलती है, जैसे मुँह में सुपारी के टुकड़े को कभी दाईं तरफ कभी बाईं तरफ सरकाते खाया जाता है।

लुगई को मोल्यो, जो पुरुष स्वयं निर्णय नहीं लेकर स्त्री की सलाह पर चलता है जैसे स्त्री का मोल लिया हुआ हो। मूँडा मऽकाई मूँग वैरया, जो आदमी घुन्ना रहता है, अर्थात् कुछ नहीं बोलता।

चिकणों घड़ो, बेशरम आदमी मघा को बरस्यो ने माँय को परस्यो, मघा की वर्षा फसल के लिए लाभप्रद होती है।

गहरी जोत गीली जोत, वर्षाकालीन बुआई का मूलमंत्र।
जवंऽतक जीवणूं, तवं तक सीवणूं, किसी भी परिस्थिति में कर्तव्यों का निर्वहन करना नद्दी को मूळ ने ऽ षि को कूळ नी देखणुं, विद्वानों की जाति न देखकर उनसे ज्ञान की बातें सीखना चाहिए।

13-अ, एल. आई. जी. कॉलोनी
रामेश्वर वार्ड,
खण्डवा-450001 (म.प्र.)

राजस्थानी और उसकी बोलियाँ

-श्रीकृष्ण जुगनू

किसी भाषा के विकास के साथ उसके कोशों का विकास होता रहता है। श्रीराघव ने भाषा-भण्डार के विश्वप्रकाश, गोपाल, धनंजय, शब्दार्णव, वैजयन्ती, सूर्य, रुद्र, यादव, प्रताप, भागुरि, दण्डी रभस, हलायुध, सुभूति, हरि, विष्णु, वररुचि, अमरसिंह, उत्पल आदि के नामों का स्मरण किया है- **विश्वप्रकाशो गोपालः शेषकारो धनंजयः। शब्दार्णवो वैजयन्ती सूर्यो रुद्रश्च यादवः॥ प्रतापो भागुरिर्दण्डी रभसश्च हलायुधः। सुभूतिर्हरिविष्णू च वररुच्यमरोत्पलाः॥ अजयः शाश्वतश्चैते उच्यन्ते पण्डितैः पुरा॥** (नानार्थमंजरी 4-6)

प्राचीन ग्रन्थों में एक प्रसंग बहुधा मिलता है कि किस तरह विभिन्न शक्तियों ने अपने आयुध और बलादि देकर देवी अथवा देवता को पराक्रम के पथ पर अग्रसर किया। देवी माहात्म्य, बृहत्संहिता, मत्स्यपुराण, देवी भागवत आदि में ऐसे प्रसंग मिलते हैं। यही बात हिन्दी भाषा के विषय में भी कही जा सकती है। हिन्दी को सांगोपांग भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए भारतवर्ष ही नहीं, संसार की अनेक भाषाओं ने सहयोग किया है। यह सहयोग शब्ददान के रूप में तो रहा ही है, विभिन्न सृजन प्रवृत्तियों, शैलियों और कहावतों-लोकोक्तियों तथा मुहावरों के रूप में भी देखा जा सकता है। हालाँकि संस्कृत के विषय में भी यह बात लागू होती है। साहित्यिक भाषाओं की आत्मनिर्भरता के लिए प्राकृत शब्द-सम्पदा ने अपना कोश सदा ही खुला रखा है।

हिन्दी के विकास और वैभव में राजस्थान की विभिन्न बोलियों ने भी अपना योगदान किया है। ये बोलियाँ हैं- मेवाड़ी, मारवाड़ी, मालवी, हाड़ौती, उपरमाली, मेरवाड़ी, ढूँढाड़ी, मेवाती, वागड़ी, कांठल, गोड़वाड़ी आदि।

हिन्दी का विकास और शब्दसम्पदा :- हिन्दी का विकास जिस रूप में हुआ, उसमें तत्सम और तद्भव ही नहीं, देशज शब्दों की ग्रहणशीलता भी बनी रही। तुलसीदास की रामचरित मानस हो या सूरदास का सूरसागर, जायसी का पद्मावत हो या कबीर की साखी-सबद या रमैनी, यहाँ की बोलियाँ के अनेक शब्द ग्रहण किए गए हैं। मीराबाई के पदों में जिस राजस्थानी का प्रयोग हुआ है, वह हिन्दी के अन्तर्गत मान्य है-**बाला मैं बैरागण हूँगी, जिण भेषा म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूँगी। कहौ तो मोतियन माँग भरावौं, कहौ तो भगवाँ भेष। कहौ तो कुसुमल साड़ी रंगावौं।**

कबीर की साखियों में राजस्थानी के शब्दों की प्रचुरता है। यथा-**ज्यौं तिल माँही तेल हैं, ज्यों चकमक में आगि। तेरा साईं तुज्झ में, जाग सकै तो जागि।।**

यहाँ चकमक को विद्वानों ने स्फटिक पत्थर माना है जबकि चकमक लौहे की धनुषाकार रचना है जिसको प्रथमा और कनिष्ठि का अँगुलियों के सहारे पकड़कर पत्थर पर प्रहार करके आग की चिंगारी उत्पन्न की जाती है। कवि रामसिंह के दोहों में भी राजस्थानी का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। तुलसीदास ने विनयपत्रिका में जिस 'तायो' शब्द का प्रयोग किया है (स्रवन नयन मन मग लगे, सब थलपति तायो), वह राजस्थानी के युग्म-शब्द 'तायो-तपायो' अर्थात् जाँचा-परखा का रूप है, हालाँकि इसका प्रयोग राजापुर तक चला गया है। डावड़ा शब्द राजस्थान में पुत्र के लिए प्रचलित है। तुलसी ने भी 'हनुमान बाहुक' में इसका प्रयोग किया है-**बेदना कुभाँति सो कही न जाति रातिदिन सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे।**

रामनरेश त्रिपाठी मानते हैं कि तीर्थों में अनेक प्रान्तों से आने वाले यात्रियों के कारण वहाँ के शब्दों का प्रचलन हो जाता है। सोरों के प्रसंग में यह विचारणीय है कि वहाँ ब्रज, राजस्थान, पंजाब, काठियावाड़ और गुजरात के निवासियों का अस्थि विसर्जन आदि के लिए आना-जाना लगा रहता है। ऐसे में तुलसी के काव्य में राजस्थानी के शब्दों का प्रयोग मिल जाना सहज है। उदाहरण के तौर पर निम्न पंक्तियाँ-माँ जायो या माय जायो (माता का पुत्र)-तोसे माय जायो कौ (विनय पत्रिका), मैन या मैण (मोम)-मैन के दसन कुलिस के मोदक (श्रीकृष्ण गीतावली), मोखा (गवाक्ष, जिसे समरांगण सूत्रधार में मूषा कहा गया है)-नयन बीस मन्दिर के मोखे (गीतावली), माठ (घड़ा)-

पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के (गीतावली), बियो या बीजा (अन्य, दूसरा)–कहाँ रघुवीर सो बीर बियो है (कवितावली), म्हाकौ (मेरा या मुझको)–मन्दमति कन्त सुन मन्त म्हाको (कवितावली), दारू (बारूद)–काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल (दोहावली), नार, नाड़ या नाड़ी (गरदन)–जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि (दोहावली), लागती (सम्बन्ध, रिश्तेदारी)–लागती सांग विभीषण ही पर सीपर आप भये हैं (गीतावली)। **(तुलसी और उनका काव्य, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1951 ई. पृ. 64-66)**

भाषा की परम्परा में 1. कर्ता, 2. कर्म, 3. करण, 4. सम्प्रदान, 5. अपादान और 6. सम्बन्ध–इन छः कारकों के साथ शब्दों का विभक्तिवार प्रयोग होता है। इसमें अकर्मक और सकर्मक धातुओं की मान्यता रही है। शब्दों की सत्ता लोकप्रसूत होती है और शब्द नियमों या मर्यादाओं के अनुसार प्रयोग में लाए जाते हैं। साधुसुन्दर गणि द्वारा 1623 ई. में सम्पादित 'उक्तिरत्नाकर' की सामग्री इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह देशजभाषा के अनेकानेक शब्दों का संकलन है और उसमें उन्होंने अपनी देशभाषा में प्रचलित, देश्य स्वरूप वाले शब्दों के संस्कृत या तत्सम प्रतिरूपों का ज्ञान कराने का प्रयास किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि कोई प्राकृत–शब्द कैसे संस्कृत के स्वरूप में स्वीकारा गया। लोकभाषाएँ नवीन नहीं, पुरानी हैं, वे अपभ्रंश के नूतन स्वरूप प्राप्त विकसित भाषा विभाग हैं। हिन्दी को ही लें जिसमें सैकड़ों संस्कृत के मूल शब्द, अलग–अलग देश और जाति के लोगों के पारस्परिक सम्पर्क के कारण, उच्चाणभेद और व्यवहारभेद द्वारा, अन्याकार स्वरूप को प्राप्त होते गए। विशेषकर संस्कृत के जिन मूल शब्दों में संयुक्ताक्षर अधिक होते हैं, उन शब्दों के प्राकृत–अपभ्रष्ट रूप विशेषरूप में परिवर्तित होते रहे। स्वयं संस्कृत शब्द का रूपान्तर 'संखय', 'सक्कय', 'संगड' आदि और प्राकृत शब्द का रूपान्तर 'पायग', 'पाइय', 'पायड' अदि के रूप में परिवर्तित हो गया। **(उक्तिरत्नाकर सम्पादक : जिनविजय, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, 1957 ई. पृ. 6)**

राजस्थानी की कृतियाँ और शब्द :- वीरगाथाकाल के रासो ग्रन्थ (पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो आदि) जिनकी भाषा प्राचीन राजस्थानी है, हिन्दी के आरंभिक काल की कृतियाँ स्वीकारी गई हैं। राजस्थान में बहुतकाल से प्रचलित भड्डली पुराण और मेघमाळा को अन्य प्रदेशों ने अपनी भाषा और लोकानुभव के साथ अनेकविध प्रयोग में लिया है। विलास, रूपक, छप्पय, कुण्डलिया, दूहा, वेल, कवित जैसी सृजन प्रवृत्तियाँ इस प्रदेश से ही प्रसारित हुई है। इनके शब्दकोश भी बने हैं। कतिपय शब्द जिनको हिन्दी ने संस्कृत के शब्द या तत्सम रूप में स्वीकारे हैं, राजस्थानी मूल के हैं। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्यम् आदि कोशकारों ने उनको संस्कृत के उणादि कोष और निर्वचन आदि नियमों से परखा हो लेकिन उनका प्रयोग इस प्रदेश के क्षेत्रीय जनपदों में उसी रूप में पिछली सदियों से मिलता है, उक्ति रत्नाकरकार ने उनको देशज ही कहा है।

वर्तमान में राजस्थानी के नाम पर मरुप्रदेश के शब्दों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है जबकि मेवाड़ी, ढूँढ़ाड़ी, हाड़ौती, मेवाती आदि में भी देशज शब्दों की कमी नहीं है। सीताराम लालस ने राजस्थानी शब्दकोश दस भागों में तैयार किया है। मिले–जुले कई शब्द जो कुछ काल पूर्व तक प्रचलन में रहे हैं और जिनको हिन्दी में एकाधिक रूपों में स्वीकारा गया है, उनको पूर्वरूप में ही देखना उचित होगा। कतिपय शब्द इस प्रकार हैं–आचारिज (आचार्य), ओझा (उपाध्याय), ठवणारी (स्थापनाचार्य), साध (साधु), सूरिज (सूर्य), मगसिरनशत (मृगशिरा नक्षत्र), आदरा (आर्द्रा), असलेस (अश्लेषा), सनीचर (शनैश्चर), राह, राहव (राहु), केत (केतु), मुहूरत (मुहूर्त्त), अंधारउ (अन्धकार), अमावस (अमावस्या), पोस या पूस (पौषः), माह (माघ), फागुण, फागुन (फाल्गुन), चेत (चैत्र), वइसाख (वैशाख), जेठ (ज्येष्ठ), आसाढ़ (आषाढ़), सावन, सावण (श्रावण), भाद्रवउ, भादौ (भाद्रपद), काती (कार्तिक), छः रितु (षड् ऋतु), सरतकाल (शरत्काल), वरस, बरस (वर्षाकाल), अहोरात, होरात (अहोरात्र), ततकाल (तत्काल), आगास (आकाश), मेह (मेघ), करा, घरा (करक), उगमण, पूरव दिस (पूर्वदिशा), लंकाउ, दक्खिण (दक्षिण), आथमण, पच्छिम (पश्चिम), धुर, उतर (उत्तर), विदिस (विदिक्, विदिशा), अपछर (अप्सरा), जउराणउ, जम (यमराज), भइरव (भैरव), गोरी (गौरी), चाउंडा (चामुण्डा), स्त्रीबच्छ, श्रीवच्छ (श्रीवत्स), लखमी (लक्ष्मी), सरसती (सरस्वती), सारद (शारदा), पहेली (प्रहेलिका), ऊतर (उत्तर), साच (सत्य), कूड (कूट), ओलंभउ (उपालम्भ), आण (आज्ञा), वाजित्र, (वादित्र), वाजउ (बाजा, वाद्य), अवाज (आतोद्य), पडहउ (पटह), आशंक (आशंका), अचरिज (आश्चर्य), आँसू (अश्रु), नींद (निद्रा), स्वस्थपणउ (स्वास्थ्य), उच्छुकपणउ (औत्सुक्य), आलस (आलस्य), छावड़उ (शावक), कुँअर, कुँवर (कुमार), जोवन, जोबन (यौवन), बूढ़उ (वृद्ध), वडपण (बड़प्पन, वार्द्धक्य), सीख्यउ (शिक्षित), विन्यानी (वैज्ञानिक), कुच्छित (कुत्सित), कायर (कातर), घातकू (घातक), चोरी (चौरिका), रीसालू (ईर्ष्यालु), भूखियउ (भूखा, बुभुक्षित), त्रिसियउ (तृषित), भात (भक्तम्), मांड (मण्ड) तीमण (तेमन), घेवर (घृतवर), दूध (दुग्ध), दईड़ो (दही, दधि), खीरि (खीर, क्षीर), मांखण (माखन, म्रक्षण), रांध्यउ (राद्ध), सीधउ (सिद्ध), वेसवार (वेषवार), राई (राजिका), धाणा (धान्यक), पीपलि (पिप्पली), त्रिगडू (त्रिकटु), जीरउ (जीरा), हींग (हिंगु), चाबण (चबीना), कलेवउ (कलेवा, कल्यवर्त), धायउ

(भ्रात), आपणी धायउ (आत्मीयभ्रात), धेठउ (धृष्ट), विलखउ (विलक्ष, विलक्षण), खास (खाँसी, कास), खाज (खर्ज्जू), गड (गड्ड), गढ़, गढ़ी (गढ़, दुर्ग), कोढ़ (कुष्ठ), हिचकी (हिक्का), फोडउ (स्फोटक), व्याऊ, बियाऊ (विपादिका), लेहउ (लेखक), मसि (मषी, मसी, स्याही), सेठि, सेठ (सेठ, श्रेष्ठी), जूआरउ (द्यूतकारक), पासउ (पाशक), वहू, बहू (वधू), जानी (जन्या), पणीहारि (पनिहारी, पनीहारी, पानीयहारिका) और डोहलउ (दोहद)।

मानवीय समाज में सम्बन्धवाची और कायावस्था के बोधक अन्य शब्दों का स्वरूप इस प्रकार है–

पूत (पुत्र), भात्रीजउ, भतीजा (भ्रात्रीय), भाणेजउ, भांजा (भानजा, भागिनेय), पोत्रउ (पौत्र), दोहीत्रउ (दोहिता, दौहित्र), गोलउ (गोलक), भाई (भ्राता), पीतरियउ (पितृव्य), सालउ, साला (श्याल), साली (श्याली), माउलउ, मामा (मातुल), बहिणि, बहिन (भगिनी), नणंद, नणद (ननद, ननान्दा), बाप (बप्प), माइ (माता), धाई, धाय (धात्री), सासू (श्वश्रू), सुरसउ, ससुर (श्वसुर), पितर (पितृ, पितर), सयणाचार (स्वजनाचार), आपणउ (आत्मीय), सगा, सगउ (सगा, स्वक), सयर (शरीर), मडउ (मृतक), मुंड (मुण्ड), माथइ भमरउ (मस्तक भँवरी), सिमथउ (सीमंत), पली (पलित), मुहडउ (मुख), निलाड, लिलाड़ (ललाट), कान (कर्ण), आँखि (आँख, अक्षि), कीकी (कीका), भिउडी (भृकुटि), नाक (नक्र, नासा), होठ (ओष्ठ), गाल (गल्ल), मूँछ (श्मश्रु), दाढ़ी (दाढिका), दाढ़ (दाढा), जीभ (जिह्वा), तालयउ (तालु), घांटी, घंटी (घण्टिका), गाबडि, गाबड़ (गर्दन, ग्रीवा), खांधउ (कन्धा, स्कन्ध), काख (कक्षा), पासउ (पार्श्व), कुहणी (कोहनी, कफणि), कलाई (कलाचिका), हाथ (हस्त), आंगुली, आंगळी (अँगुलि), अंगूठउ (अंगूठा, अंगुष्ठ), विहथि (वेंत, बालिश्त, वितस्ति), ताली (तालिका), मूठि, मुट्ठी (मुष्टि), चलू (चलुक), वाम, बाम (व्याम), पुरस (पौरुष), पूठउ, पूठ, पीठ (पृष्ठ), उच्छंग (उत्संग), कालिजउ (कलेजा, कालेय), तिली (तिलक), पीहा, प्लीह (प्लीहा), आँतड़, आंतड़ी (आंत, अन्त्राणि), कडि (कटि), पूंद (पुतौ), चूति (च्युति), साथलि (सक्थि), जाँघ (जंघा) पींडी, पींडली (पिण्डिका), घूँटी (घुण्टक), पान्ही (पार्ष्णि), लोही (लोहित), हाड़ (हड्ड, हड्डी), पाँसुली (पसली, पर्शुका), मींजी (मज्जा), चांमड़ी, चाम (चर्म, चर्मिका), नस (स्नसा), लार, लाल (लाला) और वीठ, बींट (विष्ठा)।

आगे दिए गए शब्द हिन्दी ही नहीं, संस्कृत में भी मिलते हैं और अन्य भारतीय भाषाओं में भी खोजे जा सकते हैं लेकिन राजस्थान की अनेक बोलियों में व्यवहार में रहे हैं –

वेस, बेस (वेष, वेश), मांडण, मांडणा (मण्डन), पडवास (पटवास), कपूर (कर्पूर), अगर (अगुरु), चणन (चन्दन), जाइफल (जातिफल), कुंकू (कुंकुम), लउंग, लौंग (लवंग), मउड, मोड़ (मुकुट), गुँथिवउ, गूँथना (ग्रन्थन), सेहरउ, (सेहरा, शेखर), वाली, बाली (वालिका), कडउ (कटक, कड़ा), नेउर (नूपुर), तन्त्र (तन्त्रक), चलणी, चालणी (चलनी), काँचली (कंचुकी, कंचुलिका), साडी (शाटी), कच्छोटउ (कच्छापट), काछड़ी (कच्छ, कच्छाटिका), नातणउ (नातना, नक्तक), पछेवडस, पछेड़ा (प्रच्छदपट), गूणि, गोनि (गोणी), आलथी–पालथी (पर्यस्तिका), आथर (आस्तर), गुळणी (गुणलय), मांचउ, माचा (मंचक), खाटि, खाट (खट्वा), खटोली (पालकी), पलंग (पर्यंक), आरीसउ (आदर्श), अलतउ, आलता (अलक्तक), लाख (लाक्षा), काजळ, काजल (कज्जल), दीवउ, दीवड (दीया, दीप), दसी (दशा), वीझणउ, बीजणा (बीजना, व्यजनक), कांकसी, कंघी (कांघसी, कंकतिका), तंबोलरी थई (ताम्बूल का स्थान), महता, महत्ता, महतउ, मूंता (मेहता, महामात्य), सींग, सुंक (शुल्क), अंतेउर (अन्तःपुर), बइरी (वैरी), मित्राई, मिताई (मैत्री), हेरू (हैरिक), असवार (सवार, अश्ववार), अंगरखी, अंगरखा (आंगा, अंगरक्षी), धनु, धुणी धनक (धनु, धनुष), वेझ (वेध्य), खेडा, खेड़ा, खयडउ (खेटक), मोगर, मोगरी (मुद्गर), प्रयाणउ (प्रयाणक), राडि (राटि), धाडि (धाटी), सराध (श्राद्ध), दीख (दीक्षा), ईधण (इन्धन), राख (रक्षा), छार, खार (क्षार), जनाई, जंदोई (यज्ञोपवीत), मूल (मूल्य), नाव, नावड़ी (नौका), बेडी (बेडा), उधार, उबारो (उद्धार), पडहू (प्रतिभू), साखी (साक्षी), गाउ (गव्यूत), कोस, कोसां (कोश, क्रोश), जोअण (योजन), गोवाल (गोपाल), आहीर, अहीर (आभीर), करसउ, करसा (किसान, कृषक, कर्षक), खेती (क्षेत्री), हलरी ईस (हल की ईषा), मई, माटी (मिट्टी, मत्य), कोदालउ, कुदाल, कुदाली (कुद्दाल), खणेत्रउ (खनित्र), पराणी (प्राजन), जोत्र, योत, जोता (योत्र), मेढी (मेधी), कारू (कारु), माली, माळी (माल्यकार, मालिक), कलाल, कळाळ (कल्यपाल), मद (मद्य), सूई (सूची), सूईउ (सौचिक), कातरि, कैंची (कर्त्तरी), कातरणी (कर्त्तनिका), ताकलिया, त्राकलउ (तर्कु, तकुआ), पींजणउ (पिंजन), वरता (वरत्रा), आर (आरी), सूत्रहार, सुथार (सूत्रधार), वांसोली, बांसोळी (वासी), करवत, करवैत (करपत्रक), टांकुलउ, टांकी (टंकु, टंक), लोहार (लोहकार), कंदोई (कनदोई, कान्दविक), नावी, नाई (नापित), आहेड़उ, अहेड़िया (आखेटक), आहेड़ी (आखेटिक), वागुर, वागुरी (वागुरिक), पासी, पाश, फाँसी (पाशिका), भील (भिल्ल), भूइ (भूमि), धरती, धर (धरित्री), सींधव (सैंधव), विडलूण (विडलवण), जवखार (यवक्षार), साजी, हाजी (स्वर्जिका), खलहाण (खलधान) और खलउ (खल)।

इसी प्रकार स्थापत्य–वास्तु, शिल्प, निवास स्थान, निवेश आदि से सम्बन्धित अनेक शब्द हिन्दी में यथारूप या किंचित् परिवर्तन के

साथ स्वीकारे गए हैं। ये शब्द चूँकि शिल्पकारों के साथ-साथ उनसे जुड़े कर्मकारों और निर्माताओं के व्यवहार में भी रहते हैं, विशेषकर राजगीरी में, अत: हिन्दी में उनका प्रयोग निरन्तर रहा है। यथा-

ठांण (स्थान), भूपरीच्छा (भूपरीक्षा), घर (गृह), खेड (खेट), वास (आवास), खंधार, छावणी (स्कन्धावार, कटकस्थान), कोट (कोट्ट), कोटड़ी (कोट्टडिका), भींत (भित्ति), आगल, आगळ (अर्गला), कुंची (कुंचिका, कुंजी), तालउ, ताला, ताळा (तालक), कवाड, किंवाड़ (कपाट), छांवण, छावति (छदि), मतवारणउ (मत्तवारण), बार, बारणां (द्वार), मेढी, मेड़ी (बंडेरी, मेढ़ी), पूतली (पुत्रिका), मंजूस (मंजूषा), कोठार, कोठडी (कोष्ठागार), बुहारी (बहुकरी), ऊखलउ (उदूखल), किडउ (कट), मूसल (मुशल), चूल्ही (चूल्लि), घडउ (घट), अंगारसगड़ी (अग्निष्टिका, अंगारशकटी), भाठ (भ्राष्ट्र), कड़ाहउ (कड़ाह), मउणि (मणिक), गागरी, घाघर (गर्गरी), मंथाणउ (मन्थानक), सीहदार (सिंहद्वार), मसाण, मसान (श्मशान), मढ, मढी (मठ), परव, प्याऊ (प्रपा), पाहाण, पहाण (पाषाण), पाथर (पत्थर, प्रस्तर), परनालि, परनाळी (प्रणाली), कूल्ह (कुल्या), कादम, कादा (कीचड़), घाट (घट्ट), उमाड, मशाल (उल्मुक), पीहर (पितृगृह) और वाउ (वायु)।

वनस्पति, उपज-निपज, जड़ी-बूटी, औषधियों आदि के निम्न शब्द बहुश्रु त हैं-

वाड़ी, बाड़ी (वाटिका, वाटी), वेलि (वल्ली), जड़ (जटा), छालि (छल्ली), काठ (काष्ठ), मांजरि (मंजीर, मंजरी), पान (पर्ण), कली, कळी (कलिका), गोछउ (गुच्छा), गांठि (गाँठ, ग्रन्थि), पीपल (पिप्पल), बड़, वड़ (वट), उंबर (उदुम्बर), आंबउ, अंब (आम्र), बील (बिल्व), केसू, केसूला (किंशुक), कपास, कप्पा (कर्पास), बोरि, बोर (बेर, बदरी), महूअउ, महुड़ा (मधूक), बहेड़उ, बहेड़ा (विभीतक), हरड़इ (हरड़, हरीतकी), चांपउ (चम्पा, चम्पक), जाइ (जाति), बीजोरउ, बिजोरा (बीजपूरक), कयर, केर (करीर), धाहड़ी (धातकी), कउछ (कपिकच्छू), धत्तूरउ, धतूरा (धत्तुरक), कउठ, कबीत्त (कपित्थ), नालेर, नारेळ (नारियल, नारिकेल), वांस, बाँस (वंश), नागरवेलि, नागरवेळ (नागवल्ली), द्राख, दाखाँ (द्राक्षा), साठी, हाठी (षष्टिक), चणउ, चना (चणक), मूँग, मूँगेड़ी (मुद्ग), मउठ, मोठ (मकुष्ठ), गोहू, गेहूँ, गवाँ (गोधूम), वाल (वल्ल), कुळथ, कुलत (कुलत्थ), कुलथी (कुलत्थिका), तूँअरि, तुँवर (तुंबरी), सामउ, सावाँ (श्यामक), काँग (कंगु), चीणउ (चीनक), सरिसव, सरसों (सर्षप), वथूअउ, बथुआ (वास्तुक), कारेलउ, करेला (कारवेल्ल), कोहलउ, कोळा (कूष्मांड), चीभड़ी, चरभोटी (चीर्भिटी), कंकोडउ, किंकोडा (कर्कोटक), मूलउ, मूळा (मूलक), रोहीस (रोहिष), डाभ, दाब (दर्भ), ध्रोब, धोबड़ी (दूर्वा), मोथ, मोथा (मुस्ता), त्रिणउ, तण (तृण), खड़ (खट), विस (विष) और वच्छनाग (वत्सनाग) आदि।

कीटादि प्राणियों के निम्न शब्द हिन्दी में अपनी गहरी पैठ बनाए हुए हैं-

कीड़उ (कीट), जलो, जळौक (जलौका), कउड़ी, कौड़ी (कपर्दिका, एक कौड़ी = 20), बांभणी (ब्राह्मी, ब्राह्मणी), घीवेलि (घृतेली), उदेही (उपदेहिका), लीख, लींख (लिक्षा), जू, जूँ (यूका), छप्पई, छप्पगी (छटपदी, षटपदी), माकण, खटमल (मत्कुण), वीछू, बिच्छू (वृश्चिक), भमरउ, भौंरा, भमरा (भ्रमर), खजूअउ (खद्योत), मयण (मदन), माखी, माक्खी (मक्षिका), हाथी (हस्ती), सूंड, शूंड (शुण्डा), आंकुस (अंकुश), घोडउ, घोड़ा (घोटक), पूँछ, पूंच्छ (पुच्छ), दामण (दामांचन), पाखर (प्रक्षर), वाग, लाग (वल्गा), पलाण (पल्ययन, पर्याण), ऊँट (उष्ट्र), करहउ (करभ), गद्दहउ (गर्दभ, गदहा), बळद, बलद (बैल, बलीवर्द), साँड (षण्ड, षण्ढ), धोरी (धौरेय), पोठीयउ (पृष्टय), सींग, सींगड़ा (शृंग), वांझ गाइ (वन्ध्या गाय), छाणउ (छगण), गोउल, गोळी (गोकुल), खीलउ (कीलक), छाळउ, छाळी (छगल), बाकरउ (बर्कर), मींढउ, मींढा (मेण्ढक), कूकर (कुक्कुर), सीह (सिंह), वाघ (बाघ), सादूल (शार्दूल), चीत्रउ (चित्रक), गइंडउ (गण्डक), सूअर (सूकर), रीछ (ऋक्ष), स्याल, स्याळो (सियार, शृगाल), लउंकडी (लोमटिका), सिसलउ, ससियो (शश), गोह, गोयरी (गोधा), गोहीरउ (गोधेर), मूसउ, मूसा (मूषक), ऊंदिरउ, उन्दरा (उन्दुर), जाहउ (जाहक), नउल (नेवला), विसहर (विषधर), सउण (शकुन), पंखी (पक्षी), चांच (चोंच, चंचु), पींछ (पिच्छ), पाँख (पंख, पक्ष), मोरियो, मोर (मयूर), कोइल (कोयल, कोकिल), कागलिया, कागी (काकी), घूघू, घुग्घु (घूक), कूकडउ (कुक्कुट), चास (चाष), टींटोहडी, टिटोरी (टिट्टिभ), चिड़उ, चिड़ी (चिड़िया, चटका), बगलउ (बक), चील्ह, चील (चिल्ल), सूडउ, सुग्गा (शुक), सारी (सारिका, शारिका), पारेवउ, परवेडा (पारापत), तीतिर (तीतर, तित्तिर), माछलउ, माछळी (मछली, मत्स्य), काछबउ, काछबा, कछप (कच्छप), दादुर (दर्दुर), जनम, जलम (जन्म), सास, साँस (श्वास), आउषउ और आयुष (आयु) आदि।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान की औषधियों और जड़ी-बूटियों पर बृहत्कोश तैयार किया जा सकता है जिनका उपयोग यथारूप हिन्दी में होता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थ सुश्रुत में राजस्थान के आबू, मरुभूमि, अरावली पर्वत (पारियात्र) क्षेत्र में होने वाली वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है। भावप्रकाश निघण्टु, धन्वन्तरि निघण्टु, सोढल निघंटु आदि में इनके स्थानीय नाम मिल जाते हैं। धातु और रत्न विषयक शब्दों में निम्न शब्द उपयोगी रहे हैं-

ताँबउ, ताँबा (ताम्र), त्रउअउ (त्रपुक), कथीर, कथीरिया (कस्तीर), रूपउ (रूप्य), पीतल, पीतळ (पित्तल), पारउ (पारद), कांसउ (काँसा,

कांस्य), सोरठी (सौराष्ट्री), तूरी (तुवरी), हरियाळ, हरताल (हरिताल), हींगलू, हींगळू (हींगुलु), रावटउ (राजावर्त), परवाळी, प्रवाली, पुंवाळ (प्रवाल), मोती (मौक्तिक), हीरकणी (हीरा), माणक (माणिक), पना (पन्ना), आगर (आकर), खाणि, खान (खानि), जस्ता (जसद, यशद), गेरू (गैरिक), चूना (सुधा), हौध (सौध), सोनागेरू (सुवर्णगैरिक), खडी (खटी), मणसिल, मैनसिल (मन:शिला) और भोडल (अभ्रक)।

स्थानवाची शब्द इस प्रकार मिलते हैं–वाणारसी (वाराणसी), अउज (अयोध्या), ऊजयणी (उज्जयिनी), हथिणाउर (हस्तिनापुर), आगरउ (अर्गलापुर), लाहउर (लाभपुर, लाहौर), सरसउपाटण (सरस्वतीपट्टन), बीकाणेर, बीकानयर (विक्रमनगर, बीकानेर), जालउर (जाबालपुर, जालोर), साचउर (सांचोर), भरुअच्छ, भड़ौच (भृगुकच्छपुर), चित्तउर (चित्तौड़), बिजौल्या (बिजौलिया, विन्ध्यावली), अजयमेरु (अजमेर), बढवाण (वढवान), हिमालउ, हिमाळो (हिमालय), सेत्रुंजउ (शत्रुंजय), सोवनगिरि (सुवर्णगिरि), जोधाणा (जोधपुर, योधपुर), वाँसवाला (बाँसवाड़ा) आदि।

कुछ अन्य शब्द जो हिन्दी में मिलते हैं, वे संस्कृत में तत्सम रूप में स्वीकारे गए हैं। यथा–पाँति (पंक्ति), सामलउ (श्यामल), कविलउ (कपिल), मीठउ, मीठा (मृष्ट, मिष्ठ), थोडउ, थोड़ा (स्तोक), ऊजलउ, ऊजला (उज्ज्वल), नयड़उ, नैड़ा, नयर (निकट), सारीखउ, सरीखा (सदृश), झाँप (झम्पा), भर्यउ, भर्या (भरित, भृत), वींट्यउ, बींटा (वेष्टन), दाधउ (दग्ध), वीध्यउ, बींधा (विद्ध), फाडियउ (पाटित), लाधउ, लाधना (लब्ध), पठावियउ, पठाना (प्रस्थापित), सांकडउ, साँकड़ा (संकट), उच्छव, उच्छब (उत्सव), मेलउ, मेळा (मेला, मेलक), विघन (विघ्न), परिचउ (परिचय), काज (कार्य), ऊपरि (उपरी, उपरि), आगइ, आगे (अग्र, अग्रत), वांकउ, बांका (वक्र), कूंपल, कोंपल (कुड्मल), आलउ, आला (आर्द्र), सिढिल (शिथिल), पीठ (पृष्ठ), वींट, बींट (वृन्त), रिणउ (ऋण), सिंगार (शृंगार), सांकलउ, संकुल (शृंखला), छांह (छाया), नीमी (नीवी), झीणउ, झीणा (क्षीण), भसम (भस्म, भस्मी), दाहिणउ, दाहिना (दक्षिण), कोहली (कूष्माण्ड), सला, सलाह (श्लाघा), सीप, सीपड़ी (शुक्ति), महलउ, मैल (मलिन), हेठइ (अध:), एकलउ, अकेला (एक, एकक), नवलउ, नवल (नवीन, नव), पीलउ (पीला, पीत), काठउ, काठा (गाढ़), जुआ–जुआ, जुदा–जुदा (पृथक्–पृथक्), लापसी, लपसी (लपनश्री), मांडी (मण्डिका), गुडमंडा (गुडमण्डका, गुलमंडा), वीनती (बीनती, विनती, विज्ञप्ति), खीचडउ, खीचडा (क्षिप्रचट), राब (रब्बा), कणहतउ (कणभक्त), हेडाउ (हेडावित्त), धरणइ (धरणके), कूचउ, कूँचडी (कूँची, कूर्चक), पोटलिया (पोटली, पोट्टलिका), कोथली (कोथलिका), नीसाण, नीसांण (नि:स्वान), पीठी (पिष्टिका), पहुरइ (प्रहरके), बीह (विभीषिका), सेल, शूल (शल्य), चून, चूणि (चूर्णि), फाटउ, फटना (स्फाटित), गोफणि, गोफण (गोफणी), ओठी (औष्ट्रिक), कापडी (कार्पटिक), विसोआ (विंशोपक), चाकी, चक्की (चक्रिका), सींग, सींगड़ी (शृंगिका), चकरडी, चकरी (चक्रिका), दोहणी (दोहिनी), गूजर (गुर्जर, गूर्जर), नाथियउ, नाथा (नस्तित), पूलउ, पूला (पूलक), दाणउ, दाण (दान, दानक), किवाड़ी (कपाटिका), कांबडी (कंबाष्ठिका), लात (लत्ता), नाहर (नाखर), वडी, बडी (वटि), धणिया, धनिया (धनीय), कहाणी (कथानिका), पाणी, पानी (पानीय), पाण (पान), जड़ी (जटी, जटिका), पतंग (पत्रांग), बेल (बेला), हाक (हक्का), साग (शाक), कुंपी (कुंपिका), घिसि (घिसी, घृष्टि), परसो, परसु (परश्व), सूंहाली, सुहानी (सुकुमारिका), गादी, गद्दी (गब्दिका), राखड़ी, राखी (रक्षाटिका), आक (अर्क), नींबू (निम्बूक), थांभउ, थंभा (स्तम्भ), मणिआर, मनिहार (मणिकार) आदि।

इसी प्रकार अनेक कहावतें और लोकोक्तियाँ हैं जो हिन्दी में अल्प रूप परिवर्तन के साथ स्वीकारी गई हैं। यथा–दुखै जिणरै दुखणों, पाकै जिणरै पीड़–यह कहावत हिन्दी में है–जिससे दर्द होता है, वह दु:ख को जानता है, जिसके फुंसी पक जाती है, वही पीड़ा को जान सकता है। वाँझ नी जाणै पसव री पीड़– बाँझ किं जानि प्रसव की पीड़ा। नेतरो बेंतरो हुवै तो मन्थाणै– यदि बिलौनी की रस्सी का संचालन करना आए तो दही को मथा जा सकता है। यह नेतरा शब्द इसी रूप में संस्कृत और हिन्दी में काम आता है।

वस्तुत: भाषा आँख की तरह होती है, जो कोई वाग्व्यवहार देखती है, विचार करती है और हृदयस्थ कर लेती है। प्रत्येक भाषा में सम्पर्क का गुण होता है। वह अस्थि की तरह कठोर नहीं होती, चमड़ी की तरह लचीली होती है। वह मृसण और आकर्षण गुण वाली होती है और अपने सम्पर्क में आने वाले के शब्दों को ग्रहण करती है। व्याकरण से अनुमत रूप में उनको पुन: व्यवहार में लाती है। वैयाकरण पाणिनि इसी कारण मानते हैं कि प्राकृत रूप वाले शब्दों का संस्कार किया जाना चाहिए–अष्टाध्यायी ऐसे ही नियमों को निरूपित करने का महाशास्त्र है। हिन्दी में भी यही चुम्बकीय गुण है और इसी कारण वह हर दिन, हर क्षेत्र में वहाँ की शब्दरूप लोहकण को खींच लेती है। इनमें से कुछ उसके अलंकरण बन जाते हैं तो कुछ अलंकरण के अंग। राजस्थानी उसका हियहार है।

विश्वाधारम्
40 राजश्री कॉलोनी,
विनायक नगर,
उदयपुर- 313001 (राजस्थान)

हिंदी भाषा सिंधु में गढ़वाळि निर्झरणी का अनूठा समागम

– नीरज नैथानी

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि एक समृद्ध भाषा शब्दकोष ही किसी भाष के सषक्त होने की खरी कसौटी होता है। जिस भाषा का जितना समृद्ध शब्दकोष होगा स्वाभाविक रूप से वह भाषा उतनी ही अधिक सुदृढ़ व संपन्न होगी। इसके अतिरिक्त किसी भाषा के दीर्घकालिक जीवित रहने के लिए आवश्यक होता है कि वह अन्य भाषाओं के शब्द आत्मसात कर उन्हें अपनी शैली में ढालते हुए जनसामान्य के लिए सरल सुगम स्वरूप प्रदान करे। अंग्रेजी भाषा आज यदि विश्वव्यापी स्वरूप धारण किए हुए है तो इसका एक प्रमुख कारण यह है कि उसने लैटिन, ग्रीक, फ्रांसीसी, स्पैनिश, पुर्तगाली, अरबी आदि भाषाओं के शब्दों को सहजता से स्वीकार कर अंगीकृत कर लिया। इसी प्रकार से अरबी ने तुर्की, यूनानी, इब्रानी आदि के प्रचलित शब्दों को अपनाकर अपना आधिपत्य विस्तृत किया है। उक्त कसौटी पर यदि हम हिंदी भाषा का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि वह विश्व की सर्वाधिक संपन्न भाषा कहलाने की योग्यता रखती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हिंदी ने विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के लोक साहित्य व लोक व्यावहारिक जीवन से प्रचलित शब्दों को अपनाने में तनिक भी संकोच नहीं किया है। यही कारण है कि अन्य भाषाओं से तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि वर्तमान हिंदी का शब्दकोष अत्यंत ही समृद्ध है। हिंदी भाषा के विकास एवं प्रगति का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि भारतीय भूमि पर पुष्पित पल्लवित हिंदी को अन्य क्षेत्रीय बोली भाषा की शब्द पूंजी ने अकथनीय योगदान दिया है। हिंदी वाङ्मय को संपन्न बनाने में प्रादेशिक भाषाओं की भूमिका को भाषाविद् सहर्ष स्वीकार भी करते हैं। नि:संदेह लोक साहित्य में समावेषित, प्रचलित, व्यावहारिक व पारिभाषिक शब्दों ने हिंदी के फलक को असीम विस्तार दिया है।

यदि हिंदी भाषा विशेषज्ञ लोकभाषाओं के विस्तृत शब्द भण्डारण को खँगालें व अनुसंधान करें तो निश्चय ही उन्हें ऐसी पूँजी प्राप्त होगी जो हिंदी के विकास में और भी अधिक उल्लेखनीय योगदान दे सकेगी। उक्त संदर्भ में गढ़वाळि बोली एवं लोक साहित्य तथा हिंदी भाषा की परस्पर अन्योन्याश्रिता का रोचक संबंध देखने को मिलता है। हिंदी–गढ़वाळि भाषा के शब्दों में पारस्परिक आदान–प्रदान की प्रक्रिया को देखने से पहले गढ़वाळि भाषा के इतिहास, स्वरूप व संरचना को समझना आवश्यक होगा।

अधिकांश गढ़वाळि भाषाविद् व साहित्यकार इस बात पर एक मत हैं कि गढ़वाळि हिंदी से प्राचीन भाषा है। गढ़वाल हिमालय के विभिन्न स्थलों से प्राप्त ताम्र पत्र, दान पात्र, शिला लेख, लोक साहित्य(लोक गीत, लोक जागर, लोक कथाएँ, ढोल सागर, लोकोक्तियाँ, पखाणे, औखाणें, मंत्र–तंत्र साहित्य, नाथ साहित्य आदि) में उल्लेखित गढ़वाळि भाषा के प्राचीन ऐतिहासिक साक्ष्य प्रमाणित करते हैं कि गढ़वाळि अपने आप में एक सम्पूर्ण व स्वतंत्र भाषा है। तथ्य प्रमाणित करते हैं कि गढ़वाळि भाषा का अपना अलग व्याकरण है, समृद्ध शब्दकोष है तथा प्रचुर साहित्य भी तो इसे मात्र क्षेत्रीय बोली कह कर अस्वीकार करना निर्थक ही माना जाएगा। तथापि एक विडम्बना यह भी है कि यदि हम गढ़वाळि बोली का अध्ययन करें तो पाते हैं कि संपूर्ण गढ़वाल में पृथक–पृथक स्थानों पर भिन्न–भिन्न प्रकार की गढ़वाळि बोली का प्रयोग किया जाता है। वे एक–दूसरे से उच्चारण व अन्य संदर्भ में सर्वथा भिन्न हैं। उदाहरण के लिए हिंदी का शब्द 'घर' गढ़वाल में कहीं पर घर, कहीं घार, तो अन्यत्र घौर या घैर उच्चारित किया जाता है। वस्तुत: क्षेत्रानुसार सलाण क्षेत्र में बोली जाने वाली सलाणी, टिहरी जनपद में प्रयुक्त होने वाली टिहरियालि, नागपुर क्षेत्र की नागपुरिया, बधाण की बधाणी, राठ क्षेत्र की राठी, उत्तरकाशी की रवांल्टा, इसी प्रकार से रैंका रमोल्या, दसोल्या, जौनसारी, भोटिया आदि विभिन्न प्रकार की बोलियाँ प्रचलन में हैं। इन बोलियों में औच्चारणिक भिन्नता के कारण स्वाभाविक रूप से गढ़वाळि भाषा का भण्डार वैविध्य से भरपूर है। डॉ. गोविंद चातक के अनुसार–'गढ़वाळि भाषा ने संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द, अनार्य भाषा के शब्द,

गढ़वाळि भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

देशी-विदेशी शब्दों के अतिरिक्त स्थान स्थान से मिले शब्दों को अपनी ध्वनि तथा रूप तत्व के अनुसार इस प्रकार से ढाल लिया है कि वे शब्द अब गढ़वाळि के शब्द प्रतीत होते हैं। अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी के शब्द गढ़वाळि भाषा में इस तरह घुल मिल गए हैं कि वे अब विदेशी नहीं प्रतीत होते'। यही कारण है कि गढ़वाळि शब्द भण्डार समृद्ध बन पड़ा है। गढ़वाळि की संपन्न शब्द संपदा का यह वैशिष्ट्य हिंदी के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

उदाहरणार्थ हिंदी भाषा में जहाँ घ्राणानुभूति के लिए अत्यंत सीमित शब्द उपलब्ध हैं वहाँ गढ़वाळि लोक भाषा में विभिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे-
हिंदी में जहाँ गंध में प्रत्यय लगाकर सुगंध अथवा दुर्गंध मात्र दो शब्दों की व्युत्पत्ति संभव है वहीं गढ़वाळि में प्रचुर शब्दों की उपलब्धता लोक भाषा की प्रबलता को प्रमाणित करती है।
उदाहरणार्थ-

कच्चे तेल की गंध के लिए 'चिलखाण' शब्द उपयोग में लाया जाता हैं
किसी तली हुई चीज पर आने वाली कच्चे तेल की गंध-
'तेलाण' कहलाती है।
धुएँ की गंध-'धुवांण',
जलने की दुर्गंध-'फुक्यांण',
भूनने की गंध-भुज्याण
छौंक की गंध-भुटांण,
छाँछ या दही से आने वाली खट्टेपन की गंध-'खटाण',
मिर्च या कोई तीखी चीज जलने की गंध-'खिकराण',
सूती कपड़े जलने की गंध-'कुतराण',
ऊनी वस्त्र जलने की गंध-'किकराण'
मिट्टी की गंध-'मटाण',
सीलन की गंध-'सिलप्याण',
सड़े हुए की गंध-'सड्याण',

पीतल के बर्तन में रखी खट्टी वस्तु से आने वाली गंध-'पितळाण' तथा कच्चे धागे अथवा अधपके खाने से आने वाली गंध के लिए 'कचाण' शब्द उपलब्ध हैं।

इस प्रकार के अनेक शब्दों की लम्बी सूची है जिसका स्थानाभाव के कारण यहाँ पर उल्लेख संभव नहीं है। हिंदी भाषा अपनी अभिव्यक्ति क्षमता को विस्तार देने के लिए उपरोक्तानुसार ऐसे गढ़वाळि शब्दों को अपने शब्दकोष में सम्मिलित कर सकती है।

इसी प्रकार पानी के गर्म होने के लिए हिंदी में जहाँ हम गर्म, बहुत तेज, कम गर्म अथवा ठण्डा पानी जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं वहीं इस संदर्भ में गढ़वाळि लोक भाषा की समृद्ध छटा दिखाई देती है। उदाहरणार्थ-

गुनगुना पानी-गळतो पाणि,
ठंडा पानी-चस्सो पाणि,
बहुत गर्म-चड़चढु पाणि,
खिडखिडू पाणि,
मुतमतो पाणि,
ऐड़ो पाणि,
चचगार पाणि,
तातु पाणि,

मनतातु पाणि आदि शब्दों की उपलब्धता से प्रतीत होता है कि लोक भाषा के शब्दों ने तापमापी के अनुसार पानी का तापमान इंगित करने की विशिष्ट क्षमता धारण की हुई है।

इसी प्रकार से गढ़वाळि में हँसी के लिए खिगताट जो उन्मुक्त हँसी का द्योतक है, खिकचाट व्यर्थ की हँसी को दर्शाता है, निकन्याट अस्वाभाविक हँसी को प्रकट करता है जैसे अनेक शब्द प्रचलन में हैं।

डॉ. बड़थ्वाल का मानना है कि उच्चारण, शब्दावली, रूप रचना की दृष्टि से गढ़वाळि राजस्थानी की बहिन है। यद्यपि राजस्थानी में मेल्णों के उच्चारण में कुछ भिन्नता आ जाती है उसका कारण यह है कि राजस्थानी बोली में ल 'ल' सस्वर ल है या स्वर अ तथा ल के बीच में 'ह' आ जाता है परिणामत: 'मेलई' 'मेल्हई' हो जाता है जिसका अर्थ छोड़ना-डालना के संदर्भ में होता है। उदाहरणार्थ -
1-छोड़ना, 2-डालना- रखना, 3-छोड़ना-अलग करना, 4-छोड़ना मारना, 5-छोड़ना देना, 6-छोड़ना- भेजना, इस संदर्भ में वे ठोला मालवाणी कथा के विभिन्न वाक्यों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-
1-छोड़ना
अबही मेली हैकसी, करले काइ कलाप (ऊँटनी को मैंने अकेले छोड़ा है, वह विलाप कर रही है)
चाल्यासूती मेली (सोती हुई छोड़कर चले)
गया धुकती मेल्ह (मुझे धधकती छोड़कर चला गया)

सुवई निचंत मारुई ढीला मेल्ह अंग (माखणी अंगबों को ढीला छोड़कर निश्चिंत होकर सो जाती है।)

2–डालना या रखना
किस गुण मेल्ही वीण(क्यो वीणा रख दी)
विण हँसि मेल्ही वीण (उसने हँसकर वीणा रख दी)
जिण रुति वग पावस लियई धरणी न मेल्हई पाई (जिस ऋतु में वर्षा के कारण बगुले भी पृथ्वी पर पाँव नहीं रखते हैं।)

डॉ. बड़थ्वाल सिक्खों के आदि ग्रंथ में रामानंद जी के संगृहीत एक पद का उदाहरण देते हैं –
'वेद सुमृत सब मेल्हे जोई'

मैथिल कोकिल विद्यापति जी ने भी अपनी पदावली में डालने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है –
'कत आके दैत्य मारि मुह मेलन'
'अनंग मंगल मेलि कामिनि करधु केली'

शिव सिंह कृत सरोज में वर्णित विजय सिंह नामक कवि की रचना में इस शब्द का प्रयोग छोड़ने के संदर्भ में होना बताया है–
याद यते दिन आवे आपा बोला हेल
भागें तीनों भूपति माल खजाना मेल।

डॉ. बड़थ्वाल ने इस शब्द का प्रयोग कबीर, सूर, तुलसी दास जी द्वारा किया गया भी बताया है। उपरोक्त उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि एक ही शब्द 'मेल' को गड़वाळि, राजस्थानी, मैथिली, खड़ी बोली हिंदी आदि में प्रयुक्त किया गया है। प्रसिद्ध गढ़वाली साहित्यकार श्री रमाप्रसाद घिल्ड़याल पहाड़ी जी ने उल्लेखित किया है कि हिंदी साहित्य तभी सशक्त हो सकता है जब वह क्षेत्रीय बोलियों के स्वस्थ साहित्य से अपना नाता जोएगा **(गढ़वाली साहित्य, धाद मासिक पत्रिका अगस्त 2023, पृ. स. 32)**। इसी आलेख में वे गढ़वाली बोली बोलने वालों से अनुरोध करते हैं कि–आपके ऊपर एक बड़ी जिम्मेवारी यह है कि 'आप अपने साहित्य को और अधिक सशक्त बनाएँ तथा गढ़वाली संस्कृति का संबंध राष्ट्रभाषा हिंदी से जोड़ें। जनता में नवीन प्रेरणा फैलाने के लिए ग्रामीण भाषाओं का सहारा लेना चाहिए, गीत भी ग्रामीण भाषा में लिखे जाएँ और गायकों से उन्हें गवाया जाए।'

वस्तुत: हिंदी को और अधिक संपन्न बनाने के लिए गढ़वाळी साहित्य व शब्द संपदा पर नवीन शोध व अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है। हिंदी, गढ़वाळी लोक भाषा बोलि के अनेक शब्दों को आत्मसात कर अपने फलक का अनंत विस्तार कर सकती है। आंचलिकता का पुट आने पर निश्चय ही राष्ट्रभाषा हिंदी और अधिक आकर्षक व लुभावनी बन सकेगी।

टीचर्स कालोनी
निकट–चौरास पुल, बद्रीनाथ मार्ग
श्रीनगर गढ़वाल–246174 (उत्तराखण्ड)
मो.– 9412949894

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

हिंदी में मैथिली

– चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

हिमालय की तलहटी से गंगा के कछार तक है मिथिला। राजर्षि जनक की धरती, जगतजननी सीता का नैहर। गंगा, गडक, कोशी और बागमती से आप्याजयित धरती। यह रत्ननगर्भा धरती है, जिसकी कोख से एक-से-एक लेखक, विचारक पैदा हुए। मिथिला की पांडित्य परम्परा काशी से होड़ लेती रही है। पांडित्य को छोड़िए। विद्यापति की रसीली मैथिली से तो दिग-दिगंत परिचित है। हिन्दी के कई नामचीन लेखक मिथिला के हैं-नागार्जुन, फणीश्वनाथ रेणु, राजकमल चौधरी, रामधारी सिंह दिवाकर। इन लेखकों की भाषा पर मैथिली का व्यापिक प्रभाव है। इनकी मातृभाषा मैथिली है, इसलिए इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह प्रभाव हिन्दी और मैथिली की पारस्परिकता का सुखद प्रमाण है।

मैथिली शब्दों की आमद :-नागार्जुन की रचनाओं में मैथिली शब्दों की खूब आमद हुई है। नागार्जुन हिन्दी और मैथिली के अप्रतिम लेखक हैं। नागार्जुन का असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था, परन्तु हिन्दी में नागार्जुन तथा मैथिली में यात्री उपनाम से रचनाएँ कीं। कुल ग्यारह उपन्याास लिखे जिनमें मैथिली की सुवास है। केवल 'बलचनमा' की चर्चा ही पर्याप्त होगी। शीर्षक ही खाँटी मैथिली है। बलचनमा का बचपन मिथिला में दरिद्रता में बीता। उसकी कमर से फटी-सी मैली सी बिस्ढी झूल रही है। नागार्जुन समझाते हैं-बिस्ढी न तो लँगोटी है न कच्छा, कपड़े के लीरे को अगर तुम कौपीन की भाँति पहन लो तो वही हमारे यहाँ बिस्ढी कहलाएगी। बलचनमा चरवाही करता है। जरा देर से आने पर मालिकाइन हुहुआ उठती हैं। मलिकाइन के नैहर से भरियाभार लेकर आता है, तब बायना बाँटने का वर्णन बलचनमा करता है। छोटी मलिकाइन दुअन्नी के हिसाब से साल भर का दरमाहा डेढ़ रुपैया देती है। दूध-दही खाने को मिलता तो था, पर सिनेह और जतन से नहीं। मलिकाइन औव्वल दर्जे की बेईमान हैं। बटखरा बदलकर वापसी अनाज लेती हैं। कनमनाने पर फूदन मिसर की विधवा को सैइयाँडाही कहती हैं। ऐसी ही बेईमानी पर करिमबक्कास को भी एक बार बलचनमा ने छिलमिलाते देखा था। बड़ा कठिन जीवन है। डेढ़ पहर काम कर चुकने पर पाव-भर पिसान से बनी मडुआ की रोटी पन पिआई में मिलती है। नौड़ी सुखिया को बलचनमा पसंद है, क्योंकि वह बतिया खीरा है।

बलचनमा के दिन बहुरते हैं जब फूल बाबू पटना ले जाते हैं। फूल बाबू मलिकाइन के भतीजा हैं, पटना में पढ़ाई करते हैं। हराही जक्सान का लाटफारम देखा तो अकिल हैरान हो गई। ऐंजन को टहलान मारते देखा। रात की यात्रा में बाध-बोन दिखाई नहीं पड़ रहे थे। फूल बाबू ओकालत पढ़ते हैं, सुराजियों की संगति करते हैं, सो बलचनमा को भीतर-ही-भीतर उनके लच्छनों से अंदेशा होता है। वे नमक कानून तोड़ने के आरोप में जेल जाते हैं। बलचनमा सोचता है कि यह हाल माँ-बाप सुनेंगे तो उनको हौलदिल हो जाएगा। अब बलचनमा के आसरा फूल बाबू के बंगाली मित्र महेन बाबू हैं। उनका ओढ़न-पहिरन देश वाली लोगों से अलग किस्म का है। लोगों का जत्थो चढ़उआ बकरे की तरह नमक बनाने जाता है।

बलचनमा को पटना की हवा लग गई है। वह गाँव लौटता है। माँ मलिकाइन की सेवा में है जो उसे अखरता है। पर माँ समझाती है- 'बूढ़े-पुराने भी तो तेरे इन्हीं लोगों का जूठन खाकर, फेरन-फारन पहन-ओढ़कर अपनी जिनगीगुदस्तस कर गए। उतना उड़ाकू मत बन बेटा!' **(बलचनमा, पृ. 60)** माँ मलिकाइन के यहाँ पहले की ही भाँति काम किए जा रही है। काम जास्तीच नहीं मगर लपटौनी बहुत बड़ी। बहन रेवनी जवान हो रही है। मालिक की कुदृष्टि उस पर है। गर्मी है, सो बिजनी चलाने के बहाने पास बुलाते हैं। मालिक के मन में सैतान झिंगुर की तरह झझकारता है। उसे छू देते हैं। रेवनी सिसकने लगती है। मालिक सफाई देते हैं-'मैंने तो यों ही जरा छू दिया था और तू करनपिसाची खेलने लगी।' **(वही, पृ. 67)** मालिक की इस हरकत के बाद बलचनमा गुन-धुन में पड़ा रहता है।

मैथिली भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

फूल बाबू जेल से छूटकर पक्के सुराजिए हो गए हैं। दरभंगा के निकट बरहमपुरा के आसरम में रहते हैं, बरहमगाँती पहनते हैं। बलचनमा अपनी विपदा कहने आसरम पहुँचता है। खाने की घंटी बजती है। फूल बाबू समझाते हैं-बिझओ समझो। आसरम के लोग बचलनमा को लेकर जिज्ञासु हैं। फूल बाबू कहते हैं- 'आप लोग यों ही अललटप्पू मारते हैं। यह मेरे घर से नहीं फूफी के यहाँ से आया है। उन्हीं का बहिया है।' **(वही, पृ. 81)** आसरम में सोराज के भविष्य पर मगजमारी करता है। बलचनमा को लगता है कि सोराज मिलने पर आसरम के रसोइया को भी आराम-सुभिस्ताक मिलेगा। वह उहापोह में है। गाँव छोड़कर पटना में रिक्शा खींचकर या दीघाघाट पर जहाज का माल ढोकर माँ की और अपनी जिन्देगी गुदस्त करेगा। फूल बाबू की चुप्पी से उसे कछमछाहट होती है।

आसरम में राघा बाबू का साहचर्य मिलता है। वह उनके निर्देशानुसार दीसा फिरता है, हाथ मटियाता है और 'बेफिकर होकर बड़ी देर तक पानी में बोहियाता रहा। मन जब तिरपित हो गया, देह जब हेमाल हो गया, तब बाहर निकला।' **(वही, पृ. 89)** बलचनमा को विश्वास है कि राधा बाबू उसकी समस्या के समाधान का कोई व्योंत लगाएँगे। राधा बाबू ने एकाएक पढ़ाई छोड़कर अपनी बूढ़े बाप के आस-भरोस पर भारी बज्जर गिरया। ससुर भी चितंग होकर गिरे। पर वे सहृदय हैं। पवनी-तिहार के मौकों पर बलचनमा को इकन्नी, दुअन्नी, चौअन्नी देते ही रहते हैं। बलचनमा का काम है राधा बाबू के कपड़े साफ करना, कागज-पत्तर सरियाकर रखना, कभी पैदल चले हों तो पैर-डाँड़ चाँप देना और सामान की खबरगीरी रखना। राधा बाबू का टहलुआ होने की वजह से सभी सोराजी बाबू उसे अपना-अपना टहलुआ समझते हैं। लीडरों के जुटान में डर के मारे वह सिक-सिक करता रहता है। राधा बाबू की बात और है, लेकिन दूसरे सोराजी बाबुओं में से सैकड़े में नब्बे ऐसे ही मिले, जिनको 'जी सरकार' कहलाने में बड़ा निम्म न बुझाता है। मौसम में चार ठो पियाज और आठ ठो टमाटर खाते थे राधा बाबू। मगर आम के तरह पका टमाटर चूसना बलचनमा से कभी नहीं सपरा। मलिकिनी और उनका दूठो बेटा है, उ भी आने वाले हैं। दरसन तो किया था नहीं, सो बलचनमा के मन में हुद-हुद्दी बैठ गई। बिदागरी के लिए गया पहुँचता है, खुशफैल रास्ता देखकर प्रसन्न होता है। नवाद के मोहनपुर में राधा बाबू की ससुराल है। ससुर लखपती जमींदार। दसनाँदो की लम्बी कतार, दोनों ओर बँधे हुए बीस भैंसे, खराब हालत-मरना न जीना, हुकहुक करना। 'कुटुम के दरवाजे पर ठाट-बाट की कमी नहीं थी। हाल में दूठो आराम कुर्सी, चार ठो मामूली कुर्सी, एक ठो गोलमेज पड़े थे। मोटे गद्दे का एक भारी-भरकम कोच पड़ा था। सिर टेकनी की जगह तेल से काला और चिकना पड़ गया था।' **(वही, पृ. 107)** घर में बच्चों की देखभाल नौड़ी करती थी। बलचनमा को खाने की थाली कठौती-जैसी लगी। मलिकाइन छपउआ साड़ी और छींट की आँगी में दिखी।

बलचनमा गाँव लौटता है। पकी फसलों से समूचा बाग ऐसा बुझाता है मानो सुनहली मिट्टी से पुता हुआ भारी मैदान हो। बचलनमा खेती के सुतरने की बात करता है, तभी मिन्नी मनौती में भी सुभीता रहता है। बालचन्द का गौना होने वाला है। नगदी का इंतिजाम किया, एक खंड और साड़ी मँगवानी पड़ी। बिदागरी के समय औरतों ने रो-रोकर आसमान को माथ पर उठा लिया। बिदागरी के रास्ते बालचंद के मामा का चाल को लेकर कहारों से बकझक हुआ। वे बमक उठे। कहार फुर्ती में है, क्योंकि कंधे पर भारी बोझ हो फिर फुर्ती ही फुर्ती चाहिए। वैसी हालत में तनिक भी सुस्ती कोख-करेज को खखोड़-खखोड़कर खा जाती है। **(वही, पृ. 125)** रास्ते में बड़े मालिक की कुटमैती भी मिलती है। बाबू छत्रमणि ठाकुर का बाग भी मिलता है। अपने तो ठाकुर परतापी थे मुदा लड़का दोनों अबुरबान निकले। बालचंद को डोली के साथ घर आने में लाज लगती है, सो दिसा-फराकत से निबटने के लिए गाँव के मुहाने पर ही रुक जाता है। सुहागरात में ठिकियाकर पत्नी को बाँहों में कस लेता है, तो उसका मुँह उसकी कनपटी पर पड़ता है। पत्नी के चेहरे की साबिकसूरत लौट आती है। उसे मुँह-बजावन देता है। जनानी बड़ी गुनमन्ती मिली है। कनिआबखत पर खाया, बखत पर सोए, मैया को इसका भारी ध्यान रहता है।

बालचंद गाँव में रम गया है। बल्ली बाबू के बाग की रखवाली का काम उसे मिला है। दिन को मैया अगोरती और रात को उसे ही वहाँ मचान पर सोना पड़ता है। काम के बखत वह किसी भी किसिम की विचिर-फिचिर या ढिलाई का कायल नहीं। झूठ-मूठ की जी-हजूरी उसके लिए जहर-माहुर है। चालाक और चाँई लोगों की चालबाजियों से बचने के लिए चौकस रहना जरूरी मानता है। भूकंप आता है। माँ और पत्नी सुगनी से निफिकिर होकर वह मनियार चाचा की मदद में दौड़ता है। पक्केऔ मकानों की बस्तियाँ पहपट पड़ गई हैं। सरकार की मानो नाड़ी ही डूब गई है। गाँधी जी आते हैं। उन पर चढ़ाने के लिए

अररनेवा हाथ का कटा हुआ सूत आदि न जाने कितनी किसिम की चीज-वस्तच लोग ले आते हैं। बालचंद खा-पीकर निचेन हुआ तो सुगनी को थोड़ा गाँधी महतमा के बारे में समझा दिया। उसकी समझ है कि कौड़ी-भर भी नई बात मालूम हो उसमें से जरा सी खोंटकर बेचारी के कान में जरूर डाल देनी चाहिए।

मालिक का घराना है। काज-परोजन के दिन हैं। उपनैन का आयोजन होता है। सोलह ठो छागर की बलि चढ़े, चार खस्सी पीटे गए। चार रोज तक हवेली मसुआइन महकती रही। विरादरी को जिवाया गया। फूल बाबू की माँ कालिआवन हुआ। किसान-मजदूर अपने हक-हुकूक के लिए संघर्ष के रास्ते पर हैं। जमींदार खान बहादुर सादुल्ला-खाँ की हजारों बीघा जमीन मनखप लगी हुई है। महपूरा के छोटी औकात के तीन सौ खेतिहर खान बहादुर की हाजर बीघा जमीन पुश्त-दर-पुश्त से मनहुंडा जोतते आए हैं। इलके भर के जमींदार, पंडित और मौलवी, सब खान बहादुर के पच्छं में हैं। इस आंदोलन में बालचंद भी भोलंटियर बनता है। अँगूठियाबाल वाले रहमान साहब उसका नाम लिख लेते हैं। बालचंद बाँस की छिपाठी पर लाल झंडे को फहराते देखता है। 'क्रांति' अखबार आने लगा है। तीरी, कपिलेसर और रामखेलाबन के साथ वह बच्चू के मुँह से उस अखबार की एक-एक पाँती को सुना करता है। लोगों को किसान सभा का मेंबर बनाता है। मोसमा कुन्ती इकन्नी देकर मेंबर बनती है। और कहती है- 'बालो! देवता के पर्साद के लिए यह एक चुटकी पिसान गरीविन का भी।' **(वही, पृ. 164)** सुबह-शाम किसान सभा के लोग नारेबाजी करते हैं। गाँव के अंदर भी और झगड़ा वाली जमीन के चौगिर्द भी। मुठिया अनाज की वसूली बदस्तूर जारी है। जमींदार के लठैत बालचंद पर रात के अँधियारे में हमला बोलते हैं। वह बेहोश होकर जमीन पर लुढ़क जाता है। यहीं उपन्यास खत्म होता है, पर वास्तव में यहीं से शुरू होता है।

मिथिला के दूसरे रचनाकार हैं फणीश्वरनाथ रेणु जिनके यहाँ मैथिली की सुवास मिलेगी। रेणु को आंचलिक उपन्यास की शैली के माध्यम से समकालीन ग्रामीण भारत की आवाज को बढ़ावा देने के लिए जाना जाता है, और उन्हें उन अग्रणी हिन्दी लेखकों में रखा जाता है, जिन्होंने क्षेत्रीय आवाजों को मुख्यधारा के हिन्दी साहित्य में लाया। 'मैला आँचल' और 'परती परीकथा'-इन दोनों उपन्यासों में मैथिली शब्दों की काफी आमद हुई है। उपन्यास 'बलचनमा' की चर्चा हो चुकी है। स्वाद बदलने के लिए रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' में प्रयुक्त मैथिली शब्दों को रेखांकित करेंगे।

'तीसरी कसम' पर इसी नाम से राजकपूर और वहीदा रहमान की मुख्य भूमिका में प्रसिद्ध फिल्म बनी जिसे बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित किया। सुप्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र इसके निर्माता थे। यह फिल्म हिन्दी सिनेमा में मील का पत्थर मानी जाती है। हिरामन और हीराबाई की इस प्रेम कथा ने प्रेम का एक अद्भुत महाकाव्यात्माक पर दुखांत कसक से भरा आख्यान सा रचा जो आज भी पाठकों और दर्शकों को लुभाता है।

हिरामन तीन कसमें खाता है। पहली कसम चोरबाजारी का मालढोने पर। चार खेप सीमेंट और कपड़े की गाँठों से भरी बैलगाड़ी, जोगबनी से विराटनगर पहुँचाने के बाद हिरामन का कलेजा पुख्ता हो गया था। पाँचवी बार गाड़ी पकड़ी गई। महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों को बीच चुक्की-मुक्की लगाकर छिपा हुआ था। दरोगा साहब की डेढ़ हाथ लंबी चोरबत्ती उसे देख लेती है। चोरबाजारी की बीसों गाड़ियाँ दरोगा की कड़कती आवाज पर एक साथ कचकचाकर रुक गईं। दरोगा हाथ की छोटी लाठी से मुनीम जी के पेट में खोंचा मारता है। हिरामन का अनुमान है कि दरोगा साहब और मुनीम जी में पुरानी अखज-अदावत होगी। इस बार निस्तार नहीं, जेल जाना होगा, बैल बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे। हिरामन बाँस की टिकटी लगाकर बैलों के कंधों को बेलाग करता है और दुलकी चाल से भाग खड़ा होता है और कसम खाता है-चोर बाजारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी कसम बाँस की लदनी का है। बाँस की लदनी में आगे अगुआ और पीछे पिछुआ चार हाथ निकला हुआ। बाँस का अगुआ पकड़कर चलने वाला भाड़ेदार का महाभकुआ नौकर, लड़की-स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड़ पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गई। घोड़ागाड़ी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गई। घोड़ागाड़ी वाले ने ताड़तड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी। तब हिरामन ने दूसरी कसम खाई-बाँस की लदनी न करने की।

तीसरी कसम पर कहानी का वितान तना है। मथुरामोहन नौटंकी कंपनी में लैला बननेवाली हीराबाई को हिरामन दिरौता संगीत नौटंकी कम्पनी पहुँचाने जाता है। फारबिसगंज में मेला लगा है। बैलों को डाँटने पर हीराबाई इस-बिस करने लगती है। बोली फेंनूगिलासी है। हिरामन को सब-कुछ रहस्यमय-अजगुत-अजगुत लग रहा है। हिरामन बैलों को झिड़की देता है-'कान चुनियाकर गप सुनने से ही तीस कोस मंजिल कटेगी क्या? **(हिन्दी की कालजयी कहानियाँ, सम्पादक-डॉ. नंद किशोर नवल, पृ. 116)** हिरामन उलझन में है-वह क्यों कहकर गप

करे हीराबाई से–तोहें कहे या अहाँ? 'कचराही बोली में दो–चार सवाल–जवाब चल सकते हैं, दिल खोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से।' **(वही, पृ. 116)** प्रकृति अपने यौवन पर है। नदी के किनारे धनखेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गंध आती है। हीराबाई की आँखें गुजुर–गुजुर हिरामन को टेर रही हैं। हिरामन की सारी देह सिरसिरा जाती है।

हिरामन कुँवारा है, उसके लिए शादी बलाय मोल लेना है। वह हीराबाई को राहगीरों की टोक–टाक से बचाता है, कभी बिदागी (बिदागरी) का बहाना करता है, कभी इसपिताल की डगडरनी बताता है। देहाती भुच्चों की टोक–टाक से परेशान है। वह गप रसाने का भेद जानता है। नामलगर (रामनगर) की हैफवाली कहानी कहता है। नामलगर ड्योढ़ी के उपलैन (उपनयन) में लाट साहब और लाटनी हवागाड़ी से आए थे। देवता नाराज हो गए–पटपटाँग! धन–दौलत, माल–मवेशी सब साफ, सिर्फ सरोसती मैया रह गई। लगे हाथ बनिए से बटगमनी जवाब का स्वाद भी मिलता चलता है। राही साइकिलवाला कुछ ही दूरी में थसथसाकर थक गया है। वह मिनमिनाकर बोलता है। हिरामन दही–चूड़ा लाता है और हीराबाई से 'पा' लेने का आग्रह करता है। चाह तो फारबिसगंज जाकर ही मिलेगी। हिरामन की देह की गुदगुदी बिला जाती है। वह अब बेखटक हीराबाई की आँखों में आँखें डालकर बात करता है। हीराबाई को गीत सुनाने का शौख है। हिरामन महुआ घटवारिन का गीत सुनाता है–इसमें गीत भी है, कथ्था भी है। महुआ थी तो घटवारिन, लेकिन सौ सतवंती में एक थी। उसकी सौतेली माँ साच्छा तराकसनी। उसने अपनी बज्जर किवाड़ी बंद कर ली और परदेशी बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए महुआ को घाट पर भेज दिया। महुआ घटवारिन का गीत सुनते ही दोनों बैल भी थसथसा जाते हैं। फारबिसगंज निकट है। हिरामन शहरू बारह बखेड़े को जानता है, इसलिए सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका देता है। मेले में गाँव–समाज के गाड़ीवान, एक–दूसरे को खोजकर आस–पास गाड़ी लगाकर बासा डालते हैं। अपने गाँव के गाड़ीवानों के दल को देखकर हिरामन अचकचा जाता है। लालमोहर हीराबाई से बात करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। 'हिरामन लालमोहर का हाथ टीप देता है–बेसी भचर–भचर मत बको।' **(वही, पृ. 128)** हीराबाई को धुत्रीराम पतुरिया कहता है, तो सभी उसे दुरदुरा देते हैं। हीराबाई की संगति से हिरामन की देह से अतर–गुलाब की खुशबू निकलती है, वह करमसाँड़ है। हीराबाई फिलिम एक्ट्रेदस को मात करती है। हिरामन प्ले टोनिक प्रेम में है। हीराबाई द्वारा दिया गया इलामबकसीस सतही है। संकोच का एक झीना आवरण भी है। कंपनी में आकर भेंट करने की पुरसिस कर गई है हीराबाई। 'लेकिन हिरामन की बस एक बात–धत्त कौन भेंट करने जाए। कंपनी की औरत, कंपनी में गई। अब उससे क्या लेना–देना। चीन्हेगी भी नहीं। **(वहीं, पृ. 132)** कंपनी में हिरामन जाता भी है, हीराबाई चीन्हाती भी है, तमाशा देखने के लिए पास भी मिलता है, पर अंततः वह पुरानी कंपनी में लौट जाती है। टीशन पर हिरामन से भेंट होती है। विदा का मार्मिक दृश्या। हिरामन की दुनिया ही खाली हो गई मानो। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है–कंपनी की औरत की लदनी न करने की।

मिथिलांचल के तीसरे महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं रामधारी सिंह दिवाकर। उनके दस कहानी–संग्रह और छः उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। आठवें दशक के आरंभ में हिन्दी कथाकारों की जो पीढ़ी उभरकर सामने आई, उस पीढ़ी में रामधारी सिंह दिवाकर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मूलतः मिथिला की ग्रामीण संवेदना को कथाकार हैं। गाँव के बदलते हुए यथार्थ को तलस्पर्शी दृष्टि और मार्मिक स्पर्श से उन्होंने विस्तार और गहराई प्रदान की है। इस क्रम में उन्होंने अपनी कथा–भाषा विकसित की है जिसमें मैथिली की छौंक है।

'मखान पोखर' दिवाकर जी का एक कहानी संग्रह है जिसमें इस शीर्षक से एक कहानी भी है। इस कहानी की नायिका है 'दुलरिया'–एक बच्चे की युवतीबेवा। सगरो दियार के लोगों की एक ही रट–दुलरिया को बाँध दो किसी खूँटे से, कर दो कहीं इसका चुमौना (पुनर्निर्वाह) **(मखान पोखर, पृ. 62)** वह नैहर में रहती है, पिता ने डेढ़ बीघा जमीन लिख दी है। दोनों भौजाइयाँ दुलरिया को 'रांड़ी बेटखौकी' से 'पुतखौकी' और 'मंगजरौनी' तक गालियाँ देती रहती हैं। बबुआन टोले की मुखियायिन इसे झगड़नाच कहती हैं। झगड़नाच जब झोंटा–झोंटव्वल और उठा–पटक तक पहुँचने लगता है तब कुछ औरतें बीच–बचाव के लिए 'ऊपरी मन' से आगे बढ़ आती हैं। इस बीच भाई आ गए तो अपनी–अपनी 'झोटहा' को घसीटकर आँगन में ले आते हैं, दुलरिया को कुछ नहीं कहते। बबुआन टोले और बभनटोली की औरतें जरूर कहती हैं–'माइ गे माइ, कइसन जब्बड़ औरत है ई दुलरिया, जरा भी सरम–लिहाज है? **(वही, पृ. 64)** दुलरिया सातों किरिया खाकर आई है ससुराल से– नहीं करेगी चुमौना। मन में कभी आयेगा, कोई जँच गया मन को तो किसी से पूछेगी भी नहीं। वह शहरी पढुआ लड़की की तरह पिंगल पढ़ती है। ठाय–प–ठाय जो आता है मन में, बक जाती है। बबुआन टोले और बभनटोले की औरतों की सुस्खाकी एकदम अलोप, सटकदम। जोतदार सरूपलाल

मड़र चुमौन के लिए पेटकुनियाँ दिए रहा दुआर पर, किंतु दुलरिया ने कहा–'खपरी से मारूंगी मुंहझौंसाकरिऔंठा को।' **(वहीं, पृ. 67)** बड़की भौजी उसे बेलज्जी बहिन कहती है। यद्यपि चार बरस ही वह सुहागिन रही, पर बड़की भौजी जिनगी भर का सुख जोड़कर पासंग में भी नहीं आएगी। वह कर्मठ है, भाँजा पर हल चलवाती है। बावजूद इसके वह घर–बाहर परेशान है। बेटा किसना जलालत की जिंदगी जीता है। जाड़े के महीने में जब भोरुकबा तारा उगता है, बड़का भैया हो–हल्ला करके किसना को जगा देते हैं–'पसर' खोलने के लिए। रामचन्द्र सिंह चाहते हैं– दुलरिया की जमीन उसके चक में चली आए तो ढंग से पटौनी होगी। दलित सेना का सीताराम पासवान समझता है–'राजपूत राजपुताही दाँव मारते हैं, बाभन बभनपेंच में फँसाते हैं और कैथटोली के बारे में तो पता ही होगा–मरा कायथ भी विसविसाता है।' **(वही, पृ. 70)** समाधान है कि दुलरिया उसके टोले में बस जाए। लाल सेना का नेवीलाल दुलरिया को अपने संगठन में आने की सलाह देता है। पर वह साफ कहती हैं– 'कुछ नहीं बोलती हूँ तो क्या समझते हो मुझको? ढहलेल–बकलेल?...कल का नवतुरिया छौंड़ा मुझे समझाने आया है? तुम क्यो समझते हो मुझको? बेसवा–पतुरिया? नालकटे का घाव तो अभी सूखा नहीं और आते है कठपिंगल पढ़ाने?' **(वही, पृ. 74)** इसके बाद से नेवीलाल दुआर छोड़ देता है। विरोधियों को सामने दुलरिया को पित्त चढ़ जाता है। पर गीत गौन हारिन में भी सबसे ऊँची टाँसी देने वाली है। असमय वैधव्यप ढोतीसवर्ण सखी रुक्मिणी के प्रति उसे सहानुभूति है। वह साफ कहती है कि उसे ढिबरी की बाती की तरह जलाया गया है। बैल के चोरी होने पर सदमे में विलाप करती है–'कोढ़ फूटेगा बजरखसुआ को जो बैल चुरकर ले गया है। खून बोकर मरेगा–हे माता दुलारीदाय, काली माई, हे दिनकर दीनानाथ!' **(वही, पृ. 79)** संघर्ष और विलाप कहानी के अंत तक पहुँचते–पहुँचते शमित होता है। ननद–भौजाई की प्रीति के साथ कहानी समाप्त होती है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ :– इन कथाकारों ने मिथिला के मुहावरों और लोकोक्तियों का बड़ा ही चुटीला प्रयोग किया है। 'बलचनमा' को फूल बाबू पटना ले जाना चाहते हैं। पर पिता का कहना है कि वह गले का ढोल बन जाएगा। बलचनमा की समझ साफ है कि बड़ी जात वाले बात–बात में अपनी गोटी वही लाल करते हैं। **(बलचनमा, पृ. 47)** सुराजी बन गए फूल बाबू की दशा देखकर बलचनमा के कलेजे में फार घँस जाता है। **(वहीं, पृ. 49)** फूलबाबू के जेल जाने पर अकेले में कई बार उसका कलेजा फटता है। **(वही, पृ. 53)** बलचनमा के छोटे मालिक को राँची, हजारीबाग की तरफ किसी राजा के यहाँ मैनेजरी हाथ लगी। जब तक वहाँ रहे, पौबारह कटी। **(वही, पृ. 63)** मिथिलांचल में भोज का खूब प्रचलन है, सो चुन्नी के दोनों भाई और बुढ़ऊ खुद बाल–बच्चों को साथ लेकर पत्तल गरमाने गए **(वही, पृ. 73)** विपत्ति में बालचंद की जीभ पथरा जाती है। **(वही, पृ. 75)** गाँधी जी के माहात्म्य से बालचंद परिचित है। तभी तो कहता है– अंग्रेज बहादुर की उन्होंने नाक में कौड़ी बाँध दी है। ...गाँधी को पकड़ना और पानी में आग लगाना दोनों मुश्किल है। **(वही, पृ. 78)** बालचंद को मालूम है कि घर में भुँजी भाँग नहीं है, फिर भगवान कौन उपाय करेंगे। **(वही, पृ. 96)** मिथिला शक्ति क्षेत्र है, मछली प्रेमी। इसलिए बालचंद साफ कहता है कि महंथ बैरागी किसके–किसके गले में कंठी बाँधते फिरेंगे। **(वही, पृ. 100)** बालचंद पत्नी का गौना कराके लाया है, संकोच में है, गाँव के मुहाने पर दिसा–फराकत के बहाने रूपक जाता है। चुन्नी मुस्कुराकर नजर मारता है–'खग ही जानै खग की भाषा।' **(वही, पृ. 28)** बहू की प्रतीक्षा में– बालचंद की माँ को पिछली दो रातों में नींद ही नहीं आई है। पलकों पर पनसेरी पड़ी है मानो। **(वही, पृ. 130)** 1934 में भूकंप आया, जान–माल की क्षति हुई। रिलीफ फंड से बल्ली बाबू और दास जी रुपए बाँटते हैं। मोसम्मा कुन्ती बालचंद से कहती है–'यह लोग जुलुम करते हैं बेटा, देते हैं दो और कागज पर चढ़ाते हैं दस! ईमान–धरम इनका सब डूब गया, तेल जरे तेली का और फटे मशालची का।' **(वही, पृ. 139)** लोगों ने अकासी आमदनी समझकर दसतखत कर दिया, अँगूठे की छाप दे दी।

'तीसरी कसम' में बीस बैलगाड़ियों का काफिला चोरबाजारी का माल ढोता है। पुलिस पकड़ लेती है। हिरामन ने पहले ही कहा था– यह बीस विषावेगा। **(हिन्दी की कालजयी कहानियाँ, पृ. 112)** हीराबाई हिरामन से साथ भोजन का आग्रह करती है– 'हिरामन का जी जुड़ा जाता है।' **(वही, पृ. 122)** ननकपुर हाट पर हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका देता है। बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़कर चालान कर देते हैं। बारहबखेड़ा। **(वही, पृ. 127)** फारबिसगंज के मेले में दिरौता संगीत नौटकी कंपनी का शो होने वाला है। एक लटपटिया सोने का उपक्रम करता है और कहता है– हिरिया जब स्टेज पर उतरे, हमको जगा देना। यह सुनकर हिरामन के कलेजे में आँच लगती है। **(वही, पृ. 135)** कहानी के अंत में टीशन पर हीराबाई की बिदा बेला। हीराबाई गाड़ी में बैठकर भी हिरामन की ओर देख रही है, टुकुर–टुकुर। लालमोटर पीछे–पीछे लगा है, उसे हरदम हिस्सेदारी सूझती है। उसे देखकर हिरामन का जी जल उठता है। **(वही, पृ. 139)**

'मखान पोखर' में दुलरिया की दोनों भौजाइयाँ फाँड़ा बाँधे लड़ने को तैयार रहती हैं। **(मखान पोखर, पृ. 63)** दुलरिया भी छाती पर समाठ से धान कूटने आई है। **(वही, पृ. 64)** वह शहरी पढुआ लड़की की तरह पिंगल पढ़ती है। बाप का नाम लत्ती-फत्ती बेटी का नाम दुर्गावती। **(वही, पृ. 65)** दुलरिया मुँहफट है। ऊँची जात की स्त्रियों की दुर्दशा से वह परिचित है। इसलिए कहती है-मरद एक पैसा मोजर न दे, कनियाँ करे सोलह सिंगार। **(वही, पृ. 66)** दुलरिया चुमौना के पक्ष में नहीं है। भौजाइयों से साफ-साफ कहती है-'भले मन से रहने दो, नहीं तो अचरा के खूट में बाँध लो कि दुलरिया किसी के घर जाकर बैठने वाली नहीं है।' **(वही, पृ. 69)** अपना चक बनाने के लिए रामचन्द्र सिंह की नजर दुलरिया के डेढ़ बीघा जमीन पर है। वे केवाला के लिए उकसाते हैं। लगे हाथ सीख देते हैं-'जमीन-जोरू जोर की, नहीं तो किसी और की।' **(वही, पृ. 71)** पर मर्दानी दुलरिया मानने वाली कहाँ है। उसे सवर्ण विधवा सखी रुक्मिणी के प्रति सहानुभूति है। परिजनों ने उसे ढ़िबरी की बाती की तरह जलाया है। **(वही, पृ. 77)**

मैथिली गीतों की आमद :- इन तीनों रचनाओं में मैथिली गीतों की खूब आमद हुई है। ये इतने सहज-सरल और प्रसंगानुकूल हैं कि गैर मैथिली भाषियों को भी सहजता से संप्रेष्य हो जाते हैं। 'बलचनमा' के गीत देखिए-'सखि रे मजरल आमक बाग/कुहू-कुहू चिकरए कोईलिया/झींगुर गावए फाग/...फूटि गेल ई भाग। **(बलचनमा, पृ. 127)** 'दुर्दिनमा केलक हरान' **(वही, पृ. 153)** में तो किसानों-मजदूरों की पीड़ा घनीभूत होकर व्यक्त हुई है। 'तीसरी कसम' में तो गीतों की भरमार है, फिल्मी मशालों के साथ तो वे और चटक हो गए हैं। महुआ घटवारिन का गीत गाते हुए तो हिरामन का गला रुँध जाता है-'डाइनियाँ मैयो मोरी, नोनवा चटाई काहे नाहिं मारलि' **(हिन्दी की कालजयी कहानियाँ, पृ. 125)** 'मखान पोखर' में कुल पाँच गीत पिरोए गए हैं, सर्वथा प्रसंगानुकूल एवं सहज बोधगम्य तथा हृदयद्रावक-'सजना सुरतिया नाहिं बिसरतरे की' विधवा दुलरिया बाऊ के पीछे-पीछे बिना माँ के लेरू की तरह घिसटती ससुराल से नैहर आ रही है। समा-चकेवा का गीत भी है- 'घोड़वा चढ़ल आवै धनी भैया देसवा।' **(पृ. 80)** ननद-भौजाई का सिनेह गीत भी है-'हम ना ही देबै-ननदी पैर की पैजनिया।' **(पृ. 83)**

विभूति आनन्द मैथिली में साहित्य-अकादमी से सम्मानित हो चुके हैं। हिन्दी में उनके दो कविता-संग्रह प्रकाशित हैं-'उसकी देह में धरती' और 'इस अकेली रात को'। कवि के मानस की निर्मिति खाँटी मैथिल है। कवि का मानस दूर अपने गाँव चला जाता है और महसूसता है विद्यापति के गीत-'मोरा रे अँगनमा, चनन धन गछिया/ताहि चढ़ि कुचरय काग रे।' **(उसकी देह में धरती)** कवि-मन बार-बार मिथिला और मैथिली की ओर प्रत्यावर्तित होता है जिससे भाषिक द्युति पैदा होती है और कविता एक नया भाषिक आस्वाद देती है-'बच्चे जब आँगन में/नाचते-गाते-खाते हैं-/बाल्टियों में लेकर/दूध-भात, नून-रोटी, क्यों कि/अब किसी भी आँगन में/झपट्टा मारने के लिए/कौए नहीं आते/आम की गाछी में निश्चिंत होकर सोती है बाबी/मचान पर पड़ी-पड़ी/'राम-राम' करती है-हाहि-हाहि कर/कौए को भगाना नहीं पड़ता अब।' **(उसकी देह में धरती, पृ. 55)** कभी शांति निकेतन में एक दिन कौओं की अनुपस्थिति से कविगुरु रवीन्द्रनाथ भी विचलित हुए थे और अपनी चिंता का इजहार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से किया था। पर अब तो कौए सिरे से गायब होते जा रहे हैं। यह सिर्फ पारिस्थितिकी की समस्या नहीं, गहन मानवीय संकट का भी द्योतक है। कविता मैथिली मिश्रित एक नए भाषिक स्वाद के साथ ही समकालीन भयावह यथार्थ से भी रू-ब-रू कराती है।

विभूति जी बड़ी सहजता से हिन्दी के साथ मैथिली का तुक भिड़ा देते हैं। तभी तो सोच के साथ अपसोच के भाव आते हैं। **(वही, पृ. 18)** 'भोर की धूप/ढिढिया रही थी- साफ-साफ **(वही, पृ. 30)** विभूति जी को ताजा नहीं 'टटका संगीत' चाहिए। उन्हें 'मोर का आँजुर भर धूप' प्रिय है। अहिबात की टेमी, छुतहर, ढेकी, भुकभुकाना, अन्हनरिया-इजोरिया, डेग, पलछिन जैसे खाँटी मैथिली शब्दों के प्रयोग काव्यभाषा को नई द्युति प्रदान करते हैं, अभिव्यक्ति को सघनता प्रदान करते हैं। 'राम को प्रणाम करो' कविता में विभूति जी लड़कियों को नसीहत देते हैं-'तुम ऐसा कुछ नहीं करो कि वंश की नाक कटे/धरती हो तुम, सर्वसहा बनी रहो/अपने नीचे अंधकार को समेटो/'अहिबात' की टेमी की तरह जलती रहो कि तुम लड़की हो।' **(वही, पृ. 57)** कवि की इस नसीहत में व्यंग्य के साथ ही मिथिला की युवतियों की दीनता-दासता सघन रूप में व्यक्त हुई है।

विश्व विद्यालय हिन्दी, विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वनविद्यालय,
कामेश्वरर नगर, दरभंगा-846008(बिहार)
मो.-957238608

हिंदी के महासागर में छत्तीसगढ़ी का अनुष्ठान

– सुधीर शर्मा

छत्तीसगढ़ी भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में बोली जाने वाली भाषा है। यह हिन्दी के अत्यन्त निकट है और इसकी लिपि देवनागरी है। छत्तीसगढ़ी का अपना समृद्ध साहित्य व व्याकरण है।

छत्तीसगढ़ी दो करोड़ लोगों की मातृभाषा है। यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है और छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख भाषा है। राज्य की 82.56 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में केवल 17 प्रतिशत लोग रहते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि छत्तीसगढ़ का अधिकतर जीवन छत्तीसगढ़ी के सहारे गतिमान है। यह अलग बात है कि गिने-चुने शहरों के कार्य-व्यापार देश की राजभाषा हिन्दी व अन्य राज्यों की राजभाषा उर्दू, पंजाबी, उड़िया, मराठी, गुजराती, बाँग्ला, तेलुगु, सिन्धी आदि भाषा में एवं आदिवासी क्षेत्रों में हलबी, भतरी, मुरिया, माडिया, पहाड़ी कोरवा, उराँव आदि बोलियों के सहारे ही संपर्क होता है। इस सबके बावजूद छत्तीसगढ़ी ही ऐसी भाषा है जो समूचे राज्य में बोली, व समझी जाती है। एक-दूसरे के दिल को छू लेने वाली यह छत्तीसगढ़ी एक तरह से छत्तीसगढ़ राज्य की संपर्क भाषा है। वस्तुत: छत्तीसगढ़ राज्य के नामकरण के पीछे उसकी भाषिक विशेषता भी है। डॉ. रमेश चन्द्र महरोत्रा लिखते हैं कि पूर्वी और पश्चिमी हिंदी की बोलियों में अन्य बोलियों की अपेक्षा बोधगम्यता ज्यादा है।

हिंदी भाषा की बोलियाँ गहराई से एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। शब्द, ध्वनि और व्याकरण के स्तर पर हिंदी की विकास यात्रा की सहभागी हैं। अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी एक ही वर्ग की बोलियाँ हैं, इसलिए इनमें साम्य है। अवधी और छत्तीसगढ़ी के अनेक शब्द रामचरित मानस के माध्यम से हिंदी में लोकप्रिय हुए हैं। अंजोरी, चटकन, चिन्हारी, कारी आदि छत्तीसगढ़ी के ठेठ शब्द हिंदी में लोकप्रिय हैं। छत्तीसगढ़ी के लोक साहित्य ने हिंदी के शब्द भंडार को समृद्ध किया है। लोक मंचों के माध्यम से लोक नाटकों, लोक नृत्यों और लोकगाथाओं की प्रस्तुति ने छत्तीसगढ़ी के अनेक शब्दों को दुनिया भर में लोकप्रिय कर दिया है। हबीब तनवीर जब चरणदास चोर लोक नाटक को लेकर दुनिया की सैर पर निकले तो उसके साथ छत्तीसगढ़ी संस्कृति के अनेक शब्दों ने विश्व की यात्रा की। इस नाटक में छत्तीसगढ़ी का लोकप्रिय पंथी गीत भी था। इसमें बाबा गुरु घासीदास के संदेश मनखे मनखे मनखे एक बरोबर ने दुनिया को ग्लोबलाइजेशन का नया संदेश दिया। मनखे शब्द की हिंदी में एक पहचान बनी। हबीब तनवीर के अनेक नाटकों के शीर्षक छत्तीसगढ़ी में थे।

इनमें मेचका हांसिस गा भी था। मेढक से मेचका की लोक यात्रा हिंदी को लोक का शृंगार देती है। चोला माटी के हे राम, ऐखर का भरोसा चोला माटी के राम जैसा लोकगीत हिंदी का लोकगीत हो गया। कालांतर में हिंदी फिल्म पीपली लाइव में इसका उपयोग हुआ। ऐसा ही एक उदाहरण दिल्ली 6 के एक गाने का है जो मूलत: छत्तीसगढ़ी का लोकगीत है। यह गीत है सास गारी देथे। छत्तीसगढ़ी के लोक शब्दों का हिंदी में प्रचलित होना एक सांस्कृतिक प्रभाव है। जब अंतरराष्ट्रीय लोक गायिका तीजन बाई पंडवानी लेकर देश दुनिया में जाती है तब पांडवों की वाणी की यह गाथा छत्तीसगढ़ी के उच्चारण सुलभता के प्रभाव से पंडवानी में बदल जाती है। आज पंडवानी और पंथी शब्द आज हिंदी में अत्यंत लोकप्रिय हैं। तीजनबाई के अलावा पंथी के देवदास बंजारे, भरथरी के झाड़ू राम देवांगन और सुरुजबाई खांडे जैसे कलाकारों ने छत्तीसगढ़ी के अनेक शब्दों को

छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

हिंदी के सांस्कृतिक कोश में जगह दिलाई है। ऐसा ही बस्तर के कलाकारों ने भी उल्लेखनीय कार्य किया है।

आज माड़िया, अबूझमाड़िया, गौर नृत्य, करमा जैसे शब्द भी हिंदी में समा गए हैं। शिल्प कला के माध्यम से घड़वा शिल्प, झारा शिल्प भी प्रचलित हैं। छत्तीसगढ़ की आंचलिकता को हिंदी साहित्य में लोकप्रिय करने में साहित्य की भी बड़ी भूमिका है। हिंदी साहित्य के प्रत्येक युग में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों की भूमिका रही है। पं. माधवराव सप्रे, ठाकुर जगमोहन सिंह, जगन्नाथ प्रसाद भानु, मुकुटधर पांडेय और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जैसे प्रारंभिक साहित्यकारों ने कहानी, उपन्यास, निबंध और कविता के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ी की आंचलिकता को साहित्य में जगह दी।

छत्तीसगढ़ के जनजीवन पर आधारित उपन्यासों ने छत्तीसगढ़ी शब्दों को लोकप्रिय कर दिया। राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास सूरज किरण की छाँव में और जंगल के फूल, हरिप्रसाद अवधिया का धान का देश में, मनहर चौहान का हिरन साँवरी, विमल मित्र का सुरसुतिया, मेहरून्निसा परवेज़ का कोरजा, शानी का काला जल, परदेशी राम वर्मा का प्रस्थान जैसे पचासों उपन्यास शामिल हैं। इन उपन्यासों में न केवल छत्तीसगढ़ी के आंचलिक शब्द और मुहावरे अपितु लंबे-लंबे वाक्य और प्रसंग उपयोग में आज हैं। हिंदी कविता में छत्तीसगढ़ी शब्दों को कवि विनोदकुमार शुक्ल ने अत्यंत गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी कविता बिलासपुर-रायपुर इसका एक सुंदर उदाहरण है। परदेशी राम वर्मा ने हिंदी कहानियों में छत्तीसगढ़ के पात्रों और प्रसंगों को यथावत प्रस्तुत कर सैकड़ों शब्दों को हिंदी में प्रस्तुत कर दिया। थपरा, फोकट, ठलहा, लपरहा, मिबलबरा, भोकवा, आदि शब्द उदाहरण स्वरूप हैं। हिंदी साहित्य में छत्तीसगढ़ी शब्दों के अनेक रूप दिखाई देते हैं, यथा-पाँच कौड़ी, आठ डौकी, अंधरा, दाई-ददा, गाड़ा-गाड़ा, आदि। मीडिया में छत्तीसगढ़ी प्रसारणों और स्तंभों के नाम हिंदी में लोकप्रिय हो गये। मड़ई, पहट, गुरतुर गोठ, चौपाल, आप मन के गीत, आदि।

आज इंटरनेट पर छत्तीसगढ़ी का तेजी से फैलाव हो रहा है। अनेक वेबसाइट के नाम छत्तीसगढ़ी में हैं और ये हिंदी जगत में लोकप्रिय हैं। इस तरह ज्ञात होता है कि छत्तीसगढ़ी ने हिंदी की अन्य बोलियों की तरह हिंदी के विकास और उसके शब्द भंडार को समृद्ध करने में योगदान दिया है। हिंदी में छत्तीसगढ़ी शब्दों के जाने के लिए रास्ता संस्कृति के माध्यम से बना है। छत्तीसगढ़ी में गजब की संप्रेषणीयता है। छत्तीसगढ़ी सबले बढ़िया शब्द पूरे भारत में लोकप्रिय है। छत्तीसगढ़ी की बढ़ती प्रयोजनीयता भविष्य में हिंदी को लोक तथा आदिवासी बोलियों के शब्दों के माध्यम से निरंतर समृद्ध करेगी।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
भिलाई-490001 (छत्तीसगढ़)

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है - महात्मा गाँधी

हिंदी और लोकभाषा हरियाणवी

– बाबूराम

किसी भी राष्ट्र की अस्मिता की पहचान उसकी राष्ट्रभाषा से होती है। भाषा संस्कृति से प्रभावित होती है और संस्कृति, दर्शन और साहित्य को प्रभावित करती है। हिन्दी भी इसका अपवाद नहीं है। प्राचीनकाल में संस्कृत भाषा विश्व में अपनी पताका लहराती रही, आधुनिक काल में हिन्दी उसकी प्रतिनिधि है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी की लोकप्रियता और राष्ट्रीय एकता की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

हरियाणवी उद्भव और विकास :- भारत में भाषाओं के उद्भव और विकास की एक प्राचीन परम्परा रही है। हरियाणा प्रदेश भारत का अभिन्न अंग होने के कारण केवल अपवाद नहीं है। वह भी प्राचीन भारतीय भाषाई अविच्छिन्न धारा का एक भूभाग है। हरियाणवी के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालने से पूर्व उसकी पूर्ववर्ती भाषाओं का नामोल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है। भाषाओं के ऐतिहासिक विकास क्रम पर यदि चर्चा की जाए, तो सर्वप्रथम वैदिक भाषा थी। तत्पश्चात् संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। उत्तर भारत की समस्त मध्यकालीन और आधुनिककालीन भाषाएँ आर्य परिवार की हैं। इनका विकास विभिन्न अपभ्रंश भाषाओं से हुआ। जैसे मागधी, अर्द्धमागधी और शौरसेनी। पश्चिमी हिंदी हरियाणवी का मूल स्रोत शौरसेनी अपभ्रंश है।

हरियाणा प्रदेश के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के लिए हरियाणवी का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने हरियाणवी को भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है और विभिन्न विद्वानों ने हरियाणवी के नामकरण के सम्बंध में अपने-अपने मत इस प्रकार व्यक्त किए हैं। डॉ. हरदेव बाहरी का मत है कि खड़ी बोली के अनेक नाम बताए जा सकते हैं- हिन्दुस्तानी, नागरी, सरहदी और कौरवी परन्तु खड़ी बोली नाम इस समय अधिक प्रचलित है। सामान्यत: उत्तरी भारत की बोली को बोलचाल की भाषा में खड़ी बोली कहते हैं। अत: क्षेत्र विशेष की बोली के लिए हमें कौरवी नाम पसंद है।

डॉ. नानकचन्द शर्मा के अनुसार हरियाणवी पश्चिमी हिंदी की प्रमुख उपभाषा मानी जाती है। आज तक इसे सामान्यत: बांगरू या बांगडू के नाम से अभिहित किया जाता रहा है। **(1. डॉ. नानक चन्द शर्मा, हरियाणवी भाषा का उदगम और विकास, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, होशियारपुर , पंजाब, पृ. 1)**

डॉ. पूर्णचन्द के अनुसार समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने हरियाणवी को बांगरू, कौरवी, दक्षिणी हिंदी, जाटू और खड़ी बोली आदि प्रमुख माना है। **(2. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणवी और उसी बोलियों का अध्ययन, पृ. 1)**

डॉ. रामकुमार भारद्वाज ने उपर्युक्त विद्वानों के मतों का समर्थन करते हुए कहा है- भाषा वैज्ञानिकों तथा समीक्षकों ने हरियाणवी के संदर्भ में हरियाणवी, बांगरू, बांगडू, जाटू, कौरवी, बागड़ी, सरहदी आदि अनेक नामों का उल्लेख किया है। **(3. डॉ. रामकुमार भारद्वाज, आध्यात्मिक और हरियाणवी संस्कृति बोध, चिन्ता प्रकाशन, पिलानी (राजस्थान) प्रथम संस्करण, 1981, पृ. 32)**

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इसे पश्चिमी हिंदी की वह बोली माना है, जो पंजाब के दक्षिण-पश्चिम भाग में करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा, जींद एवं इसके आस-पास और दिल्ली के कुछ भूभाग में बोली जाती है। डॉ. जगदेव सिंह ने इसे बांगरू कहकर इसका संरचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने हरियाणवी की प्रस्तावित लिपि की वर्णमाला प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। **(4. वही, पृ. 32)**

डॉ. ग्रियर्सन के मत को अस्वीकृत हुए स्थाणु दत्त शास्त्री का मत है- यह नाम हमें उचित नहीं लगता। स्वयं बांगरू शब्द इस बात की घोषणा कर रहा है कि यह केवल 'बांगर' प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा है। अत: बांगरू और हरियाणवी एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं है। **(5. स्थाणुदत्त शास्त्री, भाषा तथा उपभाषाएँ, हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 164)** बांगरू तो हरियाणवी की एक बोली है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इसे कौरवी नाम दिया है। **(6. डॉ. कृष्ण**

हरियाणवी भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

चन्द्र शर्मा, कौरवी और राष्ट्रभाषा हिन्दी, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 477-78) डॉ. उत्तरा गुप्ता ने कौरवी बोली को मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली जन बोली माना है। (7. डॉ. उत्तरा गुप्ता, कौरवी बोली, निकास और विकास, हरिगन्धा, मई-जून, 2001, पृ. 45)

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि कौरवी को ही आजकल खड़ी बोली कहा जाता है। (8. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणवी और उसकी बोलियों का अध्ययन, पृ. 97)

हिंदी साहित्य के वृहद इतिहास में कौरवी के विषय में कहा गया है- कौरवी भाषा उत्तर में में सिरमौरी गढ़वाली, पूर्व में पांचाली, दक्षिण में कन्नौजी तथा ब्रज व पश्चिम में मारवाड़ी और पंजाबी हैं। (9. सम्पा., महापंडित राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास,षोडश भाग, हिन्दी का लोकसाहित्य कौरवी भाषा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत-2027, पृ. 487)

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि यह पश्चिमी रुहेलखण्ड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला जिले की बोली है। खड़ी बोली रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, पटियाला रियासत के पूर्वी भाग में बोली जाती है। वस्तुत: अधिकांश विद्वानों ने कौरवी (खड़ी बोली) को हरियाणवी का पर्यायवाची माना है। खड़ी बोली का विकास कौरवी से ही हुआ है। हरियाणवी का हिंदी के विकास में अभूतपूर्व योगदान रहा है। हमारा मानना है कि हरियाणवी आज एक बोली तक सीमित नहीं है। इसका लोकसाहित्य बड़ा समृद्ध है। अब इसमें साहित्य की लगभग सभी विधाओं में रचनाएँ होने लगी हैं। हिंदी की अन्य बोलियों की तरह यह भी अपना एक स्वतंत्र स्वरूप प्राप्त कर चुकी है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह बड़ी सूक्ष्म बनती जा रही है। इसमें भाषा के सभी गुण विद्यमान हैं।

हरियाणवी का गहराई से अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका सम्बंध आधुनिककाल में भी वैदिक भाषा, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साथ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जैसे कि बीज के बिना पौधा होना संभव नहीं है। वैदिक शब्दावली के कुछ अंश हरियाणवी में खोजे जा सकते हैं। कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि वर्तमान हरियाणवी के विकास में वैदिक भापा का कुछ-न-कुछ योगदान अवश्य है। हरियाणवी के 'सौक' शब्द विकासक्रम पर दृष्टि डालें, तो इसका मूल संस्कृत शब्द 'सपत्नी' है। इस तथ्य की पुष्टि ईश्वरचन्द शर्मा ने भी की है। 'सौक' शब्द वैदिक भाषा के सपत्नी का विकृत रूप है। बोलचाल की भाषा में इसे 'सौक' कहा जाता रहा, जो हरियाणवी में आज भी प्रचलित है। हरियाणवी की शब्दावली का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें सहस्त्रों संस्कृत के तत्सम शब्द हैं। तद्भव तथा सादृश्य शब्दों की संख्या प्रचुर मात्रा में है। अत: यह कहा जा सकता है कि संस्कृत शब्दावली हरियाणवी का परिष्कृत या संस्कारित रूप भी है तथा स्वयं इससे प्रभावित भी है।

इस संदर्भ में डॉ. बलदेव सिंह का मत है-भाषाओं के सम्बंध में एक वैज्ञानिक तथ्य यह है कि वह स्थान तथा कालभेद से निरंतर बदलती रहती है। स्थानभेद न होने पर कालभेद के कारण अढाई हजार वर्ष पूर्व की संस्कृत आज हरियाणा में हरियाणवी के रूप में बोली जा रही है परंतु चार पीढ़ियों के अंतराल के कारण इन दोनों के स्वरूप में परिवर्तन होना नितान्त स्वाभाविक है। फिर भी जैसे चेतन प्राणियों में पीढ़ीगत परिवर्तनों के होते हुए भी कुछ आनुवांशिक गुण निरन्तर चलते रहते हैं, वैसे ही भाषाओं की पीढ़ियाँ भी परिवर्तित रूप में पूर्व पीढ़ियों के कुछ गुणों को अवश्य समेटे रहती हैं। लगभग जितने भी तद्भव शब्द हैं, वे संस्कृत की तत्सम शब्दावली से ही विकसित हुए हैं। हरियाणवी बोली में उनका प्रचलन ज्यों-का-त्यों है। जैसे चन्द्र-चाँद, गृह-घर, अग्नि-आग, भातृ-भाई, भगिनी-बहिन, वधु-बहू, सूर्य-सूरज। संस्कृत के बहुत से तत्सम शब्दों का प्रयोग आज भी उनके मूल रूप में होता है। संस्कृत का 'अरणि' शब्द वृक्ष के लिए तत्सम रूप में आज भी बोला जाता है। 'आर' शब्द जो बैलों को हाँकने के लिए लकड़ी की नोक (पैणी) पर लगी हुई कील के लिए प्रयुक्त होता है। संस्कृत में भी इसी रूप में प्रयुक्त होता है। गाड्डी (बैलगाड़ी) के पहियों में नाभि के चारों ओर लगे 'अरे' संस्कृत के 'अर' शब्द हरियाणवी बहुवचन है। स्त्रियों के समूह के लिए प्रयुक्त 'जनी' शब्द संस्कृत का 'जनी' ही है। वात्, पित्त और कफ शब्द भी मूल रूप से प्रयोग हो रहे हैं। हरियाणवी भाषा के उद्भव और विकास में संस्कृत के योगदान के सम्बंध में राजेन्द्र सिंह लाठर का मत है- हरियाणवी भाषा की कुल 52 ध्वनियाँ स्वीकार की गई हैं, जिनका विकास संस्कृत भाषा की ध्वनियों से है। हरियाणवी में मूलत: 800 के लगभग धातुएँ प्रयुक्त होती हैं, जिनका लगभग 80 प्रतिशत संस्कृत के योगदान से विकसित है। शिष्टभाषा के साथ-साथ लोकभाषा का भी सहअस्तित्व रहा है। इन भाषाओं के विकास का आधार भी जनसाधारण की बोलचाल में व्यवहृत होने वाली लोकभाषा ही रही है। वस्तुत: कोई भी भाषा अचानक टकसाल से निकल कर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो जाती बल्कि लोक प्रचलित जनभाषा के शब्दों को छील कर, तराश कर उन पर तथाकथित भाषा का मुलम्मा चढ़ा लिया जाता है। (10. डॉ. बाबूराम, हरियाणवी भाषा और साहित्य, पृ. 19)

आधुनिक विद्वानों का मानना है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं का उद्भव अपभ्रंश से हुआ है। हरियाणवी भी इसका अपवाद नहीं है। हरियाणवी आज भी अपभ्रंश के कुछ अवशेष अपने में समेटे हुए है।

उच्चारण की दृष्टि से हरियाणवी अब भी अपभ्रंश के निकट है। इसमें द्वित्य और ण की प्रधानता है अगर 'श' तथा 'ष' के स्थान पर केवल 'स' का प्रयोग होता है। जैसे रोटी खाज्जा, पाणी, पीज्जा, बगज्जा, वैज्जा, नहाणा, धोणा, फिरणा चलणा।

हरियाणवी की विशेषताएँ–हरियाणवी भाषा का निकटवर्ती भाषा–उपभाषाओं से शैली की दृष्टि से, एक भाषाई इकाई के रूप में विशेष अंतर नहीं है। स्वर एवं उच्चारण की दृष्टि से यह इन पड़ोसी और निकटवर्ती बोलियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्न है। अत: इसकी यह अपनी पहचान है। यद्यपि हरियाणवी बोलियों का भी स्वर एवं उच्चारण की दृष्टि से भिन्न रूप है तथापि एक भाषाई इकाई के रूप में इसकी सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. शब्द का आरम्भिक 'अकार' सदैव खिंचा हुआ हो जाता है अर्थात् उच्चारण खुला, मन्द एवं रुक्ष–सा होता है। यथा–अच्छा–'आच्छा', कल 'काल', चलना चालना, नहीं–नाहीं आदि।

2. हरियाणवी के स्वरों का उच्चारण विवृत्त एवं अपेक्षाकृत विलंबित है। इसके 'आ', 'ई', 'ऊ', 'ए' और 'ओ' में प्रत्येक स्वर के ह्रस्व और दीर्घ दो–दो उच्चारण हैं, क्योंकि इस भाषा में दीर्घ स्वरों को ह्रस्व करने की तथा साथ ही ह्रस्वीकृत स्वर से अगले व्यंजन को द्वित्व करने की प्राकृत भाषाओं वाली प्रवृत्ति आज भी ज्यों–की–त्यों विद्यमान है। यथा–

दीर्घ स्वर–आल़ा, जाल़ा, ताल़ा, मूल़ी आदि।

ह्रस्वीकृत दीर्घ स्वर–ऑद्दर, चॉद्दर, कीक्कर, ढीक्कर, टीक्कड़ आदि।

3. उच्चारण के दृष्टिकोण से हरियाणवी की तीसरी विशेषता, तालव्यीकरण की प्रवृत्ति, जो केंद्रीय हरियाणवी को बांगरू उपभाषा से पृथक करती है। भाषा को लिपिबद्ध करते हुए इसे सामान्यत: 'य' द्वारा ही प्रकट किया गया है।

यथा–चारढच्यार, शानढस्यान, शाहीढस्याही आदि। शब्द के हरियाणवी उच्चारण में ऐसा प्रतीत होता है मानो तालव्यीकरण की यह प्रवृत्ति क्षति की पूर्ति सी कर रही है।

4. हरियाणवी भाषा में संस्कृत तथा प्राकृत के शब्दों का प्रयोग बहुत होता है।

यथा–अरणि, आर, जनी, नाड़ि (संस्कृत), काड्ढै (निकालना), तावै (घी गर्म करना) आदि (प्राकृत)

5. हरियाणवी में 'हकार' ध्वनि की बहुलता है। इसके लगभग सभी स्वरों का और स्यीकरण हो जाता है। यथा–सॉहसी, बॉह्, ग्यारहवीं आदि।

6. हरियाणवी में मूर्धन्य वर्णों का बाहुल्य है। इनमें भी 'णकार' हरियाणवी की पुरानी और इतनी प्रिय ध्वनि है कि इसने विदेशी 'नकार' को भी 'णकार' में बदल कर ही ग्रहण किया है। यथा–टेस्सण, लालटण, बटण, दाम्मण, फोरण, हाण।

7. मूर्धन्य की उपर्युक्त स्थिति 'ल' पर भी लागू होती है। इसका मूर्धन्य रूप 'ल' बन जाता है।

8. संस्कृत के कारणों अथवा विभक्तियों की स्थिरता प्राकृत काल में ही समाप्त हो चुकी थी। इससे प्रतीत होता है कि साधारण लोगों को भाषा सरलीकरण की ओर अग्रसर हो चुकी थी। यथा–नाई काढ़ – नाई का लड़का, नाई कीढ़–नाई की लड़की।

9. हरियाणवी में एक ही समय में एक से अधिक कारक चिह्नों का प्रयोग भी होता है। यथा–टांड् पै तै जैल़ी र्ता ल्या।

10. पूर्वकालिक क्रिया के अन्त में 'नै' परसर्ग का निरर्थक प्रयोग पाया जाता है। यथा– खा के नै सो जा अर् मार् कै नै भाज् जा।

11. हरियाणवी में अपादान को व्यक्त करने के लिए 'से' के स्थान पर 'ते' का प्रयोग मिलता है। यथा मेरे से झमेरे धोरे ते लिया आदि।

12. हिन्दी संबंध सूचक विभक्ति 'उसके पास' के स्थान में पुल्लिंग संबंध सूचक विभक्ति लगाई जाती है। यथा– क्या तुमको मेरा बुल्द देख्या है? झम्मे इस पाल़ी के देख्या अर्थात् मैंने इस ग्वाले के पास देखा।

13. कर्म कारक का चिह्न जहाँ दिशा का भाव द्योतित हो, छिप जाता है। यथा 'गाम गया', 'शहर गया' आदि।

14. संज्ञा के रूप या विकार संज्ञा के विकार प्राय: हिंदी की भाँति होता है–पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के बहुवचन के रूप 'आ' लगाने से बनते हैं। अंत में हिन्दी की भाँति 'औं' नहीं लगता। यथा–

एकवचन	बहुवचन
संबोधक–ऐ छोरे	ऐ छोरो
विकारी कारक–छोरा	छोरां
संबोधन–ऐ छोरी	ऐ छोर्यों
विकारी कारक–छोरी	छोर्यां

15. स्त्रीलिंग संज्ञाओं के कर्तृकारक। एक वचन और बहुवचन के रूप समान होते हैं। यथा –

एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारण–छोरी गई	छोरी गई

16. 'आं' लगाकर विकारी कारक बहुवचन बनाने की इस प्रक्रिया में एक अपवाद भी मिला है। यथा–'घरांजा', 'घर जाओ' में एकवचन में भी यह विकार आया है।

17. हरियाणवी में स्वरान्त एवं व्यंजनान्त, दोनों ही प्रकार की सज्ञाएँ उपलब्ध होती हैं। यथा–

स्वरान्त-आद्धा, लुगाई, ताऊ बेब्बे, पारो आदि।.

व्यंजनान्त-आक्, आँख, आग, रीछ्, गार्ज आदि।

18. हरियाणवी में सर्वनामों के संबंध में दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम कि निश्चयवाचक सर्वनाम 'यू', 'याह', 'यो', 'वोह', 'वे' के स्त्रीलिंग रूप भी क्रमश: 'या', 'वा' होते हैं। दूसरी यह कि कतिपय सर्वनाम अपने कारक चिह्नों के साथ घुलमिल गए हैं। यथा- मन्नै, मनैं, तन्नै, तनैं, उन्नैं, मतै, मत्ती, ततै, तत्ती आदि।
19. संकेतवाचक सर्वनाम, कर्ता कारक एकवचन में स्त्रीलिंग सर्वनाम का रूप अपना पृथक अस्तित्व रखता है। यथा-योह (पुल्लिंग)-याह् (स्त्रीलिंग), ओह् (पुल्लिंग), वाह (स्त्रीलिंग)।
20. हिन्दी में जहाँ सहायक क्रिया के रूप में 'है' का प्रयोग होता है, वहाँ हरियाणवी में 'सै' और 'ऐ' का प्रयोग होता है।। यथा- तों के खावै सै-तों के खावै ऐ।
21. इच्छा प्रकट करने के लिए हिन्दी में जहाँ वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग होता, वहाँ हरियाणवी में ईच्छार्थक णिजन्त रूप के साथ 'है' या 'ऐ' का प्रयोग होता है। यथा-मैं बी खाऊँ है-ऐ (मैं भी खाता), मैं बी कपड़े धोऊँ है-ऐ (मैं भी कपड़े धोता)।
22. हरियाणवी में सामान्यतरू कर्मवाच्य का प्रयोग नहीं होता। यथा-हवा द्वारा वृक्ष गिराया गयाझ हवा नै वृक्ष गिराया।
23. हरियाणवी भाषा में श, ष और स का उच्चारण भिन्न-भिन्न न होकर प्राय: दन्त्य 'स' के रूप में किया जाता है। **(11. वही, पृ. 8)**

हिन्दी तथा लोकभाषा हरियाणवी-यह सर्वविदित तथ्य है कि दिल्ली के आस-पास की स्थानीय बोलियों ने हमेशा ही तत्कालीन भाषाओं को समय-समय पर प्रभावित किया है, क्योंकि दिल्ली राजनीति का केन्द्र रही है। दिल्ली के आस-पास का क्षेत्र हरियाणवी का क्षेत्र है, यह बात अलग है कि उसे समय-समय पर अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। बहुत पहले से दिल्ली के आस-पास की बोलियों के लिए हिन्दुई, हिन्दवी, हिन्दी आदि नामों से सम्बोधित किया है, जबकि हिन्दी का अस्तित्व तेरहवीं/चौदहवीं शती से माना जाता है। इस बात की पुष्टि डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं डॉ. राम निवास गुप्त ने भी की है-यह आश्चर्य की बात है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि किसी भी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में 'हिन्दी' शब्द नहीं मिलता है। हिन्दी शब्द का प्रयोग विदेशियों ने 'हिन्द' (भारत) शब्द के विशेषण के रूप में किया, जिसका अर्थ था हिन्द सम्बन्धी। छठी शताब्दी में नौ शेरवां के दरबारी कवि ने पंचतंत्र का अरबी में अनुवाद करते समय पंचतंत्र की भाषा को 'जबान-ए-हिन्द' नाम से अभिहित किया है। ग्यारहवीं शती के प्रसिद्ध इतिहासकार अल्बरूनी ने हिन्द की संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं को 'अल हिन्दयरू' कहा है। भारत में रहने वाले मुसलमान फारसी लेखक हिन्द की देशी भाषा के लिए 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग करते थे। श्री माताबदल जायसवाल के अनुसार तेरहवीं शती में भारत के फारसी कवियों में औफी ने सर्वप्रथम 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग हिन्द की देशी भाषा के लिए किया। **(12. सम्पा., धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्यकोश, भाग एक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, द्वितीय संस्करण-2020, पृ. 968)**

तेरहवीं/चौदहवीं शती में देशी भाषा को 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' या 'हिन्दुई' नाम देने वालों में अमीर खुसरो (1254-1325 ई.) का नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने फारसी-हिन्दी कोश 'खालिकबारी' में देशी भाषा के अर्थ में 'हिन्दवी' शब्द तीस बार और 'हिन्दी' पाँच बार प्रयुक्त किया है। अमीर खुसरो ने उक्त कोश में अपने समय की भारतीय भाषाओं को ग्यारह वर्गों में विभाजित किया है। इन वर्गों में 'अवधी' और 'देहलवी' और इसके इतराफ की जबान का तो उल्लेख किया है, किन्तु हिन्दी का कहीं उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि अमीर खुसरो के समय तक किसी विशिष्ट भाषा के लिए हिन्दी शब्द का प्रचलन नहीं हुआ था। वस्तुत: 'हिन्दवी' में उक्त दोनों ही वर्गों की बोलियाँ समाहित थी। **(13. संभावना, अंक-21 (हरियाणा में रचित सूफीकाव्य लेख), पृ. 85-87)**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य की पुष्टि इस प्रकार की है- राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमान्त तक तथा उत्तरप्रदेश के उत्तरी सीमान्त से लेकर मध्य प्रदेश के मध्य तक अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा को हम हिन्दी कहते आये हैं। इस प्रदेश में अनेक स्थानीय बोलियाँ प्रचलित हैं। सबका भाषा शास्त्रीय ढाँचा एक जैसा नहीं है। फिर भी हिन्दी साहित्य की चर्चा करने वाले सभी देशी-विदेशी विद्वान इस विस्तृत प्रदेश के साहित्यिक प्रयत्नों के लिए व्यवहृत भाषा या भाषाओं को हिन्दी कहते आए हैं। जिस विशाल भू-भाग को आज 'हिन्दी' भाषा-भाषी क्षेत्र कहा जाता है, उसका कोई एक नाम खोजना कठिन है, परन्तु इसके मुख्य भाग को पुराने जमाने से ही मध्य प्रदेश कहते रहे हैं। इस विशाल भू-भाग के अन्दर अवधी, व्रज, राजस्थानी, मैथिली, खड़ी बोली आदि (26) भाषाएँ प्रचलित रही हैं। इन सभी के लिए 'हिन्दी' शब्द व्यवहृत होता रहा है। **(14. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 20)**

यहाँ पर हिन्दी का उद्भव एवं विकास इसलिए अपेक्षित था क्योंकि सभी विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्रारम्भ में स्थानीय लोकभाषाओं के लिए 'हिन्दी', 'हिन्दुई', 'हिन्दवी' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और खुसरो के प्रसंग में जिन लोकभाषाओं का उल्लेख हुआ है, वह लोकभाषा दिल्ली के आस-पास क्षेत्र की लोकभाषा रही है और यह भी सर्वविदित है कि दिल्ली के आस-पास की लोकभाषा को विद्वानों ने खड़ी बोली कहा है तथा यह भी निर्विवाद सत्य है कि विद्वानों ने हरियाणवी भाषा को 'जाटू', 'लठमार', 'अक्खड़' खड़ी बोली आदि नामों से विभूषित किया है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि केवल उच्चारण, ध्वनि और शब्दों के द्वारा किए गए भाषा के अध्ययन की मान्यता अब खारिज हो चुकी है। यदि उच्चारण, ध्वनि और शब्दों के आधार पर अध्ययन किया जाए, तो हमें हर दो किलोमीटर पर एक नई भाषा सुनने को मिलेगी। आधुनिक युग में भाषा के अध्ययन में सांस्कृतिक एकरूपता को भी स्थान दिया जाता है। भाषा के अध्ययन में उच्चारण का इतना महत्त्व नहीं है, जितना मूल धातु और सांस्कृतिक एकरूपता का है। हमारे इस मत के समर्थन में बच्चन सिंह का कथन बिल्कुल सही है–संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से उत्तर भारत की आधुनिक आर्य भाषाओं या जातीय भाषाओं का विकास हुआ, ऐसा विश्वास किया जाता रहा है और इसके लिए सिद्धान्त भी गढ़े गए थे, किन्तु अब यह धारणा कि हिन्दी या बंगला आदि अपभ्रंश से निकली, खंडित हो चुकी हैं। जातीय भाषाओं ने संस्कृत और अपभ्रंश से बहुत कुछ लिया है। हिन्दी, जैसा कहा जा चुका है, कई बोलियों और लोकभाषाओं का समुच्चय है। इन बोलियों और लोकभाषाओं के व्याकरणिक ढाँचे अलग-अलग हैं। फिर भी शब्द समूह, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और रूपविधान के वैविध्य में भी जातीय एकसूत्रता से जुड़ी हुई है। अवधी भाषा-भाषी ब्रजी समझ लेता है और ब्रजभाषा-भाषी अवधी साहित्य। **(15. डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 5)**

प्राचीन समय में भाषा वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में उच्चारण को अधिक महत्त्व दिया है, सांस्कृतिक अवधारणा तथा भाषागत जातीय एकरूपता का ध्यान नहीं रखा गया है। यही कारण है कि एक सांस्कृतिक क्षेत्र में कई-कई लोकभाषाओं का आस्तित्व मान लिया गया है। एक ही क्षेत्र की लोकभाषाओं या बोलियों के अनेक मनघड़न्त नाम रख दिए गए हैं। दिल्ली के आस-पास की भाषा के लिए जाटू, दक्खिनी हिन्दी, कौरवी, बांगरू, खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी आदि पता नहीं क्या-क्या नाम रख दिए। यदि आधुनिक हरियाणा और यमुना के साथ-साथ लगते उत्तर प्रदेश के क्षेत्र अर्थात् प्राचीन हरियाणा के क्षेत्र में बोली जाने वाली लोकभाषा का अध्ययन आधुनिक चिंतन के अनुरूप अध्ययन किया जाए, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हरियाणवी भाषा की एक अविरल धारा प्राचीन आर्य भाषाओं से प्रवाहित है। हरियाणवी की 52 ध्वनियों का निकास संस्कृत की ध्वनियों से होना, 80 प्रतिशत मूल धातुओं का सम्बन्ध भी संस्कृत से होना तथा संस्कृत के असंख्य शब्द तत्सम व तद्भव रूप में सीधे संस्कृत से आए हैं। यह तथ्य भी निर्विवाद सत्य है कि प्राचीन हरियाणा (अम्बाला और मेरठ कमिश्नरियाँ) में सांस्कृतिक एकरूपता रखता है। यह पूरा क्षेत्र कृषि प्रधान है, यहाँ के जनमानस की आकांक्षाएँ, आस्थाएँ, तीज-त्यौहारों में समरूपता पाई जाती है। अत: इस समस्त क्षेत्र की एक ही लोकभाषा रही है, नाम चाहे उसे कुछ भी दिया जाता रहा हो। सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि खड़ी बोली दिल्ली, मेरठ के आस-पास की बोली है। अधिकतर विद्वानों का यह भी मत है कि खड़ी बोली, कौरवी तथा हरियाणवी एक ही बोली या लोकभाषा के भिन्न-भिन्न नाम हैं। हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास को देखें, तो उससे भी यही प्रमाणित होता है कि उर्दू तथा हिन्दी के मूल में भी हरियाणवी ही रही है। डॉ. सत्येन्द्र ने इस विचार की पुष्टि की है-खड़ी बोली का आरम्भ ब्रजभाषा के साथ-ही-साथ हुआ माना जाना चाहिए। हिन्दी अपने जन्म से ही ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के साथ खड़ी बोली की प्रवृत्ति के लिए आई थी। हिंदी के विकास में इतिहासों में जो हिन्दी की मूल अपभ्रंश के उदाहरण उद्धृत किए हैं, उनसे और राहुल जी द्वारा आविष्कार किए हुए सिद्धों के गीतों से यह स्पष्ट होता है कि दोनों की प्रवृत्तियाँ सहज थीं। तो ब्रज के हाथ में हाथ दिए खड़ी बोली उत्तरी, पर आरम्भ से ही उसने लचकना या झुकना न जाना था, जो उसकी आकारान्तात्मकता से स्वयं सिद्ध है।' **(16. डॉ. बाबूराम, हरियाणवी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मण साहित्य प्रकाशन, रोहतक, प्रथम संस्करण-2004, पृ. 38)**

हरियाणवी भाषा की प्रजननात्मक शक्ति का ताजा प्रमाण सब के सामने आ रहा है। दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में व्यावहारिक हिन्दी का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। हिन्दी भाषा को विद्वानों ने अपनी विद्वता के चमत्कार से इतना क्लिष्ट बना दिया है कि सामान्य पढ़ा-लिखा आदमी भी उससे दूर भागने लगा है। इसी कारण अब ऐसी व्यावहारिक हिन्दी का प्रादुर्भाव हो रहा है, जिसमें उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी तथा हरियाणवी के सरल शब्दों का समावेश हो रहा है। इस व्यावहारिक हिन्दी के विकास में भी हरियाणवी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहेगा।

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि हरियाणवी लोकभाषा का उद्भव प्राचीन आर्य भाषाओं से है। लोकभाषा हरियाणवी और हिन्दी के बीच अंतर्संबन्ध होने से आदान-प्रदान और पारस्परिक्ता के सूत्र मिलते हैं। हरियाणवी ने समय के साथ-साथ अन्य भाषाओं के आदान-प्रदान से अनेक रूप धारण किए हैं, परन्तु इसकी मूल आत्मा अभी भी शाश्वत है।

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
पूर्व अधिष्ठाता, मानविकी संकाय,
कुरुक्षेत्र-136119 (हरियाणा)
मो.-7027400041

लोक भाषा बज्जिका : शांतिप्रिय जनपद की सृजन-संवेदना

- संजय पंकज

लोकभाषा की सहज संप्रेषणीयता अपने आशय का साफ-साफ अर्थ उजागर करती है। लोक से ही संस्कारित होकर भाषा संस्कृति की मजबूत संवाहिका बनती है। लोकभाषा में रचित साहित्य का महत्व सर्वविदित है। हिंदी भाषा और साहित्य की समृद्धि तथा विकास में इसके योगदान को बार-बार रेखांकित किया गया है। विश्व विश्रुत साहित्य में लोकभाषा का अग्रणी और सर्वोपरि स्थान है। रामचरितमानस, सूरसागर जैसी कई कालजई कृतियाँ इसके प्रमाण हैं। अनेक भारतीय लोक भाषाओं में बाज्जिका भाषा का वैभव गणतंत्र की जननी वैशाली के कारण तो है ही, साथ ही भगवान महावीर, गौतम बुद्ध और आम्रपाली ने जिस भाषा में आम आदमी से बात की तथा अपने उपदेश दिए वह इसी बज्जिसंघ की भाषा बाज्जिका का आदि रूप थी। महावीर और बुद्ध ने देववाणी संस्कृत में अपने उपदेश न देकर प्राकृत और पालि में अपने उपदेश दिए। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से ही आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव माना गया है। बज्जिसंघ की भाषा बज्जिका ही वैशाली जनपद की बज्जिका के रूप में मान्य और स्वीकृत हुई। भारत में अलग-अलग क्षेत्रों की कई-कई भाषाएँ हैं। एक ही राज्य में भिन्न भाषाएँ और भिन्न बोलियाँ हैं। अनेक भाषाएँ हिंदी को समर्थित करती हुई ही हैं। विशेष रूप से उत्तर भारत की भाषाएँ जिसमें ब्रज, अवधी के साथ ही बिहार की मगही, अंगिका, भोजपुरी, मैथिली और बज्जिका भाषा महत्त्वपूर्ण हैं। बोली के रूप में इसकी प्राचीनता तो है ही, भाषा के रूप में भी यह निरंतर समृद्ध होती गई है।

डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में बज्जिका भाषा को पश्चिमी मैथिली का नाम दिया। वे इसे मैथिली का बिगड़ा हुआ रूप मानते हैं। सच भी है कि वही रूप असली बज्जिका है। सन 1941 में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने विशाल भारत और हंस में प्रकाशित अपने लेखों में इस पर विस्तार से चर्चा की है। ये लेख उनकी पुस्तक 'आज की समस्या' में संगृहीत हैं। मातृभाषा की समस्या नामक उनका लेख बज्जिका पर बहुत दूर तक चर्चा प्रस्तुत करता है। डॉ. देवनारायण शर्मा ने पालि, प्राकृत और अपभ्रंश पर गहन अध्ययन-मनन के उपरांत लिखा है-' भाषा अपने प्राकृत रूप में जनसमुदाय द्वारा उच्चरित होती है। भाषाविज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की उच्चारण-प्रक्रिया एक-दूसरे से अलग होती है। यही भिन्नता भाषा में विभेद पैदा करती है जो मात्रा और परिमाण में अधिक हो जाने पर भाषा परिवर्तन के कारण बनते हैं। यह सारी प्रक्रिया इतनी धीमी और अलक्षित रूप से चलती है कि भाषा की प्रेषणीयता तत्काल बाधित नहीं होती लेकिन आंचलिक भाषिक विभेद तो स्पष्टत या लक्षित होते ही हैं। यही कारण है कि आज से प्राय: ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर और बुद्ध ने तत्कालीन वैशाली में जिस भाषा का व्यवहार किया, वह शूरसेन और महाराष्ट्र की भाषा से किंचित भिन्न तो थी पर ऐसी नहीं थी कि क्षेत्र के निवासी इसे नहीं समझ पाते हों, किंतु समय के दीर्घ अंतराल के बाद यह विभेद स्पष्ट दिखने लगते हैं और तब उस प्राचीन भाषा को समझने के लिए विशेष आयास एवं अवधानता अपेक्षित हो जाती हैं। यही कारण है कि भगवान महावीर के समय में आद्यावधि बज्जि क्षेत्र की भाषा पर्याप्त भिन्न और नवीन हो चली है। इसी नवल भाषा का अभिधान 'बज्जिकाश् है।'

लोक संस्कृति में परंपरा चलती रहती है। कोई जरूरी नहीं कि सारी परंपराओं का लिखित साहित्य भी हो। लोक अपने ढंग से अपने जीवन को जीता हुआ आनंदित होता है। उसके आनंद में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भक्ति और अध्यात्म का भी समावेश होता है। बज्जिकांचल में भक्ति साहित्य की रचना बहुत पूर्व से कीजाती रही है। बज्रयानी सिद्धों की वाणियों के साथ यहाँ सगुण-निर्गुण और समन्वयवादी भक्ति परंपरा चलती आ रही है। राम और कृष्ण की वैष्णव उपासना के साथ ही बंगाल के प्रभाव के कारण यहाँ शक्ति उपासना भी विशेष रूप से होती रही है। जगतजननी सीता की प्राकट्य भूमि (सीतामढ़ी) होने के कारण सीता को विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है। सीता को शक्ति-स्वरूपा माना गया। अत: शक्तिपरक काव्य सृजन भी हुआ है। बौद्ध धर्म के प्रचारक एवं वैशाली के निवासी गया धर दास ने 1045 ई. में बज्जिका भाषा में

बज्जिका भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

बहुत सारे भक्ति काव्य का सृजन किया था। लोक परंपरा में उनके पद जीवित हैं। छिटपुट रूप से संगृहीत भी किए गए मगर कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए वे दूर-सुदूर की यात्राएँ करते थे। कबीर की तरह घुमक्कड़ संत कवि होने के कारण वे कविता में भी उपदेश देते थे। सगुण भक्ति की रामकाव्य धारा में रामखेलावन पंडित (1754 से 1821), बनबालि (1830 से 1856), बाबूलाल झा (1850 से 1928), तथा सुकेश्वर प्रसाद (1872 से 1963) ने राम को अपना इष्ट मानकर पर्याप्त काव्य सृजन किया है। रामखेलावन पंडित का पद –

'राम भजु राम भजु मान लीउ बात
सियाजी के नाँव के देखू करामात।
कहे कवि रामखेलावन कर जोर
राम सिया भजु मन होएत इजोर।'

राम और सीता के नाम-गुण का बखान करता हुआ उन्हें महिमा मंडित करता है।

बज्जिका भक्ति धारा के कवि बनबालि के राम-संदर्भ के अंतर्गत रावण को मंदोदरी द्वारा समझाए जाने का प्रसंग देखना केवल भक्ति-भावना ही नहीं बल्कि विवेक-वाणी को भी देख ने और सुनने जैसा है। मंदोदरी रावण को समझाती है –

'तोहर बुद्धि भरठ हए भारी
धर काहे लयलअ पर नारी
पर नारी तअ होई दुःखदाई
लंका नगरी जरूर नसाई
राम चरन में चल जा सांई
करिहन गलती माफ गोसाईं।'

बज्जिका के प्रारंभिक दौर के सम्मानित कवियों में हलधर दास (1525 से 1626) की रचनाओं में कृष्ण भक्ति का समावेश है। वे दृष्टिहीन थे मगर वे बहु भाषाविद् और कृष्ण भक्त थे। उन्होंने 'सुदामा चरित' की रचना की। इसमें 363 छप्पय हैं। इनके पदों को सूरदास के पदों के आलोक में देखा जा सकता है। एक पद की दो पंक्तियाँ देखने योग्य हैं –

'औचक ही प्रभु सपने में टेरि
सुनाओ बेनु
जागु-जागु रे हलधर, चन्दचूर पद
रेनु।'

सुदामाचरित एक विशिष्ट काव्यकृति है। तुलसीदास के रामचरित मानस की तरह यह बज्जिकांचल में काफी लोकप्रिय हुई है। हलधर दास सूरदास और नंददास के समकालीन कवि हैं। कृष्ण भक्ति में ही रमकर काव्य सृजन करने वाले कवियों में बाबूलाल झा (1850 से 1928) महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी कृतियाँ 'गोपी विवाह', 'मधुगीत', 'कदंबतरु'' और 'महारास' नाम से है। इनके दोहे बड़े ही भाव के साथ गाए जाते हैं –

'राधा ललिता ससि कला, आउर बहुत ब्रजवाल!
प्रभु के लीला पर मगन, भेलन बाबूलाल!'

कवि सुकेसर प्रसाद (1872 से 1963) ने अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में 'रामभक्ति' काव्य की रचना की और बाद में सखी भाव से प्रेरित होकर राधादेवी होने के बाद उन्होंने कृष्णभक्ति की मर्मस्पर्शी रचनाएँ कीं। उन्होंने महारास में सम्मिलित होने के लिए जाती हुई शृंगारों से सुसज्जित गोपिकाओं का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है –

'रास के आल करो बृज नारी,
भूसन अंग अंग सम्हारत जाए!
चलु सखि महारास के बेला
काहे तुम सब देर लगाए!'

इस पद में संभ्रांत परिवार की स्त्रियों के उपयोग में आने वाले कई आभूषणों का चित्र बड़ी खूबसूरती से खींचा गया है। राम और कृष्ण भक्ति के साथ ही उस दौर में कवियों ने हनुमान, शिव आदि पर केंद्रित भजनों का भी भरपूर सृजन किया है। संत कवि श्री मुरलीधर तिवारी (1857 से 1936) ने भी अपनी भक्तिपरक रचनाओं से बज्जिका को समृद्ध किया है। बज्जिकांचल के अनेक संत कवियों में 17 वीं सदी में जनमे मलूकदास जी एवं मगनीराम के नाम अग्रगण्य हैं। संत कवि मगनीराम के नाम बड़े आदर के साथ लिए जाते हैं। वे सिद्ध संत माने जाते हैं।

हिंदी के विशिष्ट शैलीकार श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, नाटककार रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव', डॉ सुरेंद्रनाथ दीक्षित, नवगीत प्रवर्तक राजेंद्र प्रसाद सिंह जैसे हिंदी के कई समर्थ रचनाकारों ने इस अंचल के होने के कारण अपने साहित्य में बज्जिका के शब्दों, मुहावरों और संवादों का भरपूर प्रयोग किया है। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने 'अंबपाली' नाटक में बज्जिका भाषा में गीत लिखा है। इस गीत से बज्जिका की लोकसंस्कृति और जन चेतना को समझना बड़ा सरल और आसान हो गया है। राजेंद्रप्रसाद सिंह ने बाज्जिका की शब्दावलियों को लेकर जन-चेतना को उद्बोधित करनेवाले अनेक गीतों का सृजन किया है। ऐसे और कई हिंदी के यशस्वी लेखक हैं जिन्होंने बज्जिका लोकोक्तियाँ, मुहावरों, शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग करके अपने लेखन को अर्थ व्यापक किया है। जाने माने कवि, गीतकार, चिंतक और उपन्यासकार डॉ. महेंद्र मधुकर का 'ब्रह्मबाबा की गाछी' उपन्यास केवल आंचलिक उपन्यास ही नहीं है; बल्कि बज्जिकांचल की लोक संस्कृति, परंपरा,

निष्ठा और बज्जिका भाषा के सामर्थ्य तथा विस्तार का जीवंत दस्तावेज है। बज्जिकालोक भाषा से आलोकित ऐसी और भी कई कृतियाँ हैं जिनसे हिंदी भाषा को संपन्नता मिलती है।

बिहार के विभिन्न विश्वविद्यालयों में बज्जिका साहित्य पर कई शोध कार्य किए गए हैं। आज भी कई पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है, जिसमें –समाद, बज्जिका, बज्जइभआरतई, बज्जिका केसरी, बज्जिका माधुरी, बज्जिका वैभव, बज्जिका लोक, खोईंछा, सनेस महत्त्वपूर्ण और अग्रणी हैं। इन पत्रिकाओं के माध्यम से बज्जिका भाषा को समृद्ध करने तथा साहित्य रचने वाली कई पीढ़ियों की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ प्रस्तुत होती हैं। बज्जिकांचल का क्षेत्र बड़ा है और बज्जिका भाषा–भाषी संसार के कई देशों में फैले हुए हैं इसलिए इसके साहित्य का प्रसार भी खूब हो रहा है। बज्जिका भाषा और साहित्य को लेकर कई अखिल भारतीय आयोजन हो चुके हैं। दूरदर्शन और रेडियो के कई केंद्रों से बज्जिका साहित्य का प्रसारण होता रहता है। अब तो कई हिंदी की पत्र–पत्रिकाएँ भी लोक भाषा में रचित साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाओं का प्रकाशन कर रही हैं। ऐसी पत्रिकाओं में बज्जिका साहित्य को सम्मान के साथ स्थान दिया जाता है। लोकप्रिय अखबार दैनिक हिंदुस्तान में डॉ. संजय पंकज ने कई वर्षों तक मुकुंद नाम से 'कल्याणीचौमुहानी' स्तंभ के अंतर्गत बज्जिका भाषा में लोकोक्ति और मुहावरों को केंद्र में रखकर साप्ताहिक लेखन किया। इसमें कथा और विचार को बज्जिका लोकभाषा की मिठास में जिस तरह से प्रस्तुत किया गया उसे चाहने वाले तथा प्रशंसित करने वाले असंख्य हिंदी भाषा भाषी थे। यथासंदर्भ उसे हिंदी के लेखनों में भी उद्धृत किया गया। इस लेखन का बड़ा विस्तार हुआ। इसकी व्यापकचर्चा हुई। लोगों में इस स्तंभ को लेकर जागरूकता और प्रतीक्षा बनी रहती थी। अब तो इस क्षेत्र में राजनेता भी चुनावी अभियान में अपनी मातृभाषा बज्जिका में ही संवाद करते हैं और जनता का ध्यान आकृष्ट करते हैं। देश के वर्तमान यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जब भी बज्जिकांचल में आए हैं तो उन्होंने अपना प्रारंभिक संबोधन बज्जिका भाषा में ही दिया है।

कवि–कुल गौरव विद्यापति ने लिखा है–'देसिल बयना सब जन मिट्ठा।' लोकभाषा में लिखे गए साहित्य और किए गए संवाद का अपना महत्व और आकर्षण होता है। भोजपुरी और मैथिली भाषा तथा साहित्य का विकास भारत सरकार की आठवीं अनुसूची में आ जाने के कारण तीव्रता के साथ हुआ। बज्जिका भाषा को यह मान्यता न मिलने के कारण इसकी व्यापकता का संघर्ष आज भी बना हुआ है जबकि इसका राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय फलक पर पर्याप्त सम्मान है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखने पर कबीरदास के अनेक पद बज्जिका के पदों की तरह लगते हैं। वे घुमक्कड़ साधु थे। स्वाभाविक रूप से उनकी रचनाओं में बज्जिका शब्दों का समावेश होता चला गया। कहने के अंदाज में भी बज्जिका भाषा आ गई है। ऐसे और भी कई महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं जिनमें खाँटी बज्जिका के शब्दों को देखा जा सकता है। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, फणीश्वरनाथ रेणु जैसे लेखकों के आंचलिक उपन्यासों में बज्जिका की लोकोक्तियाँ, मुहावरे तथा शब्दावलियाँ बहुत ही सुंदर ढंग से समाविष्ट हैं। कई शब्द ऐसे हैं जो अन्य कई लोक भाषाओं में भी प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों का प्रयोग अब हिंदी के बड़े लेखक भी बेहिचक, बेझिझक करते हैं। भारत की संस्कृति और समरसता उसकी भाषाई राष्ट्रीयता में भी देखने योग्य है। बज्जिका भाषा में साहित्य लिखने वाले कई लेखक हिंदी के भी श्रेष्ठ लेखकों में शुमार हैं। बज्जिका भाषा में बनी लघु फिल्म 'चंपारण मटन' ऑस्कर पुरस्कार शृंखला में प्रस्तुत होकर प्रशंसित हुई है। इसे न केवल बड़े हिंदी क्षेत्र में बल्कि अहिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र में भी देखी और सराही गई है। बज्जिका भाषा–साहित्य की एक संक्षिप्त रूपरेखा में उसकी लोकप्रियता, व्यापकता और सार्थकता को रेखांकित करना बहुत आसान नहीं है। बज्जिका साहित्य लोककथाओं और लोकगीतों के माध्यम से भी जन–संस्कृति में व्याप्त है और इसका निरंतर परिमार्जन तथा विकास हो रहा है। बज्जिका हिंदी भाषा को समृद्ध करने में सहायक और पूरक का काम कर रही है। बज्जिका साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भी उत्कर्ष पर है। डॉ. ब्रजनंदन वर्मा का यह गीत इस संदर्भ में देखने योग्य है –

'जेइ धरती के रग रग में हए
चारों वेद पुरान!
आई ओकरे भूल रहल हए
सारा हिंदुस्तान!
वीर भगत सुभाष इहाँ पर
क्रांति बीन बजएलन,
बापू पटेल आके इहाँ पर
सबके राह देखएलन,
पहिल गणतंत्र के इहे जननी
गाबे सब गुनगान!'

कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य का कितना व्यापक और सर्वकालिक महत्व है। भाषा व्याकरण सम्मत होकर जब परिमार्जित हो जाती है तो उसमें एक दूसरी तरह कारचाव स्वाभाविक रूप से होता है। लोक भाषा सीधे–सीधे संवाद करती है। संस्कृत में लिखी गई वाल्मीकि रामायण से ज्यादा लोक व्यापकता अवधी भाषा में विरचित रामचरितमानस को मिली है। आज तक संसार की किसी भी भाषा में राम और कृष्ण से बड़े नायक नहीं हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदास की बड़ी प्रतिभा या लोकभाषा अवधी की महत्तम और श्रेष्ठतम उपलब्धि हैं लोकनायक राम, इसे स्पष्टत: नहीं कहा जा सकता है मगर जन–जन और कण–कण में व्याप्त राम लोकभाषा की

ही अन्यतम उपलब्धि हैं, इसे निर्विवाद स्वीकारने में कोई द्वंद्व नहीं हो सकता है। हिंदी से बज्जिका भाषा भिन्न होकर भी अभिन्न है इसे जानने-समझने के लिए इसभाषा में रचे गए गीत-संगीत और साहित्य को देखना-पढ़ना सर्वाधिक उपयुक्त और सर्वथा समीचीन होगा। अब तो कई-कई व्याकरणों और शब्द कोशों से बज्जिका भाषा संपन्न हो गई है मगर लोक प्रचलित बज्जिका आज भी अपने प्राकृत रूप में परंपरा और जमीन से जुड़ी हुई है।

हिंदी को भाव-समृद्धि से संपन्न करती डॉ. अवधेश्वर अरुण विरचित 'बाज्जिका रामाएन' नौकांडों में क्रमशः-बालकांड, बिआह कांड, अभिसेक कांड, चित्रकूट कांड, अपहरन कांड, मैत्रीकांड, अन्वेसन कांड, जुद्ध कांड, राजतिलक कांड-के रूप में संयोजित है। बज्जिका रामाएन में राम के मानवीय चरित्र को उजागर किया गया है। यद्यपि आधार कथा के रूप में वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का ही अनुसरण किया गया है लेकिन कई ऐसे प्रसंगों को इस रामाएन में नहीं लिया गया है जो लोक आस्था में स्वीकार नहीं है। प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए राम के जीवन को पुरुषार्थी और समाज के हर वर्ग के लिए आदर्श रूप में प्रस्तुत कियाहै। राम का चरित्र उदात्त और लोकोपकारक है -

'राम महात्यागी सत्ता ला कभी न कयलन लोभ
दुख से लड़लन मगर न लयलन मन में तनिको छोभ
धर्म न्याय के पथ पर चल के पयलन ऊ उत्कर्ष
भीतर बाहर के सत्रु से जीवन भर कयलन संघर्ष।'

बज्जिका रामाएन के कई संस्करण आए हैं। इस महाकाव्य पर विश्वविद्यालयों में कई शोध भी हुए हैं। बाज्जिका रामाएन तिरहुत लोक-संस्कृति की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। यह महाकाव्य केवल गणतंत्र की जननी वैशाली की मातृभाषा बज्जिका की आत्मीयता को ही नहीं सहेजे हुए है बल्कि लोकतांत्रिक आस्था और संस्कार को भी राम-सीता के प्रसंगों में उजागर करते हुए उसे सर्वजनीन स्वरूप प्रदान करता है। इस महाकाव्य में दो संस्कृतियों के महामिलन को बहुत ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। राम के माध्यम से अवध की संस्कृति सीता के रूप में कैसे बाज्जिका की संस्कृति को आत्मसात करती है यह इस महाकाव्य में देखने योग्य है। राम के जीवन-संघर्ष में उनका विश्वास और प्रेम सहज मानवीय ढंग से कैसे अटल रहता है, यह इस महाकाव्य का सबसे बड़ा पक्ष है। राम जनप्रिय और करुणानिधान हैं। उनका मानवीय चरित्र उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जहाँ से वे परमात्मा और ईश्वर के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वाल्मीकि और तुलसी की राम कथा को डॉ. अरुण ने दुहराया नहीं है। राम जिन गुणों और आचरणों से लोकनायक तथा जनप्रिय होते हैं उन्हीं सकारात्मक संदर्भों को इस महाकाव्य में संयोजित किया गया है। यह अपने आप में एक स्वतंत्र वैचारिक कृति के रूप में सर्वमान्य है। राम-महाकाव्य की परंपरा में यह डॉ. अरुण की साहित्यिक साधना की अन्यतम उपलब्धि है। जनस्वीकृति में जैसे रामचरितमानस हिंदी महाकाव्य है इसी तरह से बज्जिका रामाएन भी हिंदी की स्वीकार्यता में समादृत है।

नीतीश्वर मार्ग, आमगोला
मुजफ्फरपुर -842002(बिहार)
मो.- 6200367503

मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूँ पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं सह नहीं सकता

- आचार्य विनोबा भावे

हिंदी और लोकभाषा हिमाचली

– ओमप्रकाश सारस्वत

प्राणिसमूह जिन भी ध्वनियों से, एक-दूसरे स्वजातीय को अपना मन्तव्य प्रेषित करता है, उसका नाम भाषा है। भाषा 'भाषा व्यक्तायां वाचि' के अनुसार मानव एवं मानवेतर प्राणि समूहों की अभिव्यक्ति, व्यापार चेष्टाओं के कारण भिन्न हो सकती है। इसीलिए प्रत्येक भाषा अपने-अपने प्रयत्न में भिन्न है। विश्व की सारी भाषाएँ अपने सजातीयों की आकांक्षाओं की पूर्ति करती हैं। एक व्यापक स्तर पर व्यवहृत होने वाली, एक समाज की वाक्चेष्टा को अध्येताओं ने 'भाषा' नाम दे दिया और शेषवाणी व्यापार को, बोली अथवा लोकभाषा। एक व्यापक विश्लेषण के अनुसार प्रत्येक बोला गया शब्द अथवा वाक्य भाषारूप ही है। बोली, लोकभाषा और भाषा, अपनी-अपनी क्षेत्रीयता, सीमा/सीमाओं के कारण ही भिन्न पहचान के विषय हैं। व्यवहार में, लोकभाषा भी उतनी ही समर्थ है, जितनी कोई व्यापक मान्यता प्राप्त भाषा।

15 अप्रैल 1948 को हिमाचल एक पूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में; उपस्थित हुआ। हिमाचल में 12 जिले हैं जहाँ भी थोड़े-बहुत हेर-फेर से, अपनी-अपनी भाषाएँ हैं जिनमें काँगड़ी, चम्बचाली, किन्नौरी, सिरमौरी, बिलासपुरी, मण्डचाली, कुल्लवी, उनवी, सोलन की बघाटी, उल्लेख्य हैं। हमीरपुर, पहले काँगड़ा में ही सम्मिलित था। किन्तु हमीरपुर की चूँकि कोई अलग भाषा/बोली नहीं है, अतः हमीरपुर में बोली जाने वाली भाषा के सभी भाषा रूप अधिक काँगड़ी से तथा कुछ रूप ऊनवी/पंजाबी से प्रभावित हैं। शिमला की बोली, ऊपरी शिमला के कुछ क्षेत्रों की, अपने कुछ उच्चारण की विशिष्टता के कारण भिन्न लगती है। यूँ शिमला की भाषा अब हिन्दी ही है। वैसे शिमला की भाषा पर, इसकी भारत की राजधानी रहने के कारण अंग्रेजी का तथा पंजाब का हिस्सा होने के कारण पंजाबी का प्रभाव परिलक्षित होता है।

विश्व की सभी भाषाएँ अपने यहाँ आगत शब्दों से भी अधिक समृद्ध हुई हैं। सभी भाषा-विशेषज्ञों ने आगत शब्दावली का स्वागत किया है। शब्द अपने स्वभाव में, यात्री हैं। ये जहाँ-जहाँ से गुजरते हैं, वहाँ-वहाँ का अर्थ-संस्कार ग्रहण करते चलते हैं। अगर ऐसा नहीं होता, तो एक-एक शब्द के इतने-इतने पर्याय अथवा अर्थ नहीं होते। शब्दों की यह पर्यायवाचिता, उनकी अर्थाभिव्यक्ति एवं प्रयोगाधिक्य पर निर्भर करती है। शब्दों की अर्थपारीणता उसकी आवश्यकता और प्रयोग की बारम्बारता पर आधृत है। एक से अधिक होने की प्रतिपत्ति, ब्रह्म की प्रथम अभिलाषा की तरह है कि-एकोऽहम् बहुस्याम। ऐसे ही भाषाओं के संदर्भ में भी, मनुष्यों की कामनाएँ भी यदि प्रसार पा जाएँ तो क्या आश्चर्य? वाणी का संसार ऐसे ही समृद्ध और विस्तृत हुआ है –

'अपारे काव्यसंसारे, कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं, तथैवं परिकल्पते।।'

यहाँ हम, हिमाचल प्रदेश की बोलियों के कुछ रूपों की प्रयोग पारीणता पर विचार करते हुए उनकी दूसरी बोलियों/लोकभाषाओं/भाषाओं में यात्राओं के सम्बन्ध में भी विचार करेंगे ताकि इन बोलियों / भाषाओं के संदर्भ में कुछ जानकारी हो सके।

शब्द परिचय/प्रयोग-माहणु-यह शब्द संस्कृत के मनुः (मन्ऽ) शब्द से विकासित है। संस्कृत में यह शब्द, अपने अर्थ में, मानव का प्रतिनिधि तथा मानवजाति का प्रतिनिधि तथा हितकर्त्ता माना गया है। प्रत्येक खण्ड प्रलय के पष्चात् पहले सृष्टि पुरुष को 'मनु' कहा गया है। ये अब तक चौदह हो चुके हैं। जिनके नाम हैं-1. स्वायंभुव, 2. स्वारोचिश, 3. औत्तमि, 4. तामस, 5. रैवत, 6. चाक्षुष, 7. वैवस्वत, 8. सावर्णि, 9. दक्षसावर्णि, 10. ब्रह्मसावर्णि, 11. धर्मसावर्णि, 12. रुद्रसावर्णि, 13. रौच्यदेवेसावर्णि और 14. इन्द्रसावर्णि। एक मनु का काल, मन्वन्तर कहलाता है। सृष्टि में आज तक, छः मनुओं के काल बीत चुके हैं। इस समय हम सातवें मनु के शासन (काल) में जी रहे हैं।

हिमाचली भाषा साहित्य और संस्कृति के अध्येता

माह्णु शब्द हिमाचल थी प्राय: सभी बोलियों में प्रयुक्त होता है। यद्यपि इसका आरेखण काँगड़ी में 'माहणु', चम्बिपाली में 'मह्णु', बघाटी (सोलन) में माहणू , बघाटी में ही एक रूप यह भी है- माणू। डॉ. प्रेमलाल गौतम की कविता का एक पद्य है-

'पहाड़ी आस्से माणू सब्बो, पहाड़ी म्हारी भाषा।
प्यारो पिच्छे मरदे जिउदे प्यारो री इक आसा।।'

ऐसे ही प्रसिद्ध स्वर्गीय लोककवि जयदेव किरण की पंक्तियाँ हैं जिनमें 'माहणू' शब्द का प्रयोग है। यह भी बघाटी का गीत है जैसे-

'पत्थरो रे 'माण्हू' असे, पात्थरों री जिंदगी।
नरम, नरम कालजो।
दिलो रे दुराजे म्हारे सारी दुनिया जो खुल्ले,
लेणे वाले प्यार लई जा।। 'पाथरो रे माण्हू'।' 2

महणु-महणु बैठा तप्प लाई, दुनिया समझ नीं आई।
यहाँ एक ही शब्द 'माहणु' के तीन प्रयोग हैं। चूँकि पहाड़ी बोलियों में स्वरांकन अथवा लिपि की एकरूपता नहीं है। अत: लेखक यथारुचि/मति यति-गति-लयानुसार शब्द का निर्माण/प्रयोग कर लेता है।

हिमाचल की लोअर बेल्ट की बोलियों में, 'ष' ध्वनि आमतौर पर 'स' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। शादी की 'सादी', शेष का 'सेस', 'श्वास' का सुआस। बहुत-सी बोलियों में अन्त्य श, ष् ध्वनि का 'ह' भी हो जात है। जैसे-माष-माह। कहीं-कहीं यह (श्वास) को साह। कुछ साँस भी ले लिया करो। हिमाचली/पहाड़ी में यह शाह को साह और 'श्वास' को भी 'साह' ही/भी लिखते हैं।

गल्ल/गल्लां-पंजाब एवं पहाड़ी बोलियों में बात को गल्ल कहा जाता है। पंजाब एवं काँगड़ा में तो इस शब्द का प्रयोग बहुतायत से होता है। जैसे-सुणाओं जी, की हाल ने। कोई गल्ल-बात सुणाओ। ऐसे ही प्राय:, अन्त्य 'न' को 'ण' तो बहुत-सी भाषाओं/बोलियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

इसी तरह पहाड़ी/काँगड़ी के लोकप्रिय श्रेष्ठ कवि, डॉ. गौतम व्यथित थी ग़ज़लों/ कविताओं के कुछ प्रयोग अपनी अस्मिता में दूसरी भाषाओं में भी उपस्थित मिलते हैं। यहाँ पर कुछ शब्दों के पूर्व स्वर, 'उ' तथा 'न' को 'ण' एवं वर्ण व्यत्यय एवं श् को स् हुई, ध्वनियों के प्रयोग देखने को मिलते हैं।
पूर्व 'उ' की विलुप्ति -

'व्यथित इम मेद क्या करनी,
सुणाई नी कोई करदा।
तेरा लेखा तैं ई देणा,
नेड़ें ओआ ही थोड़ा ठहरा।।' 1

यहाँ 'उम्मीद' में 'उ' लुप्त हो गया है तथा पहाड़ी-प्रकृति की तर्ज़ पर म्मी 'र' को 'ऐ' हो गया है।

'असा ने मिलणी, असां ने बैर।
भी बी सोच्चे अपणी खैर।।' 2.

यहाँ व्यंग्य की बड़ी 'करारी चोट' छिपी हुई है -

'भुल्ला ही है पणछैण, लहुए ही यारो।
स्वारथां दी सूलिया, माह्णू टंगोया।।' 3.

इन तीनों पद्यों का संदर्भ-गास्सें हत्थ पुजाणें कियां-पुस्तक से है।
पहाड़ी काँगड़ी की एक विषेषता यह भी है कि यहाँ 'अ' का ह, भी हो जाता है। जो इस भाषा की विरल ही विशेषता है। जैसे -
हसदियाँ हाखीं ही लो -
(ओमप्रकाश सारस्वत)
यहाँ पर 'आँखों' को 'हाखीं' हो गया है।

हिमाचल की लोकभाषाओं/बोलियों में, दूसरी अन्य भाषाओं जैसे-अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा पंजाबी और डोंगरी के भी अनेकश: शब्द इन भाषाओं की समृद्धि कर रहे हैं। ये शब्द, रोजमर्रा के व्यवहार में प्रयुक्त होकर भाषाओं की शब्द सामर्थ्य को बड़ा रहे हैं। हिमाचल की भाषाओं में व्यवहृत हो रहे कुछ दूसरी अन्य प्रदेशों/भाषाओं के शब्दों का संज्ञान इस प्रकार है। जिला कुल्लू में आज भी निम्नांकित शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग होता है।

इलाका (अरबी), मशवरा (अरबी), जरूरत (अरबी), ज्हामत/हजामत (अरबी), खानदान (फारसी), कारुआई (कार्यवाही) । इसी तरह अंग्रेजी का तो दबदबा अभी भी सभी भारतीय भाषाओं पर बना ही है-जैसे-कोट-पैंट, हैट, डिनर, लंच गुड मार्निंग, गुड ईवनिंग, सिनेमा, मदर-फादर, डियर, नियर, होम-हाउस, स्कूल-टीचर, कॉलेज, प्रोफेसर, आदि अगणित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग आम होता है। ये सारे शब्द जनता के व्यावहारिक कोष की सम्पत्ति-जैसे ही हो गए हैं।

जी-6, नॉल्डवुड कॉलोनी
शिमला-171002 (हिमाचल प्रदेश)

हिंदी और लोक भाषाएँ

अतिथि संपादक

संजय द्विवेदी

भारतीय भाषाओं का अंतर-संवाद

– संजय द्विवेदी

भाषा का संबंध इतिहास, संस्कृति और परंपराओं से है। भारतीय भाषाओं में अंतर-संवाद की परंपरा बहुत पुरानी है और ऐसा सैकड़ों वर्षों से होता आ रहा है। यह उस दौर में भी हो रहा था, जब वर्तमान समय में प्रचलित भाषाएँ अपने बेहद मूल रूप में थीं। श्रीमद्भगवतगीता में समाहित श्रीकृष्ण का संदेश दुनिया के कोने-कोने में केवल अनेक भाषाओं में हुए उसके अनुवाद की बदौलत ही पहुँचा। उन दिनों अंतर-संवाद की भाषा संस्कृत थी, तो अब यह जिम्मेदारी हिंदी की है। जब हमारे पास एक भाषा होती है, तब हमें अंदाजा नहीं होता, कि उसकी ताकत क्या होती है। लेकिन जब भाषा लुप्त हो जाती है और सदियों के बाद किसी के हाथ वो चीजें चढ़ जाती हैं, तो सबकी चिंता होती है कि आखिर इसमें है क्या? ये लिपि कौन सी है, भाषा कौन सी है, सामग्री क्या है, विषय क्या है? आज कहीं पत्थरों पर कुछ लिखा हुआ मिलता है, तो सालों तक पुरातत्व विभाग उस खोज में लगा रहता है कि लिखा क्या गया है?

भारतीय भाषाओं के बीच अंतर-संवाद में रुकावट का कारण अंग्रेजी भाषा रही है। इसकी वजह हम भारतीय ही थे, जिन्होंने हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी को अंतर-संवाद का माध्यम बना लिया। हिंदी के विद्वानों, पत्रकारों और संस्थाओं को इस दिशा में कार्य करना चाहिए था, लेकिन उन्होंने यह जिम्मेदारी नहीं निभाई। जब डॉ. राम मनोहर लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान शुरू किया, तो उसका आशय 'हिंदी लाओ' कतई नहीं था, लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा प्रचारित किया गया। इससे राज्यों के मन में भ्रांति फैली। आज पूरे भारत में हिंदी का बढ़ता प्रभाव देखा जा सकता है। हिंदी एक बहुआयामी भाषा है। यह बात इसके प्रयोग क्षेत्र के विस्तार को देखते हुए भी समझी जा सकती है। अगर आप भाषा विज्ञान के नजरिए से देखें, तो हिंदी एक पूर्ण भाषा है। हिंदी की देवनागरी लिपि पूर्णत: वैज्ञानिक है। हिंदी भाषा में जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है, जिसके कारण संवाद और उसके लेखन में त्रुटियाँ न के बराबर होती हैं। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा है और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा भी है। भारत में हिंदी और इसकी बोलियाँ उत्तर एवं मध्य भारत के कई राज्यों में बोली जाती हैं। भारत के वे राज्य जहाँ हिंदी का प्रयोग अत्यंत कम रहा है, उनको हिंदीतर राज्यों की श्रेणी में रखा जाता है। हिंदीतर राज्यों से तात्पर्य भारत के उन राज्यों से है, जहाँ हिंदी भाषा उनकी मातृभाषा नहीं है, बल्कि वहाँ हिंदी या तो राजभाषा की अनिवार्यता के रूप में अथवा हिंदी भाषियों से वार्तालाप के लिए प्रयुक्त होती है। इन राज्यों के अंतर्गत केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पांडिचेरी, जम्मू कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, लक्षद्वीप और गोवा शामिल हैं। इन राज्यों में अधिकांश वे राज्य हैं, जिन्हें पूरी तरह से हिंदीतर कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि इनकी मातृभाषाएँ कहीं न कहीं हिंदी से कुछ न कुछ संबंध अवश्य रखती हैं। लेकिन दक्षिण भारत के चार राज्य केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु की मातृभाषाएँ क्रमश: मलयालम, कन्नडा, तेलुगु और तमिल भाषाएँ हैं, जो द्रविड़ परिवार की हैं। लेकिन हिंदी का सभी भारतीय भाषाओं के साथ साम्य भाव रहा है। यही कारण है कि प्रारंभ से ही सभी भारतीयों का एक समान मत रहा है कि हिंदी से ही राष्ट्रीय एकता संभव है।

इस संदर्भ में एक सुखद पहलू सामने आता है कि देश में जब से हिंदी का 'प्रयोजनमूलक' स्वरूप चलन में आया है, तब से भाषाई तौर पर हिंदी का विकास बहुत अधिक हुआ है। 'प्रयोजनमूलक' हिंदी का अर्थ विज्ञान, तकनीक, संचार एवं अन्य गतिविधियों में प्रयोग होने वाली हिंदी से है। हिंदी केवल साहित्य की भाषा न रहे, बल्कि जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रभावी रूप से इसका प्रयोग हो, इसी उद्देश्य के साथ हिंदी का ये स्वरूप सामने आया है। प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग आज भारत में बड़े पैमाने पर हो रहा है। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संवाद सेतु बनाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अब देश का हर राज्य, चाहे वो हिंदीभाषी हो

पूर्व महानिदेशक भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, प्राध्यापक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, भोपाल

अथवा हिंदीतर भाषी हो, विशुद्ध रूप से न सही, लेकिन प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग हर जगह दिखाई देता है। हिंदी का प्रयोजनमूलक स्वरूप इसके व्यावहारिक बोलचाल के प्रयोग से अलग होता है, क्योंकि किसी भी भाषा का अपने जातीय क्षेत्र से बाहर प्रयोग राजनीतिक, सांस्कृतिक या वाणिज्यिक कारणों से संभव हो पाता है। जातीय भाषा के प्रयोगकर्ताओं के अलावा बड़ी संख्या में लोग उसका प्रयोग द्वितीय भाषा या संपर्क भाषा के रूप में करने लगते हैं। अहिंदी प्रदेशों में हिंदी इसी श्रेणी में रखी जाती है। द्रविड़ भाषाई दक्षिण भारतीय क्षेत्रों में हिंदी का प्रवेश धार्मिक, व्यापारिक और राजनीतिक कारणों से उत्तर भारत के लोगों के दक्षिण में आने-जाने की परंपरा शुरू होने के साथ हुआ। विशेष रूप से चौदहवीं से अठारहवीं सदी के बीच भारत के दक्षिणी भू-भाग पर जब मुस्लिम शासकों का आधिपत्य हुआ, तो उस दौरान हिंदी भाषा का एक नया स्वरूप चलन में आया, जिसका नाम था 'दक्खिनी हिंदी'। दक्खिनी हिंदी का विकास एक जन भाषा के रूप में हुआ। इसमें उत्तर-दक्षिण की कई बोलियों के शब्द जुड़ जाने से यह आम आदमी की भाषा के रूप में प्रचलित हुई। ऐसा माना जाता है कि इन क्षेत्रों में हिंदी लोकप्रिय भी है, समझी भी जाती है और सम्मानित भी होती है। लेकिन केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में स्वतंत्रता के पूर्व, फिर स्वतंत्रता के बाद और वर्तमान तक आते-आते हिंदी की दशा और दिशा में एक उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। ऐसा कहा जाता है कि दक्षिण भारत के इन 4 राज्यों में हिंदी 'इतर' की स्थिति में है। इन अहिंदी प्रदेशों में हिंदी की संभावनाएँ न्यूनतम दिखाई देती हैं।

ये वही राज्य हैं, जहाँ शताब्दियों पूर्व केरल प्रांत में 'स्वाति तिरुनाल' के नाम से सुविख्यात तिरुवितांकूर राजवंश के राजा राम वर्मा हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकारों में से एक थे। ये वही राज्य हैं, जहाँ दक्षिण के प्रमुख संतों वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानंद आदि ने धर्म और संस्कृति का प्रचार हिंदी में ही किया, क्योंकि इन सभी का अडिग विश्वास था कि भारत में उनके वैचारिक संवहन का एकमात्र सशक्त साधन हिंदी ही हो सकती है। ये वही राज्य हैं, जहाँ तमिल के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम् भारती ने अपनी तमिल पत्रिका 'इंडिया' के माध्यम से दक्षिण भारतीयों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। और ये वही राज्य हैं, जहाँ हिंदी को राजभाषा घोषित करने वाले प्रस्ताव को रखने वाले प्रथम व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि दक्षिण भारतीय विद्वान श्री गोपालस्वामी अय्यंगर थे। और आज इन्हीं हिंदी विद्वान समृद्ध राज्यों को हमें हिंदीतर या अहिंदी प्रदेश कहना पड़ रहा है। लेकिन फिर भी एक आशा की किरण पिछले कुछ दशकों में दिखाई देने लगी है। वर्तमान में हिंदी भाषा को दक्षिण भारत तक पहुँचाने में प्रशासनिक गतिविधियों ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच हिंदी को भावों और विचारों के आदान-प्रदान का एक सशक्त एवं स्वीकृत रूप प्रदानकर सरकार ने इसे पुन: प्रचलित करने में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है।

भारत के द्रविड़भाषी हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी के व्यापक प्रसार के लिए गाँधी जी की प्रेरणा से हिंदी के प्रचारकों का एक दल गठित किया गया था। इस दल के प्रचारकों में पंडित हरिहर शर्मा, श्री देवदूत विद्यार्थी, मोटूरि सत्यनारायण, भालचंद्र आप्टे, पट्टाभि सीतारमैया और एस.आर. शास्त्री ने दक्षिण भारत के प्रत्येक भूभाग में जाकर हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किए। इनके अतिरिक्त दक्षिण भारत में हिंदी के प्रसार के लिए शारंगपाणि, बालशौरि रेड्डी, शौरिराजन, चंद्रमौलि, एस. सदाशिवम्, के.वी. रामनाथ, एम. सुब्रह्मण्यम, वेंकट सुब्बाराव, मुदुंबि नरसिंहाचार्य, मल्लादि वेंकट, भट्टारम वेंकट सुबय्या, आंजनेय शर्मा, पंडित वेंकटाचलय्या, के. भास्करन नायर, पंडित सी.वी. जोसेफ आदि अनेक हिंदीसेवियों के नाम हमेशा आदर के साथ लिए जाते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी के लिए स्थापित संस्थाओं को राष्ट्रीय महत्व की संस्थाओं के रूप में घोषित करने की परंपरा शुरू की गई थी। इन संस्थाओं में विशेष रूप से केरल की 1934 में स्थापित की गई केरल हिंदी प्रचार सभा, आंध्र प्रदेश की 1935 में स्थापित हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद और कर्नाटक की 1939 में प्रतिष्ठित की गई कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति, 1943 में मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् तथा 1953 में कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति का नाम प्रमुख है। इन सभी समितियों के संस्थानों द्वारा हिंदी प्रचार कार्यक्रम के माध्यम से विभिन्न हिंदी परीक्षाओं का संचालन कर उच्च शिक्षा एवं शोध की औपचारिक उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। ये सभी संस्थाएँ हिंदी प्रचार कार्य में अपने ढंग से आज भी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। सरकारी स्तर पर भारत के सभी राज्यों में हिंदी के प्रयोग को लेकर जो मुहिम चल रही है, वह बेहद प्रशंसनीय है। इस दिशा में कुछ और सार्थक पहल और प्रयास किए जाने आवश्यक हैं। जैसे जो हिंदीभाषी लोग अहिंदी प्रदेशों में रह रहे हैं, कम से कम वे वहाँ के स्थानीय लोगों से हिंदी में बातचीत करें और हिंदी के प्रति उन लोगों को आकर्षित करें।

अक्सर ये प्रश्न पूछा जाता है कि हिंदी ही हमारी राजभाषा क्यों। इसका जवाब बहुत पहले राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने दिया था। महात्मा गाँधी ने किसी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिए जाने के लिए तीन लक्षण बताए थे। पहला कि वो भाषा आसान होनी चाहिए। दूसरा

प्रयोग करने वालों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए। और तीसरा उस भाषा को बोलने वालों की संख्या अधिक होनी चाहिए। अगर ये तीनों लक्षण किसी भाषा में थे, हैं और रहेंगे, तो वो सिर्फ हिंदी भाषा ही है। यह सार्वभौमिक सच है कि जो भाषाएँ रोजगार और संवादपरक नहीं बन पाती, उनका अस्तित्व खत्म हो जाता है। मैक्सिको की पुरातन भाषाओं में से एक अयापनेको, उक्रेन की कैरेम, ओकलाहामा की विचिता, इंडोनेशिया की लेंगिलू भाषा आज अगर अपने अस्तित्व के संकट से गुजर रही हैं, तो उसके लिए उनका रोजगारपरक और संवादविहीन होना मुख्य कारण है। लेकिन हिंदी आज एक सशक्त भाषा के तौर पर उभर रही है और विश्व समुदाय उसका स्वागत कर रहा है। कभी जर्मनी संस्कृत भाषा को लेकर आत्ममुग्ध हुआ करता था। वेदों, पुराणों और उपनिषदों को जर्मन भाषा में अनुदित कर साहित्य के प्रति अपने अनुराग को प्रदर्शित करता था। लेकिन आज वह संस्कृत की तरह हिंदी को भी उतनी ही महत्ता के साथ देख रहा है। जर्मनी के लोग हिंदी को एशियाई आबादी के एक बड़े तबके से संपर्क साधने का सबसे दमदार हथियार मानने लगे हैं। जर्मनी के हाईडेलबर्ग, बर्लिन के हम्बोलडिट और बान विश्वविद्यालय के अलावा दुनिया के कई शिक्षण संस्थानों में अब हिंदी भाषा पाठयक्रम में शामिल कर ली गई है। विद्यार्थी अब इस भाषा में रोजगार की व्यापक संभावनाएँ भी तलाशने लगे हैं। यूरोप से ही तकरीबन दो दर्जन पत्रिकाएँ हिंदी में प्रकाशित होती हैं। अच्छी बात यह है कि हिंदी के पाठकों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। अगर हम आँकड़ों में हिंदी की बात करें तो 260 से ज्यादा विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। 64 करोड़ लोगों की हिंदी मातृभाषा है। 24 करोड़ लोगों की दूसरी और 42 करोड़ लोगों की तीसरी भाषा हिंदी है। इस धरती पर 1 अरब 30 करोड़ लोग हिंदी बोलने और समझने में सक्षम हैं। 2030 तक दुनिया का हर पाँचवाँ व्यक्ति हिंदी बोलेगा। यू ए ई और फिजी जैसे देशों में हिंदी को तीसरी राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। हिंदी की देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि मानी जाती है, ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में 18 हजार शब्द हिंदी के शामिल हुए हैं, और सबसे बड़ी बात कि जो तीन साल पहले अंग्रेजी इंटरनेट की सबसे बड़ी भाषा थी, अब हिंदी ने उसे पीछे छोड़ दिया है। गूगल सर्वेक्षण बताता है कि इंटरनेट पर डिजिटल दुनिया में हिंदी सबसे बड़ी भाषा है।

इंटरनेट पर हिंदी का सफर रोमन लिपि से प्रारंभ होता है, और फोन्ट जैसी समस्याओं से जूझते हुए धीरे-धीरे देवनागरी लिपि तक पहुच जाता है। आज यूनीकोड, मंगल जैसे यूनीवर्सल फोन्ट्स ने देवनागरी लिपि को कंप्यूटर पर नया जीवन प्रदान किया है। आज इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित लगभग 100 से भी ज्यादा ई-पत्रिकाएँ, देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं। आज जितने भी प्रतिष्ठित अखबार हैं, सभी के ई-संस्करण मौजूद हैं। हम दुनिया के किसी भी कोने में रह कर क्षेत्रीय संस्करण के अखबारों को पढ़ कर अपने क्षेत्र विशेष की जानकारी हिंदी में ले सकते हैं। गूगल, सेंसस इंडिया और आईआरएस की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार इंटरनेट पर हिंदी की लोकप्रियता का अंदाजा आप इसी बात से लगा सकते हैं, कि इंटरनेट पर हिंदी पढ़ने वालों की संख्या हर साल 94 फीसदी बढ़ रही है, जबकि अंग्रेजी में 17 फीसदी। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2025 में हिंदी में इंटरनेट उपयोग करने वाले, अंग्रेजी में इंटरनेट इस्तेमाल करने वालों से अधिक हो जाएँगे। सरकारी कामकाज के लिए 2016 तक 2.4 करोड़ लोग हिंदी का इस्तेमाल करते थे, जो 2025 में 10.4 करोड़ हो जाएंगे। 2016 में डिजिटल माध्यम में हिंदी समाचार पढ़ने वालों की संख्या 5.5 करोड़ थी, जो 2025 में बढ़कर 15.4 करोड़ होने का अनुमान है। वर्तमान में सोशल मीडिया ने हिंदी की दशा और दिशा को सशक्त करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ रही हिंदी की साख से प्रेरित होकर अहिंदी प्रदेशों के लोग भी फेसबुक और इंटरनेट के माध्यम से हिंदी के निकट आ रहे हैं। हिंदी के लिए किए जा रहे प्रयासों से इस दिशा में विकास दिखाई दे रहा है। हिंदी, हिंदीतर राज्यों के साथ साथ समस्त भारत और अंतरराष्ट्रीय समाज में भी अपना गौरवपूर्ण स्थान बना सकेगी, ऐसी संभावना से बिल्कुल भी इंकार नहीं किया जा सकता। जब हम दृढ़ संकल्प और इच्छाशक्ति के साथ, मनोग्रंथि की मानसिकता से परे होकर हिंदी को उसके समानुकूल स्थान पर स्थापित करने की दिशा में प्रयास करेंगे, तो अनुकूल संभावनाएँ जन्म लेंगी और वह दिन दूर नहीं होगा कि अगले आने वाले वर्षों में हम हिंदी का विश्लेषण एक विश्व भाषा के रूप में करेंगे।

वर्ल्ड इकोनोमिक फॉरम ने एक 'पावर लैंग्वेज इंडेक्स' तैयार किया है। इस इंडेक्स में वो भाषाएँ शामिल हैं, जो वर्ष 2050 तक दुनिया की सबसे शक्तिशाली भाषाएँ होंगी। इस लिस्ट में हिंदी 10वें नंबर पर है यानी टॉप 10 में हम सबसे नीचे हैं। इसका क्या कारण है। इसका कारण है कि अर्थव्यवस्था में सशक्त भूमिका निभाने के मामले में हिंदी 16वें नंबर पर है। क्षेत्रफल के हिसाब से 13वें नंबर पर, संचार के मामले में 8वें नंबर पर और कूटनीति के मामले में 10वें नंबर पर है। इसी वजह से हिंदी की रैंकिंग बाकी कि 9 भाषाओं के मुकाबले कमजोर है। लेकिन हिंदी की ताकत का आंकलन करते हुए

इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि भारत ने 5 हज़ार वर्ष के इतिहास में कभी किसी दूसरे देश पर आक्रमण नहीं किया और दूसरे देशों में उपनिवेश भी स्थापित नहीं किए। इस इंडेक्स में अगर अंग्रेजी पहले नंबर पर है, तो इसका कारण है अंग्रेजों द्वारा दूसरे देशों को अपना उपनिवेश बनाना। स्पेस, फ्रांस, पुर्तगाल और अरब देशों का इतिहास भी इस बात का गवाह है कि इन देशों ने दूसरे देशों पर हमले करके वहाँ अपनी भाषा और संस्कृति का प्रसार किया। चीन इस लिस्ट में दूसरे नंबर पर है, क्योंकि चीन भारत के बाद दुनिया की सबसे ज्यादा आबादी वाला देश है और वहाँ के लोग चाइनीज ही बोलते और लिखते हैं। चीन में इंटरनेट और सोशल मीडिया पर वहाँ की भाषा मैंडरिन का ही इस्तेमाल किया जाता है। आज हमें भारत को सिर्फ बीपीओ और आउटसोर्सिंग के जरिए तकनीकी विश्व शक्ति नहीं बनाना है, बल्कि उसे एक ज्ञान समाज में तब्दील करना है। तकनीक, भारत में सामाजिक परिवर्तनों तथा आर्थिक विकास का निरंतर चलने वाला जरिया बन सकती है, और भाषाओं की इसमें बड़ी भूमिका होने वाली है। वर्ष 1910 में महात्मा गाँधी ने कहा था कि 'हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है'। आज भाषा को लेकर संवेदनशील और गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। इस सवाल पर भी सोचना चाहिए कि क्या अंग्रेजी का कद कम करके ही हिंदी का गौरव बढ़ाया जा सकता है? जो हिंदी कबीर, तुलसी, रैदास, नानक, जायसी और मीरा के भजनों से होती हुई प्रेमचंद, प्रसाद, पंत और निराला को बाँधती हुई, भारतेंदु हरिशचंद्र तक सरिता की भाँति कलकल बहती रही, आज उसके मार्ग में अटकलें क्यों हैं? यदि हम सच में चाहते हैं कि हिंदी भाषा का प्रभुत्व राजभाषा के रूप में बना रहे, तो हमें इसके प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देना होगा। सरकारी कामकाज में हिंदी को प्राथमिकता देनी होगी। ऐसे में भरोसा फिर उन्हीं नौजवानों का करना होगा, जो एक नए भारत के निर्माण के लिए तैयार हैं। जो अपनी जड़ों की ओर लौटना चाहते हैं। भरोसे और आत्मविश्वास से दमकते ऐसे तमाम चेहरों का इंतजार भारत कर रहा है। ऐसे चेहरे, जो भारत की बात भारत की भाषाओं में करेंगे। जो अंग्रेजी में दक्ष होंगे, किंतु अपनी भाषाओं को लेकर गर्व से भरे होंगे। उनमें 'एचएमटी' यानी 'हिंदी मीडियम टाइप' या 'वर्नाकुलर पर्सन' कहे जाने पर हीनता पैदा नहीं होगी, बल्कि वे अपनी भाषा से और अपने काम से लोगों का और दुनिया का भरोसा जीतेंगे। हिंदी और भारतीय भाषाओं के इस समय में देश ऐसे युवाओं का इंतजार कर है, जो अपनी भारतीयता को उसकी भाषा, उसकी परंपरा, उसकी संस्कृति के साथ समग्रता में स्वीकार करेंगे। जिनके लिए परम्परा और संस्कृति एक बोझ नहीं, बल्कि गौरव का कारण होगी। यह नौजवानी आज कई क्षेत्रों में सक्रिय दिखती है। खासकर सूचना-प्रौद्योगिकी की दुनिया में। जिन्होंने इस भ्रम को तोड़ दिया, कि सूचना-प्रौद्योगिकी की दुनिया में बिना अंग्रेजी के गुजारा नहीं है। ये लोग ही हमें भरोसा जगा रहे हैं। ये भारत को भी जगा रहे हैं। आज भरोसा जगाते ऐसे कई दृश्य हैं, जिनके श्रीमुख और कलम से व्यक्त होती हिंदी देश की ताकत है।

आज भारतीय भाषाओं के बीच संवाद को व्यापक रूप से प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं में बीच संवाद सैकड़ों वर्षों से जारी है और इनका विकास भी साथ-साथ ही हुआ है। मसलन बांग्ला और मैथिली में इतनी समानता है कि उनमें अंतर करना मुश्किल है, इसी तरह अवधी और ब्रज भाषा तथा हिंदी और उर्दू में भी ऐसा ही है। हिंदी और उर्दू दैनिकों की भाषा पर हुए एक शोध में देखा गया कि उनमें केवल 23 प्रतिशत शब्द ही अलग थे। हिंदी पत्रकारिता के विकास में मराठी, बांग्ला और दक्षिण भारतीय भाषाओं के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। आज पूरे भारत में भारतीय भाषाओं के बढ़ते प्रभाव को देखा जा सकता है। भाषाई पत्रकारिता को हम भारत की आत्मा कह सकते हैं। आज लोग अपनी भाषा के समाचार पत्रों की ओर तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। इसलिए भाषाई समाचार पत्रों की प्रसार संख्या तेजी से बढ़ रही है। अलग-अलग बोलियों में अखबार प्रकाशित हो रहे हैं। क्षेत्रीय भाषाओं में रेडियो और टेलीविजन अपने कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं। इतना ही नहीं, जिस स्मार्टफोन के द्वारा हम सोशल मीडिया के संपर्क में रहते हैं, वहाँ भी भारतीय भाषाओं का विशेष ख्याल रखा जाता है। हर क्रांति में उसकी चुनौतियाँ और अवसर निहित होते हैं। सूचना और संचार क्रांति महज एक तकनीकी प्रगति न होकर, एक व्यापक प्रभावी घटना है। समाज और जीवन का कोई भी पहलू इससे अछूता नहीं है। भाषा भी अपवाद नहीं है। इस दौर में भाषाई पत्रकारिता के सामने अवसर भी हैं और चुनौतियाँ भी हैं। नए विश्व की नई संरचना में आधुनिक जनसंचार माध्यमों का सीधा हस्तक्षेप है। आज का युग भूमंडलीकरण जनसंचार का युग है। बदलते वैश्विक परिदृश्य में संचार माध्यमों एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न स्रोतों तथा नित नए प्रयासों ने पूरे विश्व को ग्लोबल विलेज की परिकल्पना के रूप में साकार किया है। कम्प्यूटर और इंटरनेट के असीमित विस्तार के दौर में भाषाई पत्रकारिता के विकास के नए मौके सामने आ रहे हैं। संचार और तकनीक की बढ़ती दुनिया में खबरों का आदान-प्रदान सरल हो गया है। आज से कुछ समय पहले तक गाँवों की खबरों के लिए चार

चार दिन तक इंतजार करना पड़ता था, जबकि आज व्हाट्सएप और ईमेल के द्वारा आसानी से खबरें प्राप्त हो रही हैं। जिलों, कस्बों और मोहल्लों से आज अखबार प्रकाशित हो रहे हैं। ईमेल से अखबारों के पृष्ठ भेजना आसान हो गया है। पहले अंग्रेजी भाषा के अखबारों पर निर्भरता ज्यादा होती थी, जिसके भारतीय पाठक मात्र 15 प्रतिशत हैं। अब जब अलग-अलग बोलियों और भाषाओं में अखबार प्रकाशित हो रहे हैं, तो सूचना सशक्तिकरण बढ़ रहा है। अब विभिन्न दूतावासों के मीडिया प्रकोष्ठ और विदेशी एजेंसियाँ भी खबरों के लिए क्षेत्रीय एवं भाषाई मीडिया का लाभ ले रहे हैं। दूसरी तरफ हर अखबार अपने ईपेपर के जरिए दूरदराज के पाठकों तक पहुँच रहा है। हम सब जानते हैं कि इंटरनेट की कोई सीमा नहीं है, ऐसे में क्षेत्रीय अखबार विदेशी धरती पर भी उसी दिन पढ़े जा रहे हैं, जिस दिन वे प्रकाशित होते हैं।

एक वक्त था जब टेलीविजन के आने के बाद कहा गया कि अखबारों का जमाना खत्म हो जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अब इंटरनेट के आने पर भी वही आशंका उत्पन्न हुई और दुनिया के कई देशों में अखबारों के प्रकाशन में भी कमी आई, लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ। इंटरनेट के आने के साथ ही क्षेत्रीय भाषाई अखबार घट नहीं रहे हैं, बल्कि बढ़ रहे हैं। सूचना के ये तमाम माध्यम एक-दूसरे का विकल्प नहीं, बल्कि पूरक या सहयोगी बन रहे हैं। इंटरनेट के द्वारा जहाँ सूचना तंत्र जहाँ मजबूत हुआ है, वहीं भाषाई पत्रकारिता के लिए संभावनाओं के नए द्वार खुले हैं। सूचना के इन तमाम माध्यमों में सबसे ऊपर इंटरनेट है और हैशटैग तथा ट्विटर के 144 कैरेक्टर के दायरे में दुनिया सिमटती दिख रही है। एक आँकड़े के अनुसार चीन और अमेरिका के बाद भारत में सबसे ज्यादा इंटरनेट यूजर हैं। भारत की आबादी के हर पाँचवें इंसान की अँगुलियाँ अपने मोबाइल या इंटरनेट पर थिरक रही हैं। भारत में रोजाना लगभग 3 बिलियन वेब पेज सर्च हो रहे हैं। सोशल मीडिया ने सिटीजन जर्नलिज्म को नया मंच प्रदान किया है। इस माध्यम से कई ऐसे पत्रकार उभर कर सामने आ रहे हैं, जिन्होंने पत्रकारिता का कोई प्रशिक्षण नहीं लिया। वे अपनी भाषा में अपनी बात जनता तक पहुँचा रहे हैं। महात्मा गाँधी बहुत बड़े पत्रकार थे, लेकिन अंग्रेजी और हिंदी का ज्ञान होते हुए भी वे गुजराती में ही लिखना पसंद करते थे, क्योंकि वे क्षेत्रीय भाषा की ताकत से वाकिफ थे। इस परिदृश्य से यह विचार और मजबूत होता है कि हम जिस क्षेत्र में रहें, वहाँ की भाषा और बोली का ध्यान अवश्य रखें।

'एन्सर्ट एंड यंग' की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2023 में टेलीविजन, प्रिंट और डिजिटल जैसे सभी मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर लोगों ने रीजनल कंटेट सामग्री का इस्तेमाल ज्यादा किया है। इस रिपोर्ट ने अनुसार टेलीविजन में 50 प्रतिशत से अधिक, सिनेमाघरों में रिलीज़ होने वाली फिल्मों में 44 प्रतिशत, समाचार पत्रों के प्रसार में 43 प्रतिशत और ओटीटी कंटेट में लगभग 30 प्रतिशत, क्षेत्रीय भाषाओं के कंटेट में वृद्धि देखी गई है। ऑडिट एवं परामर्श देने वाली कंपनी 'केपीएमजी' ने हाल ही में मीडिया और एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री से जुड़ी एक रिपोर्ट जारी की है। इस रिपोर्ट में वर्ष 2030 तक देश में डिजिटल मीडिया के क्षेत्र में ग्रोथ का अनुमान लगाया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2024 के दौरान देश की मीडिया और एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री में 16 प्रतिशत की ग्रोथ देखने को मिली है। देश में डिजिटल को रफ्तार मिलने के पीछे दो प्रमुख कारण हैं। एक तो स्मार्टफोन की बढ़ती संख्या के साथ इंटरनेट डाटा की कीमतों में कमी, और दूसरा डिजिटल में कंटेंट की सप्लाई भी हो रही है। यानी देश में प्रादेशिक भाषा यानी रीज़नल लैंग्वेज के मार्केट का महत्व भी लगातार बढ़ रहा है। 'केपीएमजी' की रिपोर्ट में इसे एक प्रमुख विषय के रूप में शामिल किया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी भाषा के ऑडियंस का डिजिटल की तरफ मुड़ना लगभग पूरा हो चुका है। ऐसा माना जा रहा है कि वर्ष 2030 तक रीज़नल लैंग्वेज मार्केट में यूजर्स की संख्या 500 मिलियन तक पहुँच जाएगी और लोग इंटरनेट का इस्तेमाल स्थानीय भाषा में करेंगे। अगर सभी भाषाओं की बात करें, तो वर्ष 2030 तक भारत में एक बिलियन यानी एक अरब लोग इंटरनेट से जुड़े होंगे। और ये यूजर्स मुख्य रूप से अंग्रेजी न बोलने वाले, मोबाइल फोन यूजर्स और विकसित ग्रामीण क्षेत्रों से होंगे, जो ऑनलाइन कंटेंट के लिए भुगतान करने को भी तैयार होंगे। भारतीय भाषाओं में हमारा ज्यादा ध्यान कंटेट के उपभोग, संचार और सोशल नेटवर्किंग पर है। जैसे भारत में यू-ट्यूब पर देखे जाने वाले कुल वीडियो में से 90 प्रतिशत भारतीय भाषाओं में होते हैं। फेसबुक के उपभोक्ताओं की दृष्टि से भारत का पहला स्थान है, जहाँ पर उसके 27 करोड़ यूजर्स हैं। व्हाट्सऐप के 20 करोड़ मंथली एक्टिव यूजर्स भारत से आते हैं। टिकाऊ तकनीकी विकास और डिजिटल अर्थव्यवस्था बनाने के लिए जरूरी है कि हम भारतीय नई तकनीकों में निहित संभावनाओं का समग्रता से लाभ उठाएँ। हमारे पास मेक इन इंडिया और डिजिटल इंडिया जैसे प्लेटफॉर्म मौजूद हैं। भारत जितनी बड़ी तकनीकी शक्ति आज है, उससे कई गुना बड़ी शक्ति बन सकता है, यदि हम भारतीय भाषाओं के संख्या बल को सेवा प्राप्तकर्ता से सेवा प्रदाता में तब्दील कर दें। संख्या बल हमारी सबसे बड़ी ताकत है, इसलिए तकनीकें बनती रहेंगी और हिंदी समृद्ध होती रहेगी। लेकिन

खुद को महज बाजार मानकर बैठे रहना और विकास का काम दूसरों पर छोड़ देना कोई आदर्श स्थिति नहीं है।

आप वर्ष 2040 की कल्पना कीजिए। तब तक हमारा भारत विश्व की एक बड़ी आर्थिक महाशक्ति बन चुका होगा। गरीबी, कुपोषण, पिछड़ापन काफी हद तक मिट चुके होंगे। देश के लगभग 60 प्रतिशत भाग का शहरीकरण हो चुका होगा। सारा देश डिजिटल जीवन पद्धति को अपना चुका होगा। अब आप सोचिए कि उस भारत के अधिकतर नागरिक अपने जीवन के सारे प्रमुख काम किस भाषा में कर रहे होंगे? पूरे देश में शिक्षा, प्रशासन, व्यापार, शोध, पत्रकारिता जैसे हर बड़े क्षेत्र में किस भाषा का उपयोग हो रहा होगा? वह देश भारत होगा या सिर्फ़ इंडिया? उस इंडिया में संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हमारी 22 बड़ी और 1600 से अधिक छोटी भाषाओं-बोलियों की स्थिति क्या होगी? वर्तमान में जिस तरह अंग्रेजी का चलन तेजी से बढ़ रहा है, क्या उसके बीच हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं को स्थान मिलेगा। यूनेस्को के पूर्व महानिदेशक कोचिरो मत्सूरा ने कहा था कि, 'एक भाषा की मृत्यु उसे बोलने वाले समुदाय की विरासत, परंपराओं और अभिव्यक्तियों का नष्ट हो जाना है।' संसार में लगभग 6000 भाषाओं के होने का अनुमान है। भाषा शास्त्रियों की भविष्यवाणी है कि 21वीं सदी के अंत तक इनमें केवल 200 भाषाएँ जीवित बचेंगी। इनमें भारत की सैकड़ों भाषाएँ होंगी। यूनेस्को के अनुसार भारत की आदिवासी भाषाओं में से 196 भाषाएँ अभी भी गंभीर संकटग्रस्त भाषाएँ हैं। संकटग्रस्त भाषाओं की इस वैश्विक सूची में भारत सबसे ऊपर है। यूनेस्को का भाषा एटलस 6000 में से 2500 भाषाओं को संकटग्रस्त बताता है। भारत की अनुमानित 1957 में कम से कम 1416 लिपिहीन मातृभाषाएँ हैं। ये सब इस वक्त संकट में हैं। यूनेस्को के कहने पर विश्व के श्रेष्ठ भाषाविदों ने किसी भी भाषा की जीवंतता और संकटग्रस्तता नापने के लिए 9 कसौटियाँ निर्धारित की हैं। इनमें पहली कसौटी है, एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी के बीच उस भाषा का अंतरण। दूसरी कसौटियों में प्रमुख हैं ज्ञान विज्ञान के आधुनिक क्षेत्रों में उस भाषा में काम हो रहा है या नहीं। वह भाषा नई तकनीक और आधुनिक माध्यमों को कितना अपना रही है? उस भाषा के विविध रूपों का दस्तावेजीकरण कितना और किस स्तर का है? उस समाज की महत्त्वपूर्ण संस्थाओं की उस भाषा के बारे में नीतियाँ और रुख़ कैसे हैं? इसमें अंतिम लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी है, उस भाषा समुदाय का अपनी भाषा के प्रति रुख़ क्या है, भाव क्या है? इनमें से किसी भी कसौटी पर किसी भी भारतीय भाषा को तोल लीजिए, तुरंत समझ में आ जाएगा कि भविष्य के संकेत संकट की ओर इशारा करते हैं या विकास की ओर। भारतीय चरित्र, इजराइली चरित्र जैसा नहीं है, जिसने 2000 साल से मृत पड़ी हिब्रू को आज वैज्ञानिक शोध, नवाचार और आधुनिक ज्ञान निर्माण की श्रेष्ठतम वैश्विक भाषाओं में एक बना दिया है। जिसके बल पर 40 लाख की जनसंख्या वाला इजराइल एक दर्जन से ज्यादा विज्ञान के नोबेल पुरस्कार जीत चुका है। सारे इस्लामी देशों की शत्रुता के बावजूद अपनी पूरी अस्मिता, धमक और शक्ति के साथ अजेय बना विश्व पटल पर विराजमान है।

भाषा मनुष्य की श्रेष्ठतम संपदा है। सारी मानवीय सभ्यताएँ भाषा के माध्यम से ही विकसित हुई हैं। याद रखिए...आदिम समाज तो हो सकते हैं, लेकिन आदिम भाषाएँ नहीं हो सकतीं। शहीद भगत सिंह ने 15 वर्ष की उम्र में ये लिखा था कि, 'पंजाब में पंजाबी भाषा के बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता।' गाँधी जी ने 1938 में ही स्पष्ट कहा था कि, 'क्षेत्रीय भाषाओं को उन का आधिकारिक स्थान देते हुए शिक्षा का माध्यम हर अवस्था में तुरंत बदला जाना चाहिए।' महात्मा गाँधी का ये भी मानना था कि अंग्रेजी भाषा के मोह से निजात पाना स्वाधीनता के सब से ज़रूरी उद्देश्यों में से एक है। भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के बीच अंतर-संवाद का कार्य अब अंग्रेजी की जगह हिंदी ने ले लिया है। और इसका एक विशेष कारण भी है। हमारे देश में हिंदी भाषा का आंदोलन किन लोगों ने चलाया। ज्यादातर हिंदी भाषा का आंदोलन उन लोगों ने चलाया, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। सुभाषचंद्र बोस हों, लोकमान्य तिलक हों, महात्मा गाँधी हों, काका साहेब कालेलकर हों, राजगोपालाचार्य हों, इन सबकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। लेकिन हिंदी भाषा के लिए, उसके संरक्षण और संवर्धन के लिए जो काम इन सब लोगों ने किया, वो हमें प्रेरणा देता है। भारत आज तीव्रतम वृद्धि करने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। इस वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि शहर तथा गाँव के बीच का अंतर कम होता जा रहा है। वैश्वीकरण ने भी इस परिवर्तन को प्रेरित किया है। साक्षरता वृद्धि, अधिक शैक्षिक अवसर, औद्योगिक प्रगति, नव मध्यवर्ग के उद्भव और आधुनिक संप्रेषण पद्धति, सभी ने एक साथ भाषाई पत्रों की प्रसार संख्या बढ़ाने में सहयोग किया है। भारतीय भाषाई पत्रकारिता के विकास के लिए आवश्यकता है कि हिंदी ही नहीं, भारतीय भाषा परिवार की सभी भाषाओं के विकास और उन्हें एकता के सूत्र में बाँधने का लक्ष्य हम अपने हाथ में लें। भारत में भाषाई पत्रकारिता का भविष्य संभावनाओं से भरा हुआ है, खासकर तब, जब इंटरनेट की दुनिया तेजी से बढ़ रही है। तकनीक के इस युग में ऐसा लगता है कि हम पत्रकारिता का स्वर्णिम दौर देख रहे हैं, लेकिन मुमकिन है कि आने वाले वर्षों में ये भी कम लगे और हम संचार क्रांति का कोई नया दौर देखें। भारतीय भाषाई पत्रकारिता

को इसके लिए तैयार रहना होगा।

भाषाओं का राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में योगदान होता है। शब्दों को हमने ब्रह्म माना है। महात्मा गाँधी ने अंग्रेजी में 'हरिजन' प्रकाशित किया, लेकिन उसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए उन्होंने उसे गुजराती और हिंदी में भी स्थापित किया। भारतीय भाषाओं के बीच अंतर-संवाद को हमें अगर समझना है तो गुजराती में 70 पुस्तकों की रचना करने वाले फादर वॉलेस और गुजरात में कई विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थापना करने वाले सयाजीराव गायकवाड़ के बारे में पढ़ना चाहिए। उत्तर-दक्षिण भारत की भाषाओं में व्यापक अंतर होने के बावजूद उनमें अंतर-संवाद और अनुवाद होता आया है। आप देखिए कि भारत एक छोटे यूरोप की तरह है। यहाँ विविध भाषाएँ हैं और भाषा ही मेल-मिलाप कराती हैं। भाषाई विविधता और बहुभाषी समाज आज की आवश्यकता है और समस्त भाषाओं के लोगों ने ही विश्व में अपनी उपलब्धियों के पदचिह्न छोड़े हैं। आज हम एक बहुभाषी दुनिया में रहते हैं। दुनियाभर में लोग बेहतर अवसरों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रवास करते हैं। जहाँ उनकी भाषाएँ और संस्कृति, नए क्षेत्र की भाषा और संस्कृति से एकदम अलग होती है। इसलिए उन्हें एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है, जो दोनों संस्कृतियों को आपस में एकीकृत कर सके, जिसके लिए उन प्रवासियों को निश्चित तौर पर एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। पश्चिम बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में भी एक शिक्षित व्यक्ति को कम से कम तीन भाषा का ज्ञान होता है। यहाँ के लोगों को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का ज्ञान होता है। इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क साधने के लिए अंग्रेजी भाषा को भी ये लोग सीख लेते हैं। बहुभाषिक संचार का एक अर्थ यह है कि मैं अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन बोलने वालों से इन्हीं की भाषाओं में बात करूँ। लेकिन बहुभाषिक संचार का अर्थ यह भी है कि मैं अपनी एक ही भाषा में ऐसी 'फाइन ट्यूनिंग' करना जानता हूँ कि उसी भाषा में अपने पिता से एक तरह से बात करता हूँ, अपनी माँ से दूसरी तरह से बात करता हूँ, अपने बच्चों से तीसरी तरह से बात करता हूँ और जब लिखता हूँ या विद्वानों की सभा में बोलता हूँ, तो पाँचवी तरह से बात करता हूँ। यह भी बहुभाषिक संचार है। बहुभाषिकता हमारे यहाँ संस्कार में है। भारत एक बहुभाषा-भाषी देश है। यहाँ 22 भाषाएँ संविधान में स्वीकृत हैं। यह भाषागत बहुलता हमारी भाषाई समृद्धि का ही बोध कराती है। डॉ. नामवर सिंह ने इस संदर्भ में कहा है कि, 'हमारे यहाँ जिनको अनपढ़ कहते हैं, वे भी देशाटन परंपरा से इस देश में घूमने के कारण बहुभाषी तो हो ही जाते हैं।'

भारत का प्रत्येक व्यक्ति मूलत: बहुभाषी है। भारत जैसे बहुभाषी देश में हमारा किसी एक भाषा के सहारे काम चल ही नहीं सकता। हमें अपनी बात बाकी लोगों तक पहुँचाने के लिए और उनके साथ संवाद करने के लिए एक भाषा से दूसरे भाषा के बीच आवाजाही करनी ही पड़ती है। जैसे हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का मिश्रित रूप है 'हिंदुस्तानी जुबान।' हिंदुस्तानी जुबान में होने वाले संवाद की मिठास और संप्रेषण की सहजता देखने लायक है। भारत सदैव वसुधैव कुटुम्बकम की बात करता आया है और सभी भाषाओं को साथ लेकर चलने के पीछे भी यही भावना है। जहाँ भाषा खत्म होती है, वहाँ संस्कृति भी उसके साथ दम तोड़ देती है। हमें सभी भाषाओं को महत्व देना चाहिए, उन्हें समझना चाहिए और उनके संपर्क का माध्यम हिंदी है, इसे स्वीकार करना चाहिए। भाषा के माध्यम से हम केवल दुनिया से ही नहीं, बल्कि स्वयं से भी संवाद करते हैं। हिंदी अकेली राष्ट्र भाषा नहीं है, क्योंकि समस्त भाषाएँ इसी राष्ट्र के लोगों के द्वारा बोली जाती हैं, लिहाजा वे सभी राष्ट्रीय भाषाएँ ही हैं। भारतीय भाषाओं में अंतर-संवाद से वे भाषाएँ एक-दूसरे के गुण अपनाएँगी और अंतत: सर्वव्यापी, सर्वग्राह्य बनेंगी। इससे भाषाई विद्वेष की भावना का अंत होगा, परंपराओं का समन्वय होगा और सभी को सामाजिक न्याय तथा आर्थिक न्याय प्राप्त होगा।

प्राध्यापक, माखनलाल चतुर्वेदी
पत्रकारिता एवं जनसंचार
विश्वविद्यालय नीलबड़, भोपाल-462044 (म.प्र.)

हमारी नागरी लिपी दुनिया की सबसे वैज्ञानिक लिपी है

– राहुल सांकृत्यायन

भारत का बहुभाषावाद

– बलराम

इस दुनिया में कुल कितनी भाषाएँ हैं, इसकी सर्वमान्य सूची किसी के भी पास नहीं है। फिर भी, अनुमान है कि दुनिया में साढ़े छः हजार से अधिक भाषाएँ हैं, लेकिन ऐसी भाषाएँ डेढ़ सौ से ज्यादा नहीं हैं, जिन्हें दस लाख से अधिक लोग बोलते-समझते और उसमें लिखना-पढ़ना करते हों। मुगल काल के भारत में अरबी-फारसी और उर्दू को बढ़ावा मिला। अंग्रेजों ने आकर इसमें दखल दिया और शिक्षा तथा व्यवसाय में अंग्रेजी लागू कर दी। कालांतर में हिन्दी इलाकों में उन्होंने ही देवनागरी लिपि में हिन्दी अनिवार्य कर दी तो अरबी-फारसी और उर्दू का प्रभाव सीमित होने लगा। जम्मू-कश्मीर की राजभाषा उर्दू है, मगर कश्मीर में कश्मीरी, जम्मू में डोगरी और लद्दाख में भोटी का प्रचलन है। कभी कश्मीर में संस्कृत चला करती थी, पर अब वहाँ वह अप्राप्य है। भारत से पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका और तिब्बत का रिश्ता एक ऐसा रिश्ता है कि उसे आप अलग-अलग देशों के रिश्तों के रूप में पकड़ ही नहीं सकते। एक दिन भारत के आसपास के ये सारे देश एकता की ओर अवश्य बढ़ेंगे, जैसे यूरोप के देश बढ़े हैं। भारतीय उपमहाद्वीप तो पहले से ही वैसा रहा है। भारत के आसपास के देश भारतीयता की हवाओं में साँस लेते और अपनी हवाओं से उसे प्रभावित करते ही रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र में भारत के बहुभाषावाद को मान्यता मिलने के बाद भारतीय भाषाओं में आपसी आदान-प्रदान के लिए अनुवाद प्रक्रिया को अब और तेज कर देना चाहिए। बाँग्ला का 'गणदेवता' (ताराशंकर बंद्योपाध्याय), मलयाळम् का 'मछुआरे' (तकषि शिवशंकर पिल्लै), मराठी का 'मृत्युंजय' (शिवाजी सावंत), कन्नड का 'पर्व' (भैरप्पा), तमिळ का 'चित्रप्रिया' (अखिलन) और ओड़िया का 'दो सेर धान' (फकीर मोहन सेनापति) जब अनूदित होकर हिन्दी में छपते हैं तो एकाएक कैसे उनके रचयिता भारत के प्रतिनिधि लेखक के रूप में उभर आते हैं और कैसे वे प्रेमचंद के 'गोदान', अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी', फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल', अमृतलाल नागर के 'अमृत और विष', यशपाल के 'मेरी तेरी उसकी बात', श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी', भीष्म साहनी के 'तमस', कृष्णा सोबती के 'जिंदगीनामा' और विनोद कुमार शुक्ल के 'नौकर की कमीज' की तरह हिन्दी का कंठहार हो जाते हैं। हिन्दुस्तान का दो तिहाई हिस्सा हिन्दी जानता, समझता और पढ़ता-बोलता है तो हिन्दी का इसीलिए यह कर्तव्य भी ज्यादा बनता है कि वह ऐसे सार्वदेशिक प्रयत्न अधिक से अधिक खुद करे ताकि अन्य भाषाएँ प्रेरणा पाकर खुद भी वैसा करने की कोशिश करें।

हिन्दी भारत की ही नहीं, दुनिया की एक जरूरी और अनिवार्य भाषा बनकर उभरी है। तमाम कमियों, कमजोरियों, विरोधों, प्रतिरोधों, विवादों और अंतर्विरोधों के बावजूद हिन्दी की स्वीकार्यता बढ़ रही है, क्योंकि यह एक स्वतः प्रवाहित भाषा है, जो खुद ही अपने को बहते पानी की तरह निरंतर जीवंत करती चलती है, भारत और दुनिया की तमाम सारी भाषाओं के रस और गंध को अपने में घोलती हुई। सआदत हसन मंटो, जोगिंदर पाल, वि.स. खांडेकर, लक्ष्मीकांत वैजबरुआ, भूपेन हजारिका, रवींद्रनाथ ठाकुर, वनफूल, प्रतिभा राय, एन. चंद्रशेखरन नायर, पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला, हमदर्दवीर नोशहरवी, दर्शन मितवा, यदुनाथदास महापात्र, विनोद भट्ट, मोहनलाल पटेल, वी.बी.एस. अय्यर, टी. नागेश्वर राव, गुरजाड अप्पाराव, अख्तर मोहिउद्दीन, अमीन कामिल और विजयदान देथा जैसे लेखक तो अब लगते ही नहीं कि ये हिन्दी के नहीं हैं। चाहें तो इसे ही हिन्दी की भारतीयता मान लें और इसे ही भारतीय रंग, जो भारत की चादर पर चढ़ रहा है, चढ़ रहा है और गहरा रहा है। भारत जैसा देश दुनिया में दूसरा नहीं, जो अपनी प्रमुख 24 भाषाओं को मान्यता देता और उनमें बातचीत ही नहीं करता, उनमें साहित्य सृजन भी करता है।

हिमाचल पहले पंजाब का हिस्सा था। सन् 1971 में यह भारतीय गणराज्य का एक ऐसा राज्य बना, जिसका क्षेत्रफल पंजाब, हरियाणा और केरल से भी ज्यादा है और हिन्दी इसकी राजभाषा है, लेकिन कुछ क्षेत्रों में पहाड़ी और भोटी भी चलती है। उत्तराखंड में यद्यपि

समकालीन भारतीय साहित्य के सम्पादक, कथाकार

गढ़वाली और कुमाऊँनी का प्रचलन है, पर यहाँ की भी राजभाषा हिन्दी ही है, जिससे लगने लगा है कि हिन्दी अब किसी क्षेत्र विशेष की भाषा रह ही नहीं गई है–अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, मगही, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, बघेली, रुहेलखंडी, कन्नौजी, बागड़ी, गोंडी, भतरी और हल्बी आदि न जाने कितनी भाषाओं–उपभाषाओं और बोलियों का पानी इसमें मिलकर इसे सदानीरा गंगा जैसा पवित्र, निर्मल और सर्व मंगलकारी बना रहा है, जो उत्तर, पश्चिम और पूर्व भारत की संपर्क भाषा तो है ही, देश की राजभाषा भी है। मूर्तिदेवी पुरस्कार लेते समय प्रतिभा राय ने धाराप्रवाह हिन्दी में वक्तव्य देते हुए कहा था कि–'मैं ओड़िया पुत्री प्रतिभा राय, अपना वक्तव्य हिन्दी में दे रही हूँ, क्योंकि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है।' उत्तर प्रदेश समेत सभी हिन्दीभाषी राज्यों को इस पर लेकिन गर्व बिल्कुल नहीं है।

खासकर उत्तर प्रदेश को। उसे इस उत्तरदायित्व का भान है कि भारत का सबसे प्राचीन, बृहत् और गौरवशाली राज्य होने के नाते उसे ही सबसे अधिक भारत को धारण करना है, उसे भारत की 'भारती' की ओर से उद्घोष करना है कि आओ, भारत की सभी भाषाओं आओ, तुम, तुम भी राष्ट्रभाषा ही हो, बल्कि तुम्हीं हो, तुम्हारे बिना मैं क्या हूँ! हिन्दी की यह विनयशीलता ही उसे बड़ा बनाती है। प्रतिभा राय जब हिन्दी में बोलती हैं तो वे व्यापक हिन्दी संसार की शुभकामनाएँ ओड़िया के लिए स्वत: अर्जित कर लेती हैं। हिन्दी में बोलकर वे राष्ट्रभाषा का सम्मान तो कर ही रही होती हैं, ओड़िया का हित भी साध रही होती हैं। वैदिक काल के भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र और वाल्मीकि आदि ऋषि इसी प्रदेश में हुए। 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे विश्व मान्य प्राचीनतम् काव्य इसी उत्तर प्रदेश में लिखे गए। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध और जैन धर्म का उद्भव भी यहीं हुआ। सन् 1935 में अंग्रेजों ने इसे संयुक्त प्रांत बनाया, जो जनवरी, 1950 में बदलकर उत्तर प्रदेश हो गया। यह भारत का सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है। उत्तर भारत की गंगा जैसे पूरे भारत को प्रिय है, वैसे ही हिन्दी पूरे भारत को प्रिय है, जिसकी लिपि देवनागरी है। मराठी, डोगरी, नेपाली और बोडो जैसी भाषाएँ भी इसी लिपि में लिखी जाती हैं। बांग्ला, असमिया, पंजाबी और गुजराती की लिपियाँ भी देवनागरी जैसी ही हैं। सिंधी पाकिस्तान के सिंध और भारत में अनि अस्तित्व के लिए जूझ रही है। बांग्ला, पंजाबी, कश्मीरी और उर्दू का समग्र साहित्य भारत विभाजन के कारण जैसे समग्रता में सामने नहीं आ पाता, वैसे ही सिंधी का साहित्य भी। बोलनेवालों की संख्या के आधार पर चीनी–तिब्बती भाषा परिवार की मंदारिन मित्र की सबसे बड़ी भाषा है। अंग्रेजी बोलने वाले दूसरे स्थान पर हैं और हिन्दी का स्थान तीसरा है। हिन्दी भारत के अलावा पाकिस्तान, नेपाल और श्रीलंका तक में समझ ली जाती है। अरब देशों समेत ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, सिंगापुर और न्यूजीलैंड में भी हिन्दी बोली–समझी जाती है। मॉरीशस, फिजी, ट्रिनीडाड–टोबैगो, दक्षिण अफ्रीका, गुयाना और सूरीनाम में भी यह बहुत से लोगों की भाषा है। और तो और, ब्रिटेन की यह दूसरे नंबर की बड़ी भाषा है। उर्दू भाषा का नामकरण मूलत: चीनी भाषा से प्रेरित है। तुर्क, मंगोल और तातार आदि जातियाँ मूलत: हूणों की वंशज हैं और हूण भी मूलत: चीनी 'शान् यू' हैं, जो प्राचीन अर्थ में लड़ाकू हैं। यहो शान् यू राजा होने लगे तो चीनी में इनका अर्थ हो गया–राजा। 'शान् यू' बिगड़कर हून, हूंग और फिर हूण हो गया, जिनका एक कबीला ह्वांगहो नदी के किनारे रहा करता था, जिसे चीनी लोग ओर्दू कहा करते थे। उस जगह को आज भी ओदुस ही कहा जाता है। चीनी में ओर्दू का अर्थ है–घुमक्कड़। पहली सदी में ओदुसवासियों को चीनियों ने खदेड़ा तो हूणों के रूप में वे सभी मध्य एशिया चले गए। वहाँ ये लोग खेमों में रहा करते थे, जिनके लिए ओर्दू शब्द प्रचलित हो गया, जो पोलिश में होर्दा, जर्मन में होडे, फ्रांसीसी में होर्द और अंग्रेजी में होर्ड के रूप में मिलता है। यह इस बात का प्रमाण है कि उर्दू शब्द चीन से चलकर तुर्की होते हुए तुर्कों के साथ भारत आया और फौजी पड़ाव के लिए प्रयुक्त होते हुए ओर्दू से उर्दू होकर छावनी के बाजार के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। दिल्ली, गोरखपुर और गाजीपुर आदि में उर्दू, बाजार मिलते ही रहे हैं।

बाबर काल के कुछ सिक्कों पर 'उर्दू' शब्द लिखा मिलता है। शाहजहाँ के समय तक भी यह शब्द 'शाही फौजी पड़ाव' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ करता था। बाबर के काल में ही दिल्ली और मेरठ की जनभाषा खड़ी बोली का प्रयोग उर्दू बाजारों में होने लगा था। राजधानी आगरा होने पर ब्रजभाषा का उस पर प्रभाव पड़ा। हरियाणवी और पंजाबी ने भी उस पर अपना रंग जमाया। शाहजहाँ जब राजधानी को फिर से दिल्ली ले आया और लाल किले का निर्माण किया तो उसका नाम 'उर्दू–ए–मुअल्ला' पड़ा यानी श्रेष्ठ शाही पड़ाव। अब तक शाही पड़ाव की भाषा अपना एक रूप ले चुकी थी, जिसे 'जबान–ए–उर्दू–ए–मुअल्ला' कहा जाने लगा। शाहजहाँ के काल में एक स्थिर रूप मिलने के कारण इसे शाहजहानी उर्दू भी कहते हैं। 'जबान–ए–उर्दू–ए–मुअल्ला' नाम घिसते–बिसते सिर्फ उर्दू रह गया और शाहजहाँ के लगभग 50 साल बाद उर्दू भाषा में साहित्य रचना होने लगी। हिन्द की होने के कारण इसे हिन्दी भी कहा जाने लगा और कुछ लोग अरबी–फारसी शब्द बहुलता के कारण इसे रेख्ता भी कहते रहे।

उन्नीसवीं सदी के पहले चरण तक उर्दू के लिए हिन्दी, हिन्दवी और उर्दू शब्द चलता रहा और बीसवीं शताब्दी में यह हिन्दुस्तानी कहलायी जाती रही। संस्कृत या अरबी-फारसी शब्द बहुलता से मुक्त कर दें तो आज भी भारत से लेकर पाकिस्तान तक चलने वाली हिन्दी और उर्दू भाषाएँ एक ही हैं-हिन्दुस्तानी। हिन्दी और उर्दू के रूप में लिपियाँ जरूर अलग-अलग हैं, मगर कुछ अपवादों को छोड़कर दोनों का व्याकरण एक ही है और दोनों की जन्मभूमि भी हिन्दुस्तान ही ठहरती है, लेकिन एक होकर भी हिन्दी-उर्दू अब अलग-अलग स्वतंत्र भाषाएँ हैं।

दुनिया में प्रचलित लिपियों में अरबी का विशेष महत्त्व है, जो प्राचीन काल की सामी लिपि से विकसित हुई, जिसका प्राचीनतम् अभिलेख सन् 512 का उपलब्ध है। यह मुख्यत: मक्का, मदीना, दमिश्क, बसरा और कुफा में पली-बढ़ी। देवनागरी के उलट यह दाएँ से बाएँ लिखी जाती है। ईरान, अफगानिस्तान, मलेशिया और भारत समेत अरब देशों की यह लिपि एशिया की सीमाएँ लाँघकर अफ्रीका और यूरोप तक फैल गई, जहाँ इसमें कुछ संशोधन-परिवर्द्धन भी हुए। फारसी और उर्दू, कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, तुर्की आदि भाषाएँ इसी लिपि में लिखी जाती रही हैं, मगर फिर तुर्की ने इसकी बजाय रोमन अपना ली तो डोगरी और बोडो ने देवनागरी। ताजिकिस्तान में पहले अरबी लिपि चलती थी, लेकिन अब उन्होंने रूसी लिपि अपना ली है। सिंधी भाषा पाकिस्तान के सिंध और बलूचिस्तान में रहने वाले मुसलमानों और भारत के मुंबई, जयपुर, अजमेर, कच्छ तथा दिल्ली में रहने वाले सिंधी हिन्दुओं में बोली, समझी, पढ़ी और लिखी जाती है। सिंधी भाषा का प्राचीनतम् ग्रंथ 'महाभारत' माना जाता है, जिसकी रचना संस्कृत 'महाभारत' के आधार पर सन् 1000 के आस-पास हुई। चौदहवीं सदी से इसमें नियमित रूप से साहित्य रचना होने लगी। सिंधी का पुराना ग्रंथ शाहजी कृत 'रिसालो' बहुत पढ़ा जाता है। सिंधी की बोलियों में विचोली सिंध के मध्य में बोली जाती है। कच्छ में कच्छी चलती है। सिंधी को अरबी-फारसी लिपि में लिखा जाता है। वैसे सिंधी की पहली लिपि देवनागरी ही हुआ करती थी।

भारत के गुजरात राज्य की भाषा गुजराती है, जो गुर्जर जाति के यहाँ बस जाने से संबंधित है। वे लोग मूलत: शक थे, जो पाँचवीं सदी में भारत आए। पहले-पहल इन्होंने पंजाब और राजस्थान में डेरा जमाया, लेकिन मुसलमानों के आक्रमण के कारण ये गुजरात की ओर खिसकते गए। गुर्जर+त्राण से गुजरात बन गया। अब यहाँ सिर्फ गुर्जर नहीं हैं, बल्कि एक दर्जन से अधिक जातियों की मिश्रित संतानें यहाँ रहती हैं। 'गुजरात' शब्द का प्रयोग चाहे सन् 1000 के आस-पास शुरू हो गया था, लेकिन भाषा के रूप में गुजराती का अस्तित्व सत्रहवीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता, लेकिन भाषा धीरे-धीरे अपना रूप गढ़ती रही। तेरहवीं सदी में विनयचंद्र सूरि, चौदहवीं सदी में राजशेखर, पंद्रहवीं सदी में नरसी मेहता आदि अपनी रचनाओं से जनता में पैठ बना रहे थे, जो गुजराती साहित्य के आधार स्तंभ हैं। गुजराती लिपि देवनागरी से मिलती-जुलती और शिरोरेखाहीन है। कच्छ हालाँकि गुजरात का ही हिस्सा है, मगर यहाँ बोली जाने वाली कच्छी भाषा सिंधी का एक रूप है। भारत में कभी किसी सिंधीभाषी राज्य की जरूरत समझी गई तो वह निश्चित रूप से कच्छ होगा, जो आकार में देश के अनेक राज्यों से बड़ा है।

आधुनिक गुजराती साहित्य के सूत्रपात का श्रेय दलपतराय और नर्मदा शंकर को जाता है। नर्मदा शंकर ने 'करन घेला' नाम से पहला गुजराती उपन्यास लिखा, लेकिन गोवर्धनराम त्रिपाठी की कलम से निकले उपन्यास 'सरस्वतीचंद्र' को ही गुजराती के श्रेष्ठतम् उपन्यास के रूप में स्वीकृति मिली। कथा साहित्य के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठित गुजराती लेखक कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हैं। काका कालेलकर और महात्मा गाँधी ने भी अच्छा गुजराती गद्य लिखा और सुंदरम् तथा उमाशंकर जोशी श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। पन्नालाल पटेल को गुजराती लेखन के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था।

राजस्थान की भाषा राजस्थानी का कोई ऐसा मानक रूप नहीं है, जो पूरे राजस्थान में चलता हो। वैसे राजस्थान की भाषाओं और बोलियों के सामूहिक संबोधन के लिए राजस्थानी शब्द प्रचलित है। पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और उदयपुर में मारवाड़ी चलती है। उत्तरी-पूर्वी राजस्थान के अलवर, भरतपुर और हरियाणा के गुड़गाँव तक मेवाती और अहोरवाटी का राज है। मध्य-पूर्व राजस्थान में भी अनेक बोलियाँ हैं तो दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में मालवी और निमाड़ी का साम्राज्य है। ऐसे में राजस्थानी का मानक रूप किसे मानें? बहरहाल, लिखी यह देवनागरी लिपि में ही जाती है और इसके चंदबरदाई और मीरां जैसे कवि हिन्दी के भी कवि माने जाते हैं।

पंजाबी भाषा मुख्यत: पंजाब राज्य में बोली जाती है। पंजाब शब्द फारसी का है। जिसका अर्थ है-पाँच नदियों का पानी। भारत का पंजाब और पाकिस्तान का पंजाब इस भाषा के प्रमुख क्षेत्र हैं। यों यह दिल्ली तथा देश के हर उस हिस्से में बोली-समझी जाती है, जहाँ पंजाबी रहते हैं। भारत में इसकी लिपि गुरुमुखी है और पाकिस्तान में अरबी-फारसी। पंजाबी साहित्य का आरंभ बारहवीं सदी से शुरू

होता है। इसके प्रथम कवि बाबा फरीद हैं। नानक और वारिस शाह का साहित्य जन-जन के गले का हार है। प्राचीन काल से ही पंजाब का इतिहास उपलब्ध है। ई.पू. 522 में फारस के शासक डेरियस और ई.पू. 326 में सिकंदर ने पंजाब को जीता। बाद में चंद्रगुप्त मौर्य ने इसे अपने अधीन किया। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद कई लोगों ने पंजाब पर शासन किया। बाद में बाबर आया। मुगल साम्राज्य के बाद नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब को लूटा। पंद्रहवीं सदी में आधुनिक पंजाब की नींव पड़ी और सन् 1932 में पंजाब राज्य की स्थापना हुई। भारत-पाक विभाजन में आधा पंजाब पाकिस्तान के हिस्से में चला गया और भारतीय राज्यों के पुनर्गठन के समय रहे-सहे आधे पंजाब से ही हरियाणा और हिमाचल निकले। सौरसेनी अपभ्रंश से ग्यारहवीं सदी में विकसित हुई पंजाबी भाषा को सिक्ख गुरुओं ने गुरुमुखी लिपि प्रदान की। पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी पंजाबी भाषा और साहित्य के लिए स्वर्णकाल मानी जाती है। इस काल की ज्यादातर रचनाएँ 'आदिग्रंथ' में संग्रहीत हैं, जो मूलत: भक्तिकाव्य हैं और जिसे सिक्ख अपना पवित्र ग्रंथ मानते हैं। पंजाबी साहित्य में आधुनिक युग की शुरुआत सन् 1800 के आस-पास होती है। सन् 1852 में जन्मे भाई वीरसिंह पंजाबी साहित्य को वैसी ही गरिमा प्रदान करते हैं, जैसी हिन्दी को भारतेंदु हरिश्चंद्र। सन् 1854 में पंजाबी शब्दकोश छपता है तो राष्ट्रीय काव्य धारा का उन्मेष करते हैं गुरुमुख सिंह मुसाफिर और हीरा सिंह दर्द। समकालीन पंजाबी रचनाकारों में मोहन सिंह, नानक सिंह, अमृता प्रीतम, कर्तारसिंह दुग्गल, हरभजन सिंह, जसवंत सिंह विरदी, अजीत कौर, रामसरूप अणखी और दलीप कौर टिवाणा महत्त्वपूर्ण हैं। अमृता प्रीतम को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था। हरियाणा की राजभाषा यद्यपि हिन्दी है, पर यहाँ की बोली में थोड़ा फर्क है। राजस्थान से लगे इसके मेवात क्षेत्र की बोली मेवाती है, जो राजस्थानी से संबंधित मानी जाती है। बृज से लगे क्षेत्र पर बृजभाषा और वाकी पर खड़ी बोली का प्रभाव है। वैसे यह पश्चिमी हिन्दी की बोली बांगरू का क्षेत्र है। महाभारत इसी के कुरुक्षेत्र में लड़ा गया, जहाँ अब कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय है। पानीपत के प्रसिद्ध युद्धों ने कभी भारत राष्ट्र राज्य की किस्मत का फैसला किया था।

भारत के पश्चिम बंग और बांग्लादेश में बाँग्ला बोली जाती है। भारत के हिन्दीभाषी क्षेत्रों में जैसे तुलसीदास की 'रामचरित मानस' जन-जन के गले का हार है, वैसे ही पश्चिम बंग तथा बाँग्लादेश के हिन्दुओं के बीच 'कृत्तिवास रामायण' प्रचलित है। चंडीदास प्रसिद्ध कवि हैं। बाद में चैतन्य महाप्रभु ने बाँग्ला साहित्य को प्रभावित किया। उन्नीसवीं सदी में आधुनिक बाँग्ला गद्य ने अपना आधार बनाया। सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना एक युगांतरकारी घटना सिद्ध हुई। विलियम कैरे ने बाँग्ला व्याकरण ही नहीं लिखा, उसने अंग्रेजी-वाङ्ला शब्दकोश भी बनाया। इसी समय माइकेल मधुसूदन दत्त का 'मेघनाद वध' पहला आधुनिक महाकाव्य लिखा गया तो बंकिम बाबू का पहला उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' भी आया, जिसने भारत की सारी भाषाओं को प्रभावित किया। बाद में 'आनंद मठ' जैसा उपन्यास लिखकर बंकिम बाबू सारे भारत के अग्रणी साहित्यकार बन गए। फिर शरत् बाबू ने उपन्यास लिखकर तहलका मचा दिया। रवींद्रनाथ ठाकुर को 'गीतांजलि' के लिए नोबेल पुरस्कार मिला तो बाँग्ला साहित्य ने विश्व के साहित्यिक क्षितिज पर अपनी महत्ता प्रदर्शित कर दी। बाँग्ला को ताराशंकर बंद्योपाध्याय, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय, माणिक बंद्योपाध्याय, शंकर और समरेस बसु जैसे कथाकार मिले तो जीवनानंद दास, काजी नजरूल इस्लाम जैसे महाकवि भी। ताराशंकर के उपन्यास 'गणदेवता' को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित होने का गौरव मिला, लेकिन विभाजन के कारण भारत और बाँग्लादेश के बाँग्ला साहित्य की पूरी तस्वीर एक साथ नहीं उभर पाती। ऐसा ही पंजाबी के साथ भी है।

भारत के ओड़िशा प्रांत में ओड़िया बोली जाती है, जो संस्कृत के बहुत निकट पड़ती है। सारला दास इस भाषा में वैसे ही प्रिय हैं, जैसे संस्कृत में व्यास, वाल्मीकि और कालिदास तथा हिन्दी में तुलसी, सूर और कबीर। संस्कृत अवलंबित ओड़िया छोड़कर सरल भाषा में ओड़िआ साहित्य लिखने वालों में बलराम दास, जगन्नाथ दास और अच्युतानंद दास प्रसिद्ध हुए। चैतन्य महाप्रभु और जयदेव का असर भी ओड़िआ पर पड़ा। आधुनिक ओड़िआ साहित्य में फकीर मोहन सेनापति का वही स्थान है, जो आधुनिक हिन्दी में भारतेंदु हरिश्चंद्र का। इसके बाद राधानाथ, गोपबंधु दास, बैकुंठनाथ पटनायक, कालिंदीचरण पाणिग्रही, गोपीनाथ मोहंती, प्रतिभा राय और गौरहरि दास ने ओड़िया साहित्य को आगे बढ़ाया। मोहंती को आदिवासी जीवन का चितेरा माना जाता है। उनके उपन्यास 'माटी मटाल' को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला तो प्रतिभा राय को मूर्तिदेवी पुरस्कार प्रदान किया गया।

भारत की राजभाषा हिन्दी है, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसी लिपि का प्रयोग संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के लिए भी होता है। आधुनिक भाषाओं में हिन्दी के अलावा मराठी, नेपाली, डोगरी तथा शिरोरेखा हीन गुजराती आदि भाषाएँ भी देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती हैं। ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली गुप्त लिपि, उससे

कुटिल लिपि और कुटिल लिपि से आठवीं शताब्दी में प्राचीन देवनागरी लिपि का विकास हुआ। प्राचीन देवनागरी से ही आधुनिक देवनागरी; गुजराती; मैथिली, बाँग्ला, असमिया और ओड़िया लिपियों का विकास हुआ, लेकिन देवनागरी नाम पर विवाद है। कुछ लोग गुजरात के नागर ब्राह्मणों में सर्वप्रथम इसका प्रचलन होना इसे नागरी नाम मिलने का कारण मानते हैं। देव नगरों की लिपि होने के कारण यह देवनागरी कही जाने लगी। देव नगरी काशी में सर्वप्रथम प्रचलित होने के कारण यह देवनागरी हुई, ऐसा माननेवालों की भी कमी नहीं है। देवनागरी लिपि और हिन्दी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि और भाषा मानी जाती है, क्योंकि यह जैसी लिखी जाती है, वैसी ही पढ़ी जाती है।

'हिन्दी' शब्द की उत्पत्ति हिन्दी (फारसी) से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है भारतीय। अरबी और फारसी में कई जगह इसे इसी अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। संस्कृत समेत भारत की और भी कई भाषाओं को पहले हिन्दी कहकर ही पुकारा जाता था। उत्तर भारत में हिन्दी को 'भाषा' कहा जाता है और दक्षिण भारत में दिक्खनी। उर्दू और हिन्दी का व्याकरण एक है, सिर्फ अरबी-फारसी और संस्कृत के दबाव, प्रभाव और अलग लिपियों के कारण वे दो भाषाएँ हैं, वरना प्रेमचंद की भाषा हिन्दी है और उर्दू भी।

दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली यों तो आज मानक हिन्दी का रूप धर कर भारत की राजभाषा है, जो एक तरह से अब किसी की भी मातृभाषा नहीं है, मगर एक बोली विशेष के रूप में देखा ही जाए तो यह मेरठ, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद, दिल्ली, सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, देहरादून, हरिद्वार से लेकर अंबाला तक में बोली जाती है और कह सकते हैं कि यह यहाँ के लोगों की मातृभाषा है। दिल्ली के प्रभाव क्षेत्र के चलते फरीदाबाद और गुड़गाँव तक के हरियाणा में अब प्राय: खड़ी बोली ही चलने लगी है और ब्रज के काफी हिस्से को भी खड़ी बोली ने अपने प्रभाव में ले लिया है। यह भाषा मुगल साम्राज्य के साथ यहाँ से चलकर दक्षिण, खासकर बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, हैदराबाद आदि में प्रचलित होकर दक्खिनी कहलाई और फिर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। इसे दक्खिनी हिन्दी ही कहना और मानना चाहिए। दक्खिनी भाषा मूलत: हिन्दी का ही एक रूप थी। चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी में दिल्ली-मेरठ के आस-पास प्रचलित जन भाषा को मुगलों ने अपना लिया और अमीर खुसरो और मसऊद ने अपनी रचनाएँ दक्खिनी में ही लिखीं।

पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी में फौज के साथ यह भाषा दक्षिण भारत पहुँची और वहाँ प्रचलित हो गई। इस भाषा में व्रज, अवधी और पंजाबी के वहुत से शब्द शामिल हैं। एक प्रकार से यह मिश्रित भाषा है। कवीर जैसे संत कवियों की रचनाएँ इसी भाषा में हैं। अठारहवीं सदी तक दक्षिण में इस भाषा को राज्याश्रय प्राप्त रहा, जिससे इसमें अनेक ग्रंथ लिखे गए। इसी भाषा में लिखी गई बंदानवाज की कृति 'मिराजुल आशिकीन' खड़ी बोली हिन्दी की पहली कृति मानी जाती है। दक्खिनी से ही उर्दू का जन्म हुआ और यही हिन्दी की भी आधार भूमि है। दक्खिनी के अंतिम कवि वली (सन् 1700 ई.) को उर्दू का प्रथम कवि माना जाता है। दक्खिनी फारसी लिपि में लिखी जाती थी। इसलिए उर्दू की जननी वह स्वभावत: है, लेकिन उसकी शब्दावली भारतीय परंपरा में है और आगे चलकर देवनागरी लिपि में लिखी जाने पर दक्खिनी की परिवर्तित काया ही साहित्यिक हिन्दी और स्वतंत्र भारत में इसकी राजभाषा बन गई। यहाँ ध्यान देने की खास बात यह है कि दिल्ली-मेरठ की भाषा दक्षिण भारत जाकर ही साहित्यिक भाषा के रूप में निखरी और राजभाषा बनी है।

हिन्दी भाषा के आदिकाल में गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह और चंदवरदाई अपनी रचनाएँ लेकर सामने आते हैं। मध्यकाल में जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, केशव, विहारी तथा देव हैं तो आधुनिक काल में भारतेंदु, रामचंद्र शुक्ल, गुलेरी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रसाद, पंत, निराला, प्रेमचंद, अज्ञेय, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, यशपाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, जैनेंद्र, दिनकर, रेणु, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा और नामवर आदि ने अपनी मेधा से हिन्दी साहित्य को जगमगा दिया है।

भारत में हिन्दी आठ-दस राज्यों की राजभाषा भर नहीं है, यह अब सबकी भाषा है, राजभाषा। यही भारत की संपर्क भाषा भी है। सारा संसार जैसे अंग्रेजी के प्रभाव में है, वैसे ही देश और दुनिया का बड़ा हिस्सा हिन्दी के प्रभाव में है। संयुक्त राष्ट्र ने भी अपनी छ: स्वीकृत भाषाओं-अरबी, अंग्रेजी, मंदारिन (चीनी), फ्रेंच, रसियन और स्पैनिश के साथ अब छ: और भाषाओं-हिन्दी, बाँग्ला, उर्दू, स्वाहिली, फारसी और पुर्तगाली को स्वीकृति प्रदान कर दी है, जिनमें भारत की तीन भाषाएँ शामिल हैं, जिनमें से दो पाकिस्तान और बाँग्लादेश की भी राजभाषाएँ हैं। भारत की कोशिशों के चलते अंतत: उसके बहुभाषावाद प्रस्ताव को संयुक्त राष्ट्र ने स्वीकार किया, जिसका लाभ पड़ोसी देशों को भी मिल गया।

सी-69, उपकार अपार्टमेंट मयूर विहार,
फेज-1, विस्तार, दिल्ली-110091

हिंदी और गुजराती : अनुबंध की यात्रा

– विष्णु पण्ड्या

रुकी नहीं, थकी नहीं ऐसी एक यात्रा होती है भाषा के अनुबंध की। गुजराती और हिंदी भाषा के ऐसे अनेक पड़ाव हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, गुज्जर और बहती हुई नदी जैसी हिंदी। ऐसा कोई समय नहीं रहा कि कसौटी नहीं आई हो। विदेशी आक्रान्ता आए, उन्हें केवल देवालय नष्ट करना और राज्यों पर विजय पाना इतना ही लक्ष्य नहीं था, हमारी भाषा, पर्व, जीवन शैली, उपासना सभी को समाप्त करने की लालसा के साथ वे आए। उन्होंने संस्कृत भाषा को नष्ट करने का प्रयास किया। संस्कृत केवल विद्वानों की सीमित भाषा का पिंजरा बन कर रह पाए ऐसे प्रयास भी हुए। मुगलों ने फारसी, उर्दू को राजभाषा बना दिया। अदालतों की कार्यवाही में आज भी उर्दू का प्रभाव दिखाई देता है। पश्चिम के विद्वानों ने संस्कृत के शास्त्रों, कला, साहित्य को विकृत संशोधन में बदलने का काम किया। वे चाहते थे कि लार्ड मेकाले की भारत में ऐसी शिक्षा प्रणाली हो, जो पश्चिम के गोरे बाबू की जगह काले बाबू सर्वोच्च बने और पश्चिमीकरण हो। और ये प्रयास सफल रहा। विकृत इतिहास इसका उदहारण है।

ऐसे दिनों में अपनी भाषाओं ने समाज को स्वाधीन, संस्कृति-प्रेमी, श्रेष्ठ बने रहने की प्रेरणा दी। हिंदी और उनकी सहेली भाषाओं ने ये कार्य न केवल उत्तर भारत में, लेकिन पूरे देश में किया है। उसमें हमारे संत, साधु, भजनिक, शिक्षक, समाजसेवी, दार्शनिक वर्ग का बहुत बड़ा प्रदाय रहा। गुजरात और गुजराती भाषा के साथ अयोध्या के तुलसीदास का रामचरित मानस उतना ही प्रचलित है, जितना गुजराती भाषा का भक्ति साहित्य। छोटे से गाँव में अशिक्षित माता अपने बच्चों को बालकाण्ड सुनती हैं और भगवान राम के 'राम लला' का दर्शन कराती हैं। राजस्थान से पद यात्रा करती हुई मीरा बाई द्वारिका पहुँचीं और पूरे गुजरात में उनके भजन छा गए। 'पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।' और 'प्रभु जी, तुम चन्दन, हम पानी' ये हिंदी स्वर गुजरात ने कब के आत्मसात कर लिए। उसी सूरदास, कबीर, रसखान की रचनाएँ भी। नरसिंह मेहता तो गुजराती नागर परिवार में जन्मे थे। जूनागढ़ में निवास, भक्ति के रास्ते पर चले, तो भक्ति संगीत का माध्यम अपनाया। मात्र गुजराती भाषा तक वे सीमित नहीं रहे। हिंदी में भी भजनों की रचना की। हमारे लोकसाहित्यकार झवेरचंद मेघाणी ने तो हिंदी सहित सभी भाषाओं में लोकगीत, भजन, लोरी, कथागीत में कितना साम्य है इसका अध्ययन और संशोधन किया है **(सन्दर्भ : लोकसाहित्य: धरती नु धावण, 12, गुजरात साहित्य अकादमी)**

गुजराती कवियों में हिंदी का प्रभाव निरंतर रहा, कुछ कवियों ने हिंदी भाषा में और ब्रज भाषा में रचना भी की। अयोध्या से गुजरात आए स्वामी सहजानंद ने समग्र गुजरात में भ्रमण किया और दलित, पिछड़े समुदाय को भक्ति के रास्ते पर प्रेरित किया। स्वामीनारायण संप्रदाय का उदय हुआ। उनके वचनामृत से भक्ति साहित्य की रचना हुई। उनमें बहुत सी हिंदी में हैं और सामान्य गुजराती नागरिक भी भलीभाँति अनुभव करता है।

गुजरात से हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्व की भूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वती की रही। सौराष्ट्र के टंकारा गाँव में ब्राह्मण परिवार में जन्मे मूळशंकर करशनजी त्रवाडी युवा वय में संन्यास के लिए निकल पड़े। 1847 में महाराष्ट्रीयन साधु पूर्णानन्द से दीक्षा ली, 1857 में वे नानासाहेब पेशवा, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, तात्या टोपे से मिले। उन दिनों का विप्लव नारा था, 'कंपनी किसकी जोरू? सिंधिया किस का साला? पी प्याला, मार भाला'। हिंदी का उपयोग सत्तावन के संग्राम को व्यापक बनाने के लिए हुआ, उस में परिभ्रमण कनेवाले साधुओं का महत्त्वपूर्ण प्रदाय था। स्वामी दयानंद ने तभी समग्र देश में क्रांति यात्रा की, हिंदी में प्रबोधन किए, उनका 'सत्यार्थ प्रकाश' भी हिंदी में प्रकाशित हुआ।

स्वातंत्र्य संग्राम के दौरान गुजरात में गाँधी जी ने हिंदी को संग्राम की

पद्मश्री विभूषित गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ संपादक, साहित्यकार

भाषा में परिवर्तित किया। सरदार वल्लभ भाई ने हिंदी का कोई विधिवत अभ्यास नहीं किया था फिर भी बारडोली सत्यागह में और स्वतंत्रता के बाद भी हिंदी का अपने ढंग से उपयोग किया। गुजरात के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस राष्ट्रीय अध्यक्ष बने थे, अपना अध्यक्षीय भाषण हिंदी में ही दिया था।

गुजरात की धरती पर 1968 में कच्छ सत्याग्रह हुआ था। पाकिस्तान को कच्छ की हरियाली का छा प्रदेश देने का भारत सरकार ने स्वीकार किया उसके खिलाफ एक महीने तक छा बेत तक जाने का सत्याग्रह हुआ उसमें बेरिस्टर नाथपाई, मधु लिमये, एन.जी. रंगा, हेम बरुआ, राजनारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, राजमाता विजयाराजे सिंधिया, महारानी गायत्री देवी, बलराज मधोक जैसे दिग्गज उपस्थित रहे। पूरे कच्छ में जनचेतना जगाने के लिए इन सभी नेताओं ने हिंदी में ही अपने भाषण दिए। भुज की देर रात तक चली जनसभा में अटल बिहारी वाजपेयी अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में देश–दर्शन का हिंदी गद्य काव्य प्रस्तुत करते थे वह आज भी मुझे याद है। बोलते थे अटल जी, और भावात्मक माहौल में लोग सुनते थे।

'यह देश कोई जमीं का टुकड़ा नहीं है, यह तो जीता–जागता राष्ट्रपुरुष है। हिमालय जिसका मस्तक है, गौरीशंकर शिखा है। कश्मीर जिस का किरीट है, पंजाब और बंगाल विशाल कंधे हैं। दिल्ली जिसका दिल है, विन्ध्याचल जिसकी कटि है। नर्मदा करधनी है, पूर्वी घाट और पश्चिम घात जिसके पंजे हैं। सागर जिसके चरण धुलाता है, मलायागिर जिस पर पंखा डुलाता है। सावन के काले मेघ जिस की केश राशि है। यह देवताओं की भूमि है, यह ऋषियों की, मुनियों की, तीर्थंकरों की, अभ्यांकरों की भूमि है। यह तर्पण की भूमि है, अर्पण की भूमि है। इसका कंकर–कंकर हमारे लिए शंकर है। इसका कण–कण हमारे लिए पवित्र है। इस का जन–जन हमें प्यारा है। यह विराट राष्ट्रपुरुष खड़ा है शताब्दियों की पूँजी को सँजोता हुआ। हम उसके लिए जिएँगे, हम उस के लिए मरेंगे। मरने के बाद जब हमारी हड्डियाँ गंगा के प्रवाह में बहेगी तो सुनाई देगी ये आवाज–'भारत माता की जय!'

गुजरात में हिंदी के ऐसे अनेक पड़ाव हैं, जो साहित्य, समाज, धर्म, संस्कृति और राजनीति–सभी का दर्शन करते हैं।

501/ ए, कासाव्यौमा, सरकारी
बसाहट रोड, अउदा के सामने,
अहमदाबाद –382052 (गुजरात)
मो.–9427804722

सभी भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपी आवश्यक है तो वो देवनागरी ही हो सकती है

– जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर

अटूट है हिंदी-बाँग्ला भाषाओं का अंतर-संवाद

- कृपाशंकर चौबे

हिंदी और बंगाल के बीच संवाद का बहुत पुराना इतिहास है। हिंदी गद्य का जन्म 1800 ई. में स्थापित कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज में हुआ। लल्लू लालजी ने 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'चंद्रावली' की रचना कलकत्ता में ही की। बंगाल के साथ हिंदी का एक अटूट संबंध तभी से कायम है। हिंदी की बहुविध सेवा करनेवाले बाँग्लाभाषियों की एक लंबी सूची है। भारतीय प्रेस के जनक राजा राममोहन राय ने बंगाल में 19वीं सदी के प्रारंभ में सामाजिक नवजागरण लाने के लिए पत्रकारिता को माध्यम बनाया था। राजा राममोहन राय ने 10 मई 1829 को साप्ताहिक 'बंगदूत' निकाला। इसमें हिंदी, बाँग्ला तथा फारसी का प्रयोग किया जाता था। यह साप्ताहिक 82 दिनों तक ही चल पाया किंतु इसका प्रबुद्ध जगत में पर्याप्त स्वागत हुआ। राममोहन राय ने विधवा पुनर्विवाह एवं संपत्ति में स्त्रियों के अधिकार समेत महिलाओं के अधिकार के पक्ष में अभियान चलाया। उनके अथक प्रयास से ही 1829 में कानून बनाकर सती प्रथा को अवैध करार दिया गया।

राजा राममोहन राय द्वारा लाए जा रहे उस नवजागरण के परिवेश में ही कलकत्ता में हिंदी पत्रकारिता का जन्म हुआ जब हिंदी का पहला अखबार 'उदंत मार्तंड' 30 मई 1826 को कलकत्ता से युगल किशोर शुक्ल ने निकाला। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल की शिक्षा पद्धति में महत्त्वपूर्ण सुधार कर बंगाल के पुनर्जागरण में अमूल्य योगदान करनेवाले ईश्वरचंद्र विद्यासागर हिंदी के प्रबल हिमायती थे। वे हिंदी के अच्छे जानकार भी थे। उन्होंने हिंदी 'बेताल पचीसी' का बाँग्ला में अनुवाद किया था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में जब हिंदी पढ़ाई जाने लगी तो विद्यासागर वहाँ हिंदी के परीक्षक नियुक्त किए जाते थे। हिंदी प्रेम के कारण ही विद्यासागर की भारतेंदु हरिश्चंद्र से मैत्री हुई थी। विद्यासागर की माँ भगवती देवी जब काशी गईं तो वहाँ उनकी देखभाल का जिम्मा उन्होंने भारतेंदु को ही सौंपा था। विद्यासागर तथा भारतेंदु की मैत्री दरअसल बाँग्ला नवजागरण और हिंदी नवजागरण की अंतर्क्रिया का एक दृष्टांत भी थी। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का दुर्लभ उत्तर भारतीय संस्करण भारतेंदु से ही प्राप्त किया था और 1855 में 'शकुंतला' नामक किताब संपादित की। भारतेंदु ने विद्यासागर से प्रभावित होकर एक मुकरी लिखी थी-

'सुंदर वाणी कहि समुझावै। विधवागन सों नेह बढ़ावै।

क्षमानिधान परमगुन आगर। सखि सज्जन नहिं विद्यासागर।'

जिस तरह हिंदी का पहला साप्ताहिक 'उदंत मार्तण्ड' कलकत्ता से 30 मई 1826 को युगल किशोर शुक्ल द्वारा प्रकाशित किया गया, उसी तरह हिंदी का पहला दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' भी कलकत्ता से ही 8 जून 1854 को निकला जिसके संपादक मूलत: बाँग्लाभाषी श्याम सुंदर सेन थे। वह अखबार हिंदी-बाँग्ला भाषा सेतु बंधन का अनोखा उदाहरण था। यह हिंदी और बाँग्ला दोनों में निकलता था। आरंभ के दो पृष्ठ हिंदी में और बाकी पृष्ठ बाँग्ला में निकलते थे। वह अखबार रविवार को छोड़कर प्रतिदिन निकलता था। इसका आकार 18 गुणा 12 इंच था। हर पृष्ठ चार कालम में बँटा होता था। 'समाचार सुधावर्षण' का मासिक मूल्य दो रुपए, सालाना चौबीस रुपए, पेशगी सालाना बीस रुपए और छ: महीने की पेशगी दस रुपए था। यह अखबार 1873 तक निकला। उस जमाने में इतने दिनों तक किसी दैनिक अखबार का निकलना ही अपने-आप में एक बड़ी बात थी। 'समाचार सुधावर्षण' की विषय वस्तु समृद्ध थी और इसकी भाषा भी अपेक्षाकृत परिष्कृत थी। 1854 से 8 जनवरी 1956 तक पहले पृष्ठ में ही अग्रलेख छपता था। विज्ञापन बढ़ जाने के कारण अग्रलेख दूसरे, तीसरे या चौथे पृष्ठ पर छप जाया करता था। देश-विदेश के रोचक समाचारों के साथ ही युद्ध विवरण इसमें छपता था। अंग्रेजों के अनैतिक आचरण की भी बेबाक आलोचना की जाती थी। श्याम सुंदर सेन भारतीय समाचार पत्रों की आजादी के अनन्य सेनानी थे। 1857 के सिपाही विद्रोह में मीडिया की भूमिका की जब भी चर्चा होगी तो श्याम सुंदर सेन का उल्लेख अनिवार्यत: आएगा। 'समाचार

प्राध्यापक, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय, वर्धा, लेखक

सुधावर्षण' ने लगातार ब्रिटिश सेना के अत्याचारों की खबर साहस के साथ प्रकाशित की। 26 मई 1857 के अंक में अखबार ने लिखा– 'हाल ही में अंग्रेजों ने हमारे धर्म को नष्ट करने का प्रयास किया। अत: ईश्वर उन पर क्रुद्ध है। ऐसा आभास मिलता है कि ब्रिटिश साम्राज्य का अब अंत आ गया। जब दास मालिक को जवाब देने लगता है तब समझ लो मालिक का अंत निकट है। साम्राज्य पर जब संकट पड़ा तब गवर्नर ने अनेक वायदे किए। लेकिन विद्रोही सेना का उन वायदों पर कोई विश्वास नहीं। वे युद्ध को समाप्त करने के पक्ष में नहीं। सच्ची बात तो यह है कि युद्ध में दम आ रहा है और अनेक क्षेत्रों की जनता सेना में मिल रही है।' **(1. अनुजा, डॉ. मंगला (1996). भारतीय पत्रकारिता : नींव के पत्थर, भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ.-72)**

दिल्ली के अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर ने जब 25 अगस्त 1857 को घोषणा पत्र जारी किया तो उसे भी श्यामसुंदर सेन ने प्रमुखता से प्रकाशित किया। वह घोषणा पत्र भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम का विरल दस्तावेज है। उस घोषणा पत्र में बहादुर शाह जफर ने कहा था–'खुदा ने जितनी बरकतें इंसान को अता की हैं, उसमें सबसे कीमती बरकत आजादी है। क्या वह जालिम फिरंगी जिसने धोखा देकर हमसे यह बरकत छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रखेगा? क्या खुदा की मर्जी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं, कभी नहीं, फिरंगियों ने इतने जुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज हो चुका है। यहाँ तक कि हमारे पाक मजहब का नाश करने की नापाक ख्वाहिश भी उनमें पैदा हो गई है। क्या तुम अब भी खामोश बैठे रहोगे? खुदा यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि खुदा ने हिंदुओं–मुसलमानों के दिलों में उन्हें मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश पैदा कर दी है और खुदा के फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्द ही अंग्रेजों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिंदुस्तान में उनका जरा भी निशान न रह जाएगा। हमारी फौज में छोटे और बड़े की तमीज भुला दी जाएगी और सबके साथ बराबरी का बर्ताव किया जाएगा क्योंकि इस पाक जंग में अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे, वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई हैं। उनमें छोटे–बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं अपने तमाम हिंदू भाइयों से कहता हूँ–उठो और ईश्वर के बताए इस परम कर्तव्य को पूरा करने के लिए मैदान ए जंग में कूद पड़ो।' **(2. शंभुनाथ (सं.) (2008)1857, नवजागरण और भारतीय भाषाएँ आगरा : केंद्रीय हिंदी संस्थान पृ.-228)**

1857 में ही लार्ड केनिंग ने लेखन व मुद्रण की आजादी पर अंकुश लगाने के लिए एडम रेगुलेशन लगा दिया था। उसी के तहत समाचार सुधावर्षण पर मुकदमा चला। लेकिन श्यामसुंदर सेन ने तर्क दिया कि उस समय तक भारत का वैधानिक शासक मुगल बादशाह था और जिसे देश का शासक माना जाता हो, उसके फरमान को छापना देशद्रोह की तकनीकी परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता। इस घटना के बाद भी श्यामसुंदर सेन जहाँ भी अंग्रेज सरकार का प्रतिकार हो रहा रहा था, उसके समाचार 'समाचार सुधावर्षण' में छापते रहे।

अमृतलाल चक्रवर्ती बाँग्लाभाषी होते हुए भी हिंदी के अनन्य सेवी थे। कुछ दिन कालाकांकर से प्रकाशित राजा रामपाल सिंह के पत्र 'हिन्दोस्थान' में उप संपादक रहे। कालाकांकर से वे कोलकाता गए जहाँ उन्होंने क़ानून की डिग्री ली, लेकिन वकालत में नहीं गए। योगेंद्रचंद्र बसु ने 1890 में जब 'हिंदी बंगवासी' निकाला तो उसके संपादन का दायित्व अमृतलाल चक्रवर्ती को सौंपा। 'हिंदी बंगवासी' को निकले एक साल ही हुआ था कि अंग्रेज सरकार ने एज आफ कांसेंट बिल पारित कर दिया। अमृतलाल चक्रवर्ती ने हिंदी बंगवासी में इसका पुरजोर विरोध किया। सरकार ने उनपर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। उन्हें तीन दिनों तक जेल में रहना पड़ा। इस घटना से 'हिंदी बंगवासी' की प्रसिद्धि बढ़ गई। इसकी प्रसार संख्या और बढ़ गई। अमृतलाल चक्रवर्ती दस वर्षों तक हिंदी बंगवासी के संपादक रहे। बांग्ला भाषा के महाभारत का अनुवाद हिंदी बंगवासी ने छापकर खासी लोकप्रियता बटोरी। सबसे बड़ी बात यह है कि पूरे अखबार की वर्तनी एक होती थी। अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है– पत्रकारिता का प्राथमिक विद्यालय था हिंदी बंगवासी। पत्रकार के लिए भाषा की एकरूपता पहली आवश्यकता है। एक शब्द जिस रूप में एक जगह लिखा गया है, उसी रूप में सर्वत्र लिखा जाना चाहिए। यह बात हिंदी बंगवासी में कुछ दिन काम करने से आ जाती थी।

बालमुकुंद गुप्त जब भारतमित्र के संपादक बने तो अमृतलाल चक्रवर्ती को वहाँ ससम्मान ले गए। अमृतलाल चक्रवर्ती 1907 से 1910 तक भारत मित्र के संपादक रहे। अमृतलाल चक्रवर्ती ने मासिक उपन्यास कुसुम, कलकत्ता समाचार, श्री सनातन धर्म, फारवर्ड, निगभागम चंद्रिका, उपन्यास तरंग और श्रीकृष्ण संदेश पत्रों में भी काम किया। अमृतलाल चक्रवर्ती ने चालीस वर्षों तक हिंदी पत्रकारिता की सेवा की। उस समय के हिंदी सेवी किन कठिनाइयों में काम करके राष्ट्र भाषा का ध्वज उठाए रहते थे, इसकी एक झलक अमृतलाल जी के जीवन से मिलती है। उन्हें 1925 में वृंदावन के सोलहवें अखिल

भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाया गया था। उस समय उनके पास न तो किराए के पैसे थे, न पहनने के ठीक कपड़े। बड़े आग्रह पर मतवाला संचालक महादेव प्रसाद सेठ से उन्होंने कुछ आर्थिक सहायता स्वीकार की किंतु इस शर्त पर कि वे बदले में उनका कोई काम कर देंगे।

अमृतलाल चक्रवर्ती ने कहा था–दरिद्रता मेरी चिरसंगिनी है, जिसका बड़ा लाड़ला है स्वाभिमान और छोटी लाड़ली है भावुकता। शिवपूजन सहाय द्वारा सरस्वती में लिखी गई उनकी जीवनी के मुताबिक अमृतलाल चक्रवर्ती के पास हमेशा दो धोती और दो पंजाबी कुर्ता ही होता था। ओढ़ने के लिए एक फटा–पुराना कंबल और बिछाने के लिए एक टूटी चटाई के अलावा कुछ न था। अमृतलाल चक्रवर्ती की वह कोरी भावुकता ही तो थी कि राजपूताने की आठ सौ रुपए की मिल की मैनेजरी छोड़कर चंद रुपए की अखबारनवीसी की लेकिन पत्रकारिता भी उन्होंने अपनी शर्तों पर की। समाचार पत्रों के संचालकों की स्वेच्छाचारिता को उन्होंने कभी बर्दाश्त नहीं किया और उनके जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आए कि नौकरी को लात मारकर उन्होंने अपने स्वाभिमान की रक्षा की। मणिमय के यशस्वी संपादक राम व्यास पांडेय ने लिखा है कि यदि अमृतलाल चक्रवर्ती राष्ट्रभाषा हिंदी को छोड़कर अपनी मातृभाषा बाँग्ला में लिखते तो बंगाली उन्हें कंगाली न होने देते। चक्रवर्ती जी यदि चाहते तो वकालत के द्वारा पैसे का पहाड़ खड़ा कर लेते और एक अदद नौकरी के लिए उन्हें दर–दर न भटकना पड़ता। न पत्नी का सोने का हार बेचना पड़ न उन्हें साग–सब्जी भी बेचनी पड़ती और गाँव के लोग उन्हें कुजाति छाँटने की धमकी भी न देते। **(3. मिश्र, डॉ. कृष्णबिहारी पांडेय, राम व्यास (सं.) (1983). हिंदी साहित्य : बंगीय भूमिका. कोलकाता : मणिमय पृ.–102)** अभावों में भी अमृतलाल चक्रवर्ती ने अपनी अखंड शब्द साधना को मद्धिम न पड़ने दिया।

जस्टिस शारदा चरण मित्र (17 दिसम्बर, 1848–1917) बंगाल के ऐसे मनीषी थे जिन्होंने भारत जैसे विशाल बहुभाषा–भाषी और बहुजातीय राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से 1905 में 'एक लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की थी। इस संस्था का एक मात्र उद्देश्य भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि को सामान्य लिपि के रूप में प्रचलित करना था। जाहिर है कि शारदा चरण मित्र ने देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और व्यापकता को भली–भाँति समझ लिया था और इसीलिए वे इसे भारतीय भाषाओं की सामान्य लिपि बनाना चाहते थे। एक लिपि विस्तार परिषद के लक्ष्य को आंदोलन की शक्ल देते हुए शारदा चरण मित्र ने परिषद की ओर से 1907 में 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला था जो बीच में कुछ व्यवधान के बावजूद उनके जीवन पर्यन्त यानी 1917 तक निकलता रहा। 'देवनागर' के पहले संपादक यशोदानंदन अखौरी थे। इसके मुखपृष्ठ पर यह वाक्य छपा रहता था–'भारतीय चित्र–विचित्र भाषाओं के लेखों से विभूषित एक अद्वितीय सचित्र मासिक पत्रिका।'

'देवनागर' के प्रवेशांक में उसके उद्देश्यों के बारे में इस तरह प्रकाश डाला गया, 'जगद्विख्यात भारतवर्ष ऐसे महाप्रदेश में जहाँ जाति–पाँति, रीति–नीति, मत आदि के अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे हैं, भाव की एकता रहते भी भिन्न–भिन्न भाषाओं के कारण एक प्रांतवासियों के विचारों से दूसरे प्रांतवालों का उपकार नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि भाषा का मुख्य उद्देश्य अपने भावों को दूसरे पर प्रकट करना है, इससे परमार्थ ही नहीं समझना चाहिए, अर्थात् मनुष्य को अपना विचार दूसरे पर इसलिए प्रकट करना पड़ता है कि इससे दूसरे का भी लाभ हो किंतु स्वार्थ साधन के लिए भी भाषा की बड़ी आवश्यकता है। इस समय भारत में अनेक भाषाओं का प्रचार होने के कारण प्रांतिक भाषाओं से सर्वसाधारण का लाभ नहीं हो सकता। भाषाओं को शीघ्र एक कर देना तो परमावश्यक होने पर भी दु:साध्य सा प्रतीत होता है। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य है भारत में एक लिपि का प्रचार बढ़ाना और वह एक लिपि देवनागराक्षर है। देवनागर का व्यवहार चलाने में किसी प्रांत के निवासी का अपनी लिपि व भाषा के साथ स्नेह कम नहीं पड़ सकता। हाँ, यह अवश्य है कि अपने परिचित मंडल को बढ़ाना पड़ेगा। पहले इस पत्र को पढ़ने में पाठकों को बड़ी नीरसता जान पड़ेगी किंतु इस दूरदर्शिता, उपयोगिता तथा आवश्यकता का विचार कर सहृदय पाठकगण अनंत भविष्य के गर्भ में पड़े हुए पचास वर्ष के अनंतर उत्पन्न होने के शुभ फल की आशा से इस क्षुद्र भेंट को अंगीकार करेंगे।' **(4. मिश्र, डॉ. कृष्णबिहारी (2004) हिंदी पत्रकारिता : जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण–भूमि दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ पृ.–321)** देवनागर में प्रकाशित रिपोर्टों से पता चलता है कि अनेक अहिंदीभाषी विद्वान खुलकर देवनागरी तथा हिंदी का पक्ष–समर्थन करने लगे थे। सोचनेवाली बात है कि शारदाचरण मित्र ने देवनागरी तथा हिंदी के पक्ष में उस काल में किस तरह अन्य प्रांतों में भी एक अनुकूल वातावरण का निर्माण किया था।

'देवनागर' का परिवेश भारत व्यापी था। गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, मोतीलाल घोष जैसे मनीषियों ने भी 'देवनागर' के प्रयास की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। बाल मुकुंद गुप्त ने 'भारत मित्र'

में लेख लिखकर 'देवनागर' के प्रयास की सराहना की थी और शारदा चरण मित्र के आंदोलन के औचित्य को प्रकाशित किया था। गुप्त जी ने 'जमाना' के अप्रैल-मई 1907 के अंक में भी देवनागरी के पक्ष में लंबा लेख लिखा था। शारदा चरण मित्र को विश्वास था कि पाँच वर्ष में न हो, दस वर्ष में न हो, किंतु किसी न किसी समय संपूर्ण भारतवर्ष में एक लिपि प्रचलित होगी ही और तब भारतीय भाषाएँ और साहित्य एक हो जाएँगी। शारदा चरण मित्र ने कहा था- 'इस समय हमलोग अन्य प्रदेश के साहित्य में प्राय: निपट अनभिज्ञ हैं, इस समय कितने ही विद्वान बंगाली लोग तुलसीदास के भी प्रबंध नहीं पढ़ सकते। यह क्या सामान्य दु:ख की बात है, महाकवि चंद के ग्रंथों की बड़े-बड़े काव्यों के साथ तुलना की जाती है, यह राजपूत लोगों का इलियड है किंतु कितने ही इसे जानते तक नहीं। इधर राजनीतिक विषय को लेकर समस्त भारतवर्ष को आलोड़ित करने की कामना तो हम करते हैं किंतु आपस की भाषाओं को समझने के लिए कोई प्रधान उपाय करने के विषय में हमलोग कुछ भी चेष्टा नहीं करते।' **(5. वही)**

बाँग्लाभाषी मनीषी रामानंद चट्टोपाध्याय ने घाटा सहकर भी हिंदी मासिक 'विशाल भारत' निकाला और उसके संपादकों को पूरी स्वतंत्रता दी। वैसे अंग्रेजी और बाँग्ला की पत्रकारिता में रामानंद बाबू का बड़ा अवदान है। रामानंद बाबू ने 1901 में इंडियन प्रेस के चिंतामणि घोष के सहयोग से बाँग्ला मासिक 'प्रवासी' निकाला। 1907 में उन्होंने 'माडर्न रिव्यू' निकाला।

'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' के संपादक रामानंद बाबू हिंदी की व्यापकता से भली-भाँति वाकिफ थे। देश के ज्यादा से ज्यादा पाठकों तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 1928 में उन्होंने हिंदी मासिक 'विशाल भारत' निकाला। बनारसी दास चतुर्वेदी उसके संस्थापक संपादक हुए। जनवरी 1928 में 'विशाल भारत' का प्रवेशांक निकला। 144 पृष्ठों का। साहित्य, समाज सुधार, राजनीति, इतिहास और अर्थशास्त्र पर पठनीय लेखों से सुसज्जित। प्रवेशांक में चतुर्वेदी जी ने पत्र के उद्देश्य के बारे में लिखा-'विशाल भारत' के संचालक श्री रामानंद चट्टोपाध्याय लगभग चालीस वर्षों से पत्र-संपादन का कार्य कर रहे हैं। हिंदी जनता को उनके 'माडर्न रिव्यू' तथा 'प्रवासी' का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। जिन सिद्धांतों तथा विचारों का प्रचार आप अंग्रेजी तथा बांग्ला पत्र द्वारा करते हैं, उन्हीं को अब आप राष्ट्रभाषा हिंदी द्वारा जनता के सम्मुख रखना चाहते हैं। 'विशाल भारत' की आयोजना का एक मात्र उद्देश्य यही है। **(6. श्रीधर, विजय दत्त (2011) पहला संपादकीय नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन पृ.-70)** बनारसी दास चतुर्वेदी के संपादन में 'विशाल भारत' जल्द ही हिंदी का सर्वश्रेष्ठ मासिक बन गया। शुरू के तीन वर्षों में ही उसने साहित्यांक, प्रवासी अंक तथा कला अंक जैसे विशेषांक निकालकर अपनी धाक जमा ली।

कतिपय मामलों पर बनारसी दास चतुर्वेदी से रामानंद बाबू के मतभेद हुए किंतु कभी भी रामानंद बाबू ने बनारसी दास जी की संपादकीय स्वायत्तता में हस्तक्षेप नहीं किया। रामानंद बाबू जब सूरत में हिंदू महासभा के अध्यक्ष बने तो 'विशाल भारत' में उनकी कटु आलोचना छपी। रामानंद बाबू ने उसका उत्तर लिखकर दिया और उसे भी चतुर्वेदी जी ने छापा। 1937 में बनारसी दास चतुर्वेदी के आग्रह पर 'विशाल भारत' का संपादन करने के लिए अज्ञेय कलकत्ता आ गए। अज्ञेय 'विशाल भारत' में डेढ़ वर्ष तक रहे पर उस अल्प अवधि में ही उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। अज्ञेय का भी रामानंद बाबू से विरोध हुआ। हिंदी के स्वाभिमान के सवाल पर। उस प्रसंग का विवरण खुद अज्ञेय ने 'कलकत्ते की याद' शीर्षक लेख में इस तरह दिया है-'प्रवासी तथा माडर्न रिव्यू में रामानंद चट्टोपाध्याय की कुछ टिप्पणियाँ प्रकाशित हुईं जिनमें हिंदी के प्रति अवज्ञा का भाव था। इससे क्लेश तो बहुत से लोगों को हुआ, लेकिन बोला कोई नहीं क्योंकि रामानंद बाबू की और उनके द्वारा संपादित पत्रों की बहुत धाक थी। अपनी अनुभवहीनता में मुझे लगा कि उनके आरोपों का खंडन आवश्यक है और मैंने 'विशाल भारत' की संपादकीय टिपण्णियों में उनके तर्कों का उत्तर भी दे दिया। सप्ताह-भर बाद मुझे रामानंद बाबू का हाथ का लिखा पत्र मिला। उन्होंने मेरे तर्कों का जवाब तो दिया ही था, पत्र के अंत में उन्होंने दो बातें और लिखी थीं। एक तो उन्होंने मुझे याद दिलाया था कि वह स्वयं बंगाली होकर हिंदी का साहित्यिक पत्र निकाल रहे हैं और लगातार उस पर घाटा उठा रहे हैं। उन्होंने मुझसे पूछा था कि बहुत से हिंदीभाषी धनिक और सेठ भी तो हैं, क्या एक भी ऐसा हिंदी भाषी व्यक्ति है जो बाँग्ला में पत्र निकाल रहा हो-उस पर घाटा उठाना तो दूर? दूसरे, उन्होंने मुझे स्मरण दिलाया था कि 'विशाल भारत' प्रवासी प्रेस से निकलता है जिसके मालिक वे स्वयं हैं। क्या कोई दूसरा ऐसा मालिक भी होगा जो अपने संगठन के किसी कर्मचारी को यह अधिकार दे कि वह उसी के पत्र में उसी की आलोचना करे। पत्र के उत्तर में मैंने लिखा कि 'विशाल भारत' की टिप्पणी में जो कुछ लिखा गया है, उसे मैं ठीक मानता हूँ और उनके पत्र के बाद भी मुझे कुछ बदलने की आवश्यकता नहीं

जान पड़ी। इस बात को मैंने स्वीकार किया कि हिंदी पत्रकारिता में उन्होंने जो योगदान किया है, उसके तुल्य किसी हिंदी भाषी ने बांग्ला के लिए कुछ नहीं किया और यह भी मैंने स्वीकार किया कि 'विशाल भारत' के संपादक को उन्होंने जो स्वतंत्रता दी है, उसके लिए भी उनका सम्मान होना चाहिए। मैंने यह भी जोड़ दिया कि मेरे मन में श्रद्धा और भी अधिक होती अगर यह बात स्वयं उन्होंने मुझे न लिखी होती और दूसरे ही उसका उल्लेख करते।' **(7. मिश्र, डॉ. कृष्णबिहारी पांडेय, राम व्यास, सं. 1983, हिंदी साहित्य : बंगीय भूमिका कोलकाता : मणिमय पृ.-397)** इस पत्र प्रकरण के बाद अज्ञेय लिखते हैं-'मैं अपने को उतना ही स्वाधीन मानता रहा जितना पहले मानता था और जितना संपादक के नाते अपने को हमेशा रखता रहा हूँ।' संपादकीय स्वतंत्रता का जो सम्मान रामानंद बाबू करते थे, उसका यह एक उदाहरण है। 'विशाल भारत' ने जो श्रेष्ठता तथा ऊँचाई अर्जित की, उसके पीछे एक कारण यह भी था कि रामानंद बाबू संपादकीय स्वतंत्रता का पूरा सम्मान करते थे। उनकी इस भूमिका को कभी लघु करके नहीं देखा जा सकता।

हिंदी में पहला एम.ए. होने का गौरव एक बाँग्लाभाषी ने पाया था। उसका नाम है-नलिनी मोहन सान्याल। पूरे देश में पहली बार 1919 में हिंदी में एम.ए. की पढ़ाई कलकत्ता विश्वविद्यालय में सर आशुतोष मुखर्जी ने शुरू कराई। तब सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति थे। नलिनी मोहन सान्याल ने 1919 में एम.ए. (हिंदी) में प्रवेश लिया और 1921 में एम.ए. उत्तीर्ण किया। बंगाल के नदिया जिले के शांतिपुर में तीन अक्टूबर 1861 को जन्मे नलिनी मोहन सान्याल हिंदी के इतने बड़े हिमायती थे कि उन्होंने 58 वर्ष की उम्र में हिंदी (स्नातकोत्तर) में दाखिला लिया और 60 वर्ष की उम्र में एम.ए. पास किया। बाद में नलिनी मोहन सान्याल ने हिंदी में पीएच. डी. भी की। हिंदी में एम.ए. और पीएच.डी. करने के उपरान्त नलिनी मोहन सान्याल को कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रीडर नियुक्त किया गया था। नलिनी मोहन सान्याल ने अपनी प्रातिभ साधना से हिंदी साहित्य को विशिष्ट समृद्धि दी। **(8. चौबे, कृपाशंकर (2018) मीडिया संस्कृति समय नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान. पृ.-15)**

बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में श्री सान्याल 'सरस्वती', 'माधुरी', 'वीणा' और 'सुधा' जैसी हिंदी की विख्यात पत्रिकाओं में नियमित लिखा करते थे। उनके लेखन में विषयों की कितनी विविधता थी, इसका अंदाजा उन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके निबंधों के शीर्षकों से ही लगाया जा सकता है-'वास्तु जगत और भाव जगत' ('सरस्वती', सितंबर 1931), 'नवद्वीप' ('सरस्वती', जनवरी 1931), 'चरित्र' ('सुधा', 1936), 'प्रकृत भाषा और संस्कृत भाषा' और 'कीर्तिलता', 'विद्यापति', 'नृ विज्ञान', 'जीव की नित्यता' (ये सभी छः रचनाएँ 'माधुरी' में प्रकाशित हुईं), 'जीवों का विवर्तन' ('सरस्वती', जनवरी 1924), 'जड़ विज्ञान का नवीन रूप', 'पदार्थों का मूल तत्व' (दोनों 'सुधा'), 'रवींद्रनाथ के काव्य में अतींद्रियता' ('उठान'), 'ईश्वर का अस्तित्व विषयक सहज ज्ञान' ('कल्याण'),'समस्यामूलक सरस साहित्य' ('वीणा'), 'शक्ति परिचय' ('आकर्षण'), रवींद्रनाथ ठाकुर' (कोशोत्सव, काशी नागरी प्रचारिणी सभा) और 'सूरदास का काव्य और सिद्धांत' (द्विवेदी स्मृति अंक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा)। श्री सान्याल की रचना 'भाषा विज्ञान' पहले 'सरस्वती' में धारावाहिक छपी और बाद में 1923 में वह पुस्तक रूप में सामने आई। 'भाषा विज्ञान' में डॉ. नलिनी मोहन सान्याल की स्थापना है कि वैज्ञानिक तरीके से भाषा की सर्वप्रथम चर्चा प्राचीन काल में भारतवर्ष में हुई थी इसलिए भाषा को अपना रूप प्रदान करने का श्रेय भारतीयों को है। **(9. वही, पृ.-16)**

इस पुस्तक में सान्याल विस्तार से बताते हैं कि मनुष्य के जीवन में शब्दों का आविर्भाव कैसे हुआ और मनुष्य जाति के विकास में भाषा की क्या भूमिका रही है। सान्याल के अध्ययन तथा अनुशीलन के केंद्र में भाषा थी। सान्याल ने ही पहली बार 'माधुरी' के मार्च 1924 के अंक में एक लेख लिखकर बताया था कि हिंदी में फारसी तथा अरबी के कई शब्द इस कदर घुल-मिल गए हैं कि उन्हें अलगाया ही नहीं जा सकता। इस लेख का शीर्षक था-'हिंदी भाषा पर फारसी और अरबी शब्दों का प्रभाव'। 'बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास' को सान्याल ने अपने शोध का उपजीव्य बनाया था। बाद में इसी शीर्षक से यह शोध प्रबंध छपा भी। **(10. वही)**

भारत के प्रसिद्ध भाषाविद, साहित्यकार तथा विद्याशास्त्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या हिंदी के कितने बड़े हिमायती थे, इसका प्रमाण उनके अनेक निबंधों में बिखरा पड़ा है। उदाहरण के लिए 'हिंदी की महत्ता और बंगाल' शीर्षक उनके निबंध की आरंभिक पंक्तियाँ देखें-'हम बंगाल के रहनेवालों के लिए यह अभिमान की बात है कि आधुनिक भारत में हिंदी भाषा की महत्त्वपूर्ण संभावना पहले-पहल कुछ बंगाली मनीषियों एवं साहित्य नेताओं की दृष्टि के सामने प्रतिभात हुई थी।' **(11. वही, पृ.-17)**

खड़ी बोली के बारे में भी डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की एक

सुचिंतित राय थी। वे खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को साधु हिंदी या नागरी हिंदी कहते थे। खड़ी बोली से तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी से है जिसे भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा का पद मिला है और संविधान ने जिसे राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी की मूल आधार स्वरूप बोली होने का गौरव हासिल है। खड़ी बोली पश्चिम रुहेलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अंबाला जिले की उपभाषा है। यह रामपुर, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अंबाला तथा कलसिया और भूतपूर्व पटियाला रियासत के पूर्वी भाग में मातृभाषा के रूप में बोली जाती है। इस बोली में अरबी-फारसी के शब्दों का व्यवहार हिंदी प्रदेशों की अन्य उपभाषाओं की अपेक्षा अधिक है। यह भारत की सर्वाधिक प्रचलित, सरल तथा बोधगम्य भाषा मानी जाती है। बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा हिंदी (खड़ी बोली) भाषाभाषी राज्य हैं। सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है कि खड़ी बोली अनेक नामों से जानी जाती है यथा-हिंदुई, हिंदवी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, रेखता, हिंदोस्तानी, हिंदुस्तानी आदि। डॉ. ग्रियर्सन ने इसे वर्नाक्युलर हिंदुस्तानी तथा डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने इसे जनपदीय हिंदुस्तानी का नाम दिया है। सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने भाषा के गंभीर अध्ययन करते हुए अंग्रेज़ी में 30, बाँग्ला में 22 और हिंदी में सात किताबें लिखीं।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस हिंदी के महान प्रेमी थे। उनके हिंदी प्रेम को देखते हुए ही 20 दिसंबर 1928 को कलकत्ता में आयोजित राष्ट्रभाषा सम्मेलन की स्वागत समिति का अध्यक्ष उन्हें बनाया गया था। उस सम्मेलन की अध्यक्षता महात्मा गाँधी ने की थी। उस सम्मेलन में नेताजी ने अपने स्वागत भाषण की शुरुआत इस तरह की थी-'हिंदी प्रेमियो, बड़ी खुशी के साथ इस नगर में हम आपका स्वागत करते हैं। जो सज्जन कलकत्ता से वाकिफ हैं, उनको यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि कलकत्ता में पाँच लाख हिंदी भाषाभाषी रहते हैं। शायद हिंदुस्तान के किसी प्रांत में, जो प्रांत हिंदीवालों के घर हैं, उनमें भी कहीं इतने हिंदुस्तानी जबान बोलनेवाले नहीं पाए जाते। साहित्य की दृष्टि से भी कलकत्ता का स्थान हिंदी के इतिहास में बहुत ऊँचा है।'(12. वही, पृ.-18)

नेताजी सुभाष चंद्र बोस को इस बात का अभिमान था कि हिंदी साहित्य के लिए जितना कार्य बंगालियों ने किया, उतना हिंदी भाषी प्रांतों को छोड़कर और किसी प्रांत के निवासियों ने नहीं किया। उपर्युक्त स्वागत भाषण में ही उन्होंने कहा था, 'बिहार में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के लिए भूदेव मुखर्जी ने जो महान उद्योग किया था, क्या उसे हिंदी भाषा भाषी भूल सकते हैं? (13. वही)

पंजाब में नवीनचंद्र राय ने हिंदी के लिए जो प्रयत्न किया, क्या वह कभी भूलाया जा सकता है? यह काम इन दोनों बंगालियों ने 1800 के लगभग ऐसे समय में किया था, जबकि बिहार और पंजाब के हिंदी भाषा भाषी या तो हिंदी के महत्व को समझते ही न थे अथवा उसके विरोधी थे। ये लोग उत्तरी भारत में हिंदी आंदोलन के पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। संयुक्त प्रांत में इंडियन प्रेस के स्वामी चिंतामणि घोष ने प्रथम सर्वश्रेष्ठ मासिक 'सरस्वती' द्वारा और पचासों हिंदी ग्रंथों को छपाकर हिंदी साहित्य की जितनी सेवा की है, उतनी सेवा हिंदी भाषा भाषी किसी प्रकाशक ने शायद ही की होगी। नगेंद्रलाल बसु लगभग पंद्रह वर्ष से हिंदी विश्वकोष द्वारा हिंदी की सेवा कर रहे हैं। रामानंद चटर्जी 'विशाल भारत' द्वारा हिंदी की सेवा कर रहे हैं। 'इतना कहने के ठीक बाद नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने बंगाल में हिंदी विरोध के सवाल को उठाया था।' मैं शेखी नहीं भरता, व्यर्थ अभिमान नहीं करता, पर मैं नम्रतापूर्वक इतना पूछना चाहता हूँ कि क्या यह सब जानते हुए भी कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि हमलोग हिंदी विरोधी हैं? मैं इस बात को भी मानता हूँ कि बंगाली लोग अपनी मातृभाषा से अत्यंत प्रेम करते हैं और यह कोई अपराध नहीं है। शायद हममें से कुछ ऐसे आदमी भी हैं जिन्हें इस बात का डर है कि हिंदीवाले हमारी मातृभाषा बंगाली को छुड़ाकर उसके स्थान में हिंदी रखवाना चाहते हैं। यह भ्रम भी निराधार है। हिंदी प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अंग्रेजी से लिया जाता है, वह आगे चलकर हिंदी से लिया जाए। अपनी माता से भी अधिक प्यारी बाँग्ला भाषा को तो हम कदापि नहीं छोड़ सकते। भारत के भिन्न प्रांतों के भाइयों से बातचीत करने के लिए हिंदी या हिंदुस्तानी तो हमको सीखनी ही चाहिए और स्वाधीन भारत के नवयुवकों को हिंदी के अतिरिक्त जर्मन, फ्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओं में से एक दो सीखनी पड़ेंगी, नहीं तो हम अंतरराष्ट्रीय मामलों में दूसरी जातियों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। लिपि का झगड़ा मैं नहीं उठाना चाहता। महात्मा जी की इस बात से मैं सहमत हूँ कि हिंदी और उर्दू लिपि दोनों का जानना जरूरी है।

आगे चलकर जो लिपि अधिक उपयुक्त सिद्ध होगी, वही उच्च स्थान पाएगी, उसके लिए अभी से झगड़ा करना व्यर्थ है। सरल हिंदी और सरल उर्दू दोनों एक हैं। वैसे ही हम लोगों में लड़ाई-झगड़ों के लिए

बहुत से कारण मौजूद हैं, नए कारण बढ़ाने की जरूरत नहीं है। महात्मा जी से और आप लोगों से मैं प्रार्थना करूँगा कि हिंदी प्रचार का जैसा प्रबंध आपने मद्रास में किया है, वैसा बंगाल और असम में भी करें। स्थाई कार्यालय खोलकर आप लोग बंगाली छात्रों तथा कार्यकर्ताओं को हिंदी पढ़ाने का इंतजाम कीजिए। इस कलकत्ता में कितने ही बंगाली छात्र हिंदी पढ़ने के लिए तैयार हो जाएँगे, पढ़ानेवाले चाहिए। बंगाल धनवान प्रांत नहीं है और न यहाँ के छात्रों के पास इतना पैसा है कि वे शिक्षक रखकर हिंदी पढ़ सकें। यह कार्य तो आप लोगों को ही करना होगा। अगर कलकत्ता के धनी-मानी, हिंदी भाषाभाषी सज्जन इधर ध्यान दें तो कलकत्ता में ही नहीं, बंगाल तथा असम में भी हिंदी का प्रचार होना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। आप बंगाली छात्रों को छात्र वृत्ति देकर हिंदी प्रचारक बना सकते हैं। बोल-चाल की भाषा चार-पाँच महीने में पढ़ाकर और फिर परीक्षा लेकर आप लोग हिंदी का कोई प्रमाण पत्र दे सकते हैं। मेरे जैसे आदमी को भी, जिसे बहुत कम समय मिलता है, आप हिंदी पढ़ाइए और फिर परीक्षा लीजिए। हम लोग जो मजदूर आंदोलनों में काम करते हैं, हिंदुस्तानी भाषा की जरूरत को हर रोज महसूस करते हैं। बिना हिंदुस्तानी भाषा जाने हम उत्तरी भारत के मजदूरों के दिल तक नहीं पहुँच सकते। अगर आप हम सबके लिए हिंदी पढ़ाने का इंतजाम कर देंगे तो मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि हम लोग आपके योग्य शिष्य होने का भरपूर प्रयत्न करेंगे। 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने अपने स्वागत भाषण का समापन इन शब्दों में किया था।'

अंत में, बंगाल के निवासियों से और खास तौर से यहाँ के नवयुवकों से मेरा अनुरोध है कि आप हिंदी पढ़ें, जो लोग अपने पास से शिक्षक रखकर पढ़ सकते हैं, वे वैसा करें। आगे चलकर बंगाल में हिंदी प्रचार का भार इन्हीं पर पड़ेगा, यद्यपि अभी हिंदी प्रांतों से सहायता लेना अनिवार्य है। दस-बीस हजार या लाख दो लाख आदमियों के हिंदी पढ़ लेने का महत्व केवल पढ़ने वालों की संख्या पर निर्भर नहीं है। यह कार्य बड़ा दूरदर्शितापूर्ण है और इसका परिणाम बहुत दूर आगे चलकर निकलेगा। प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती। नेताजी ने उसी स्वागत भाषण में यह भी कहा था, 'यदि हम लोगों ने तन-मन-धन से प्रयत्न किया तो वह दिन दूर नहीं है जब भारत स्वाधीन होगा और हिंदी उसकी राष्ट्रभाषा होगी।' गौरतलब है कि भारत की स्वाधीनता के उन्नीस साल पहले नेताजी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने की आकांक्षा प्रकट की थी। वह आकांक्षा एक राष्ट्रनायक की आकांक्षा थी।

उसी कालखंड में रवींद्रनाथ ठाकुर ने शांतिनिकेतन में हिंदी पढ़ाने के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को बुलाया। द्विवेदी जी 1930 से 1950 तक शांतिनिकेतन में हिंदी के शिक्षक रहे। शांतिनिकेतन में 16 जनवरी 1938 को हिंदी भवन का शिलान्यास हुआ और 31 जनवरी 1939 को हिंदी भवन का विधिवत उद्घाटन हुआ। शिलान्यास के अवसर पर उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था, 'हिंदी भाषा के प्रति मेरा आंतरिक अनुराग है। इसके माध्यम से लाखों मनुष्य अपने मनोभाव प्रकट करते हैं। शांतिनिकेतन में हिंदी भवन प्रतिष्ठित करने में जिन्होंने सहायता की है, उनके प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।' **(14. मिश्र, रामेश्वर सं.,2008, शांतिनिकेतन का हिंदी भवन, कोलकाता : विश्वभारती ग्रंथन विभाग. पृ.-19)**

बंगाल से बाहर रहनेवाले बाँग्लाभाषियों ने भी हिंदी की अनन्य सेवा की। जैसे सरस्वती पत्रिका निकालनेवाले इंडियन प्रेस के स्वामी चिंतामणि घोष, माया और मनोहर कहानियाँ निकालनेवाले मित्र प्रकाशन के स्वामी क्षितिन्द्र मोहन मित्र, अमृत प्रभात के स्वामी तुषारकांति घोष। उसी की अगली कड़ी साहित्यकार परितोष चक्रवर्ती, कथाकार पलाश विश्वास, पत्रकार सुभाष डे, दीपक सान्याल, अनुवादक ननी सूर, मुनमुन सरकार, समीक्षक गौतम चटर्जी और कवि-समीक्षक-पत्रकार कल्लोल चक्रवर्ती से जुड़ती है।

इक्कीसवीं शताब्दी में भी हिंदी की सेवा करनेवाले बाँग्लाभाषियों की संख्या यथेष्ठ है। संप्रति कलकत्ता के एक विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय, प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय की हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. तनुजा मजुमदार, रवींद्रभारती विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष सुब्रत लाहिड़ी, बर्दवान विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष गौतम सान्याल मूलत: बाँग्लाभाषी हैं। ये चारों हिंदी के साहित्यकार भी हैं। निकट अतीत तक कोलकाता के संत जेवियर कालेज की हिंदी विभागाध्यक्ष रत्ना मुखर्जी और योगेशचंद्र कालेज की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. सुनंदाराय चौधरी थीं। ये दोनों भी मूलत: बाँग्लाभाषी हैं। हाल में दिवंगत अभिजीत भट्टाचार्य हिंदी के लोकप्रिय अध्यापक थे। राखी राय हल्दर भी मूलत: बाँग्लाभाषी हैं किंतु कोलकाता के एक कालेज में हिंदी की अध्यापक हैं। कहने का आशय यह है कि बंगाल के साथ हिंदी के परस्पर संबंध की धारावाहिकता अक्षुण्ण है।

आचार्य एवं अध्यक्ष जनसंचार विभाग,
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्व विद्यालय,
वर्धा-442001 (महा.)
मो.-9836219078

हिंदी, मराठी भाषा का अंतर-संबंध : उच्चारण एवं वर्तनी

– शैलेश मरजी कदम, प्रिया शैलेश कदम

1. प्रस्तावना :- प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी संरचनागत व्यवस्था होती है। इसी विशिष्टता और संरचनात्मक व्यवस्थान के कारण हर भाषा अपने आप में विशिष्ट है दूसरी भाषा से अलग है। दो भाषाओं की विशिष्टताओं का अध्ययन करने के लिए सबसे प्रमुख आधार तुलना ही होता है। दो भाषाओं के बीच तुलना करके उनकी भिन्नताओं का अध्येयन करना व्यतिरेकी अध्ययन के अंतर्गत आता है।

हिंदी और मराठी दोनों आर्य परिवार की भाषाएँ हैं, यही कारण है कि इन दोनों भाषाओं को अधिक निकट माना जाता है। हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं की लिपी देवनागरी है इसके बावजूद प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्टता होती है जो उसको अन्य भाषाओं से अलग सिद्ध करने में मदद करती है। भले ही हिंदी और मराठी की लिपि देवनागरी ही है, फिर भी उनमें कुछ लक्षणीय अंतर जरूर है।

हिंदी और मराठी दोनों ही भाषाएँ S.O.V. (Subject + Object +Verb) मतलब 'कर्ता+ कर्म+ क्रिया' इस प्रकार की है, फिर भी इन दोनों भाषाओं का शिक्षण एक-दूसरे के लिए सरल या कठिन नहीं हो जाता।

हिंदी और मराठी में कुछ शब्दा ऐसे है जिनके अर्थ एक समान हैं, परंतु उनकी वर्तनी में भिन्नताएँ हैं। जो शब्द मराठी में दीर्घ ई की मात्रा देकर लिखा जाता है, वही हिंदी में कभी-कभी ह्रस्व 'इ' की मात्रा देकर लिखा जाता है। इसके कई उदाहरण हमें मिलेंगे जिनका विवेचन इस शोध पत्र में आगे किया गया है। मराठी और हिंदी में कई ऐसे शब्द है जो अर्थ के स्तर पर समान होते हुए भी उनका लिंग अलग-अलग है।

2. उच्चारणगत व्यतिरेक :- मराठी और हिंदी दोनों ही भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इन दोनों भाषाओं की लिपि एक ही होते हुए भी उनमें कुछ व्यतिरेक दृष्टिगत होता है। मराठी की वर्णमाला में कुछ वर्ण ऐसे हैं जो हिंदी की वर्णमाला में नहीं हैं और मराठी के कुछ वर्ण ऐसे है जो हिंदी में भी हैं, परंतु उच्चारण के स्तर पर दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं। मराठी की वर्णमाला में 'ज्ञ' और 'ऋ' यह दो वर्ण ऐसे हैं जो हिंदी की वर्णमाला में होते हुए भी उनका उच्चारण भिन्न है। मराठी में 'ज्ञ' ध्वनि का उच्चारण 'दन्य ' होता है और ऋ ध्वनि का उच्चारण 'रू' होता है, परंतु हिंदी में 'ज्ञ' ध्वनि का उच्चारण 'ग्या' होता है और ऋवौनि का 'रि' होता है। इस तरह मराठी और हिंदी में ध्वनि स्तर पर उच्चारण में व्यतिरेक दिखाई देता है।

मराठी में एक ध्वनि है 'ळ' इस ध्वनि का उच्चारण बहुत से हिंदी भाषी लोग नहीं कर पाते। अगर किसी हिंदी भाषी व्यक्ति को 'बाळ' शब्द का उच्चारण करने को कहा जाए तो वह इस शब्द का उच्चारण 'बाड' अथवा 'बाल' ऐसा करता है। इस प्रकार मराठी और हिंदी में ध्वनि के उच्चारण स्तर पर व्यभतिरेक होता है।

3. वर्तनीगत व्यतिरेक :- हिंदी और मराठी दोनों भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें कुछ शब्द एक जैसे हैं, परंतु उनकी वर्तनी में फर्क है। हिंदी मराठी में वर्तनी स्तर पर व्यातिरेक का प्रभाव छात्र के लेखन कौशल पर पड़ता है साथ ही उसके भाषण और पठन स्तर पर भी यह व्यरतिरेक बाधा उत्पन्न करता है। हिंदी और मराठी के कुछ शब्द जो अर्थ स्तर पर समान हैं, परंतु उनकी वर्तनी भिन्न है ऐसे शब्दों की सूची नीचे दी गई है।

तालिका संख्या – 1. समान अर्थ परंतु भिन्न वर्तनीगत शब्द

क्र .	हिंदी शब्द	मराठी शब्दी	क्र .	हिंदी शब्दल	मराठी शब्दल
1.	संस्कृति	संस्कृती	10.	समाप्ति	समाप्ती
2.	ध्वनि	ध्वनी	11.	समाधि	समाधी
3.	फूल	फुल	12.	समृद्धि	समृद्धी
4.	प्रकृति	प्रकृती	13.	पंक्ति	पंक्ती
5.	राजनीति	राजनीती	14.	कवि	कवी
6.	प्रगति	प्रगती	15.	रुचि	रूची
7.	प्रसिद्धि	प्रसिद्धी	16.	सेवावृत्ति	सेवावृत्ती
8.	पति	पती	17.	स्तुति	स्तुती
9.	सम्मति	संमती	18.	स्थिति	स्थिती
19.	गति	गती	30.	युक्ति	युक्ती
20.	स्फूर्ति	स्फुर्ती	31.	शक्ति	शक्ती
21.	स्वीति	स्वीती	32.	रंगभूमि	रंगभूमी
22.	समिति	समिती	33.	पुलिस	पोलीस

मराठी भाषा एवं साहित्य के अध्येता

23. स्वीकृति	स्वीकृती	34.	धन सम्पति	धनसंपत्ती
24. हानि	हानी	35.	प्राप्ति	प्राप्ती
25. यद्यपि	यद्यपी	36.	लिपि	लिपी
26. प्रीति	प्रीती	37.	पीढ़ी	पिढ़ी
27. पद्धति	पद्धती	38.	पूर्ति	पूर्ती
28. प्रतीति	प्रतीती	39.	पुष्टि	पुष्टी
29. बेसुर	बेसूर	40.	पानी	पाणी
30. युक्ति	युक्ती	41.	श्रद्धांजलि	श्रद्धांजली

इस प्रकार हिंदी और मराठी में कई ऐसे शब्द मिलेंगे जो एक ही अर्थ देते हैं, परंतु उनकी वर्तनी में भिन्नता है। ऐसे शब्दों के संबंध में छात्रों को जानकारी देना अत्यावश्यक है जिससे कि वह भाषा अधिगम में होने वाली त्रुटियों को कम कर सके।

4. 'ळ' ध्वनि के व्यतिरेकगत शब्द :– हिंदी और मराठी की वर्णमाला को देखें तो उसमें 'ळ' ध्वनि संबंधी व्यतिरेक दृष्टिगत होता है। मराठी की वर्णमाला में 'ळ' ध्वनि है हिंदी में नहीं है। मराठी और हिंदी में कुछ शब्दों ऐसे हैं जिन शब्दों में 'ळ' ध्वनि के कारण व्यतिरेक दृष्टिगत होता है। कुछ ऐसे शब्दों की सूची नीचे दी गई है।

तालिका संख्या–2 'ळ' और 'ल' ध्वनि वाले शब्द–

क्र.	हिंदी शब्द	मराठी शब्द		हिंदी	मराठी शब्द
			11.	दाल	दाळ
1.	नल	नळ	12.	केला	केळी
2.	दयालु	दयाळु	13.	पतला	पातळ
3.	काला	काळा	14.	फल	फळ
4.	पीला	पिवळा	15.	व्याकुल	व्याकुळ
5.	शैवाल	शेवाळ	16.	स्थाल	स्थाळ
6.	अटल	अटळ	17.	मैल	मळ
7.	होली	होळी	18.	कुल	कुळ
8.	सांवला	सावळा	19.	पीतल	पीतळ
9.	टोली	टोळी	20.	नाल	नाळ
10.	पालना	पाळना	21.	काल	काळ

इस तरह के शब्द मराठी भाषा भाषी छात्रों को भ्रमित कर देते हैं और हिंदी भाषा अधिगम में भाषाई व्याघात का कारण भी बनाते हैं।

5. समान वर्तनी परंतु भिन्नार्थक शब्द :– मराठी और हिंदी में कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जिनकी वर्तनी समान है, परंतु अर्थस्तर पर वे भिन्न प्रति होते हैं। जैसे –

तालिका संख्या–3 समान वर्तनी भिन्नार्थक

क्र. मराठी/हिंदी शब्दी (समान वर्तनी)	मराठी में अर्थ	हिंदी में अर्थ
1. नाव	नाम	छोटी जहाज
2. शिक्षा	सजा	शिक्षण
3. वर	ऊपर/	दुल्हा, दुल्हा
4. मगर	मगरमच्छा	किंतु, परंतु
5. पीठ	आटा	पीठ
6. ईर्ष्या	महत्वाकांक्षा	द्वेष
7. दंड	भुजा	सजा
8. मान	गर्दन	सम्मान
9. जाड़ा	मोटा	ठंड
10. पाठ	पीठ	सबक
11. ऊन	धूप	ऊन
12. किल्ली	चाबी	खूँटी

इस प्रकार मराठी और हिंदी में कई शब्द समान होते हुए भी अर्थ स्तर पर वे भिन्न हैं।

6. निष्कर्ष :– प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी और मराठी भाषा का उच्चारण एवं वर्तनी स्तर पर व्यतिरेकी अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में हिंदी और मराठी में कुछ विशिष्ट ध्वनियों के उच्चारण में व्यतिरेक दिखाई देता है जैसे–ज्ञ, रि, च इसी प्रकार वर्तनी स्तर पर भी ह्रस्व एवं दीर्घ वर्तनी के संदर्भ में लक्षणीय व्यतिरेक है। प्रस्तुत शोध पत्र हिंदी भाषा के अध्यापक एवं हिंदी भाषा सीखने वाले मराठी भाषा–भाषी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

7. संदर्भ

1. तिवारी भोलानाथ एवं किरण बाला-हिंदी और भारतीय भाषाएँ- प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-1987
2. तिवारी भोलानाथ एवं भाटिया कैलासचन्द्र-हिंदी भाषा शिक्षण- लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली-1987
3.वासुत्कर महादेव मा-हिंदी तथा मराठी क्रियायों का व्यतिरेकी अध्ययन, गवेषणा, अंक -33, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-1979

म. गा. दूरस्थ शिक्षा केन्द्र,
म.गां.अ.हि.वि., वर्धा
मो. 9423643576

हिंदी, मराठी अंतर-संबंधों का व्यतिरेकी अध्ययन
(लिंग एवं वचन के संदर्भ में)

– प्रिया शैलेश कदम

सारांश :-मराठी और हिंदी में जिस प्रकार से उच्चारण और वर्तनी स्तर पर व्यतिरेक है, उसी प्रकार व्याकरणिक स्तर पर भी व्यतिरेक है। प्रस्तुत शोध आलेख में हिंदी तथा मराठी की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जिसमें 'लिंग और वचन' इन व्याकरणिक कोटियों की संक्षेप में तुलना की गई है। व्याकरणिक स्तर पर लिंग और वचन, इन व्याकरणक कोटियों के हिंदी तथा मराठी के प्रयोग पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

1. हिंदी मराठी लिंग व्यवस्था :-हिंदी तथा मराठी की लिंग व्यवस्था में काफी मात्रा में व्यतिरेक दिखाई देता है। हिंदी में दो ही लिंग हैं, स्त्री लिंग और पुल्लिंग। मराठी में तीन लिंग प्रचलित हैं, स्त्रीं लिंग, पुल्लिंग और नपुंसक लिंग। हिंदी तथा मराठी में कुछ शब्द, रूप तथा अर्थ की दृष्टि से समान हैं, किन्तु वे शब्द दोनों भाषाओं में अलग-अलग लिंग में प्रयुक्त किए जाते हैं।

तालिका संख्या 1. लिंग संबंधी व्यतिरेक

क्र. शब्द	हिंदी लिंग	मराठी लिंग
1. बर्फ	स्त्री	पुल्लिंग
2. पानी	पुल्लिंग	नपुंसकलिंग

'दोनों भाषाओं में अन्य पुरुष वाचक सर्वनामों की लिंग व्यवस्था में मौलिक अंतर है। हिंदी में अन्यद पुरुष वाचक सर्वनाम लिंग विहीन है, जबकि मराठी में अन्य पुरुष वाचक सर्वनाम लिंग को दिखाता है। मराठी में अन्य पुरुष वाचक सर्वनामों के तीन लिंगों में अलग-अलग रूप हैं।' जैसे-

तालिका संख्या-2

हिंदी शब्द एवं लिंग		मराठी शब्द एवं लिंग			
वह	पु. स्त्री	तो - पु.	ती- स्त्री	ते -नपु.
वे	पु. स्त्री	ते - पु.	त्या - स्त्रीव	ती- नपु.
यह	पु. स्त्री	हा - पु.	ही- स्त्री	हे- नपु.
ये	पु. स्त्री	हे - पु.	ह्या- स्त्री	ही- नपु.

ऐसी स्थिति में हिंदी में क्रिया रूपों से लिंग पहचाना जा सकता है। उपर्युक्ति कथन की सहायता से हम यह कह सकते हैं कि 'हिंदी में केवल अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम की मदद से लिंग को निर्धारित नहीं किया जा सकता, इसके लिए क्रिया पर निर्भर रहना पड़ता है।' जैसे-1.वह जाती है। 2. वह जाता है। इन दोनों वाक्यों में 'जाती' और 'जाता' क्रियाओं से लिंग निर्धारित हो रहा है। मराठी में अन्य पुरुष वाचक सर्वनाम अपने रूप में ही लिंग निर्धारित करने में सक्षम है जैसे-1.ती आली 2.तो आला। इस उदाहरण में क्रिया भी लिंग के अनुसार परिवर्तित हुई है लेकिन कई बार मराठी में क्रिया तीनों लिंगों के सन्दर्भ में समान होती है जैसे; 1. तिला दिल 2.त्याला दिल 3.त्यांना दिल इन उदाहरणों में 'दिल' यह मराठी क्रिया तीनों लिंगों के सन्दर्भ में सामान है किन्तु सर्वनाम भिन्न होने कि वजह से लिंग को पहचाना जा सकता है।

हिंदी में लिंग संज्ञा विशेषण तथा क्रिया से ज्ञात होता है, मराठी में सर्वनाम से भी लिंग व्यक्त होता है, जैसे-

तो (वह) पु ती (वह) स्त्री ते (वे) नपुं।'

इस प्रकार मराठी और हिंदी में लिंग स्तर पर व्यतिरेक दिखाई देता है।

2. हिंदी-मराठी वचन व्यवस्था :- 'वचन' एक ऐसी व्याकरणिक कोटि है जो हिंदी और मराठी में विषमताओं से ज्यादा समानता दर्शाती है, बावजूद कुछ व्यतिरेक ऐसे हैं जो यहाँ दर्शाना आवश्यक है। हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं में वचन व्यवस्था इस प्रकार है।

हिंदी		मराठी	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	अनेकवचन

मराठी में बहुवचन को अनेक वचन कहा जाता है।

3. सर्वनाम में वचन संबंधी व्यतिरेक :- हिंदी और मराठी दोनों में आदर सूचकता के लिए बहुवचन क्रिया का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण-वे नेताजी हैं (हिंदी), ते नेताजी आहेत (मराठी वाक्य)

'हिंदी में मध्याम पुरुष में पुल्लिंग तथा स्त्री लिंग दोनों के लिए समान शब्द हैं-एकवचन में 'वह' तथा बहुवचन में 'वे'। मराठी में इन दोनों

मराठी की अध्येता

लिंगों के लिए दो अलग-अलग शब्द हैं-जैसे एकवचन में 'तो', 'ती', बहुवचन में 'ते' 'त्याक'। इसके अतिरिक्त नपुंसकलिंग के लिए भी अलग शब्द है जैसे एकवचन में 'ते' और बहुवचन में 'ती')' उपर्युक्त कथन में यह कहा गया है कि हिंदी में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के लिए समान सर्वनाम है।

जैसे-वह जाता है (पुल्लिंग) एकवचन-वे जाती है। (स्त्री)

वह जाती है (स्त्रींलिंग) एकवचन-वे जाते हैं। (पु.)

किन्तु मराठी में तीनों लिंगों के लिए अलग-अलग सर्वनाम प्रयुक्त किए जाते हैं । जैसे-

एकवचन- **स्त्री लिंग-ती जाते**
पुल्लिंग-तो जातो
नपुंसक-ते जातात
अनेकवचन- **स्त्रीलिंग-त्या जातात**
पुलिंग-ते जातात
नपुसकलिंग-ती जातात

'हिंदी के समीपवर्ती सर्वनाम 'यह' एकवचन तथा 'ये' बहुवचन दोनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं, जबकि मराठी में ये रूप तीनों लिंगों में अलग-अलग हैं। ('हा' पुल्लिंग एकवचन, 'ही' स्त्रींलिंग एकवचन तथा नपुंसक बहुवचन दोनों के लिए 'हे' नपुंसक एकवचन तथा पुल्लिंग बहुवचन दोनों के लिए 'ह्या' स्त्रींलिंग बहुवचन।' उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी के एक वचन तथा बहुवचन में समीपवर्ती सर्वनाम दोनों लिंगों के लिए समान हैं। उदाहरण :-

एकवचन - पुल्लिंग - यह मेरा कमरा है।
स्त्रीलिंग - यह मेरी कक्षा है।
बहुवचन - पुल्लिंग - वे मेरे कमरे हैं।
स्त्री लिंग - वे मेरी कक्षाएँ हैं।

मराठी में एकवचन तथा बहुवचन में तीनों लिंगों के लिए अलग-**अलग समीपवर्ती सर्वनाम हैं।**

उदाहरण - एकवचन-पुल्लिंग-हा घोड़ा माझा आहे।
स्त्रीलिंग-ही घोड़ी माझी आहे।
नपुंसकलिंग-हे पुस्तक छान आहे।
बहुवचन - पुल्लिंग-हे घोड़े बांधुन आहेत।
स्त्री लिंग-ह्या बांगड्या हिरव्या आहेत।
नपुंसकलिंग-हे लाकड़ वाळलेले ओहत।

'हिंदी में संबंध वाचक सर्वनाम 'जो' दोनों लिंगों तथा दोनों वचनों में प्रयुक्त होता है। मराठी में 'जो' के तीन लिंगों तथा दोनों वचनों में 'तो' के समान रूप बनते हैं। जैसे एकवचन, जो, जी, जे बहुवचन जे, ज्या, जी, हिंदी में 'कौन' सर्वनाम के दो रूप है-एकवचन में 'किस' बहुवचन में 'किन' हिंदी में 'कौन' का मराठी पर्याय 'कोण' अपरिवर्तनीय है।' हिंदी में आकारान्त विशेषण के तीन रूप मिलते हैं, जबकि मराठी में पाँच रूप मिलते हैं।

हिंदी आकारान्त रूप	मराठी आकारान्त रूप
उदाहरण 1	
अच्छा	**चांगला**
अच्छी	**चांगली**
अच्छे	**चांगले, चांगल्या, चांगल**
उदहारण 2	
थोड़ा	**थोडा**
थोड़ी	**थोडी**
थोड़े	**थोडे,**
	थोड्या
	थोड

वचन व्यवस्था के सन्दर्भ में हिंदी और मराठी में एक महत्त्वपूर्ण अंतर है हिंदी में बहुवचन में सहायक क्रिया पर अनुस्वार होता है।

उदाहरण : वे मेरे कमरे हैं, यहाँ बहुत फूल हैं।

मराठी में बहुवचन में क्रिया पर अनुस्वार नहीं होता किन्तु मराठी में 'आहे' क्रिया के साथ 'त' प्रत्यय जुड़ता है। उदाहरण-ते आहेत, इथे खुप घर आहेत।

4. निष्कर्ष :- हिंदी मराठी दोनों भाषाओं में समानताओं के साथ-साथ कुछ भिन्नताएँ भी देखने को मिलती हैं। लिंग और वचन के सन्दर्भ में भी कई व्यतिरेक ऐसे हैं जो दोनों भाषाओं को पृथक अस्तित्व प्रदान करती है। मराठी भाषा-भाषी व्यक्ति यदि हिंदी बोलता है तो वह बोलते समय कई बार लिंग निर्धारण संबंधी त्रुटियाँ करता है। इस व्यतिरेक का सबसे अधिक परिणाम उन विद्यार्थियों के हिंदी भाषा अधिगम पर पड़ता है जो हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में सीखते हैं।

शोधार्थी म.गां.अं.हिं.विवि वर्धा
मो. - 8483008566

1.देशमुख, अम्बादास (1990)हिंदी और मराठी कि व्याकरणिक कोटियाँ कानपूर अतुल प्रकाशन

2.पाण्डेय, अनिल कुमार (2010).हिंदी संरचना के विविध पक्ष नई दिल्ली प्रकाशन संस्थान

3.वर्धा हिंदी शब्द कोष (2014)महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

4.मराठी शब्दकोश, दूसरा खंड (2010) महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि सांस्कृतिक मंडल, मुंबई

5.मराठी शब्दकोश,चौथा खंड (2010)महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि सांस्कृतिक मंडल, मुंबई

ओड़िया और हिंदी के अंतर-संबंध

-दिनेश कुमार माली

परा, पश्यंती, मध्यमा सहज मानव के वश की बात नहीं। चतुर्थावस्था 'बैखरी'-मन के भावों ओर उद्गारो को मुख से प्रकट करना, यही सहज-स्वाभाविक वाणी है। पशु, पक्षी अथवा मनुष्यों में जब कोई वर्ग एक प्रकार की वाणी बोलता है, उस बोली से परस्पर भावों को कहता, सुनता और समझता है, तब वाणी के उस प्रकार को उस विशिष्ट वर्ग की और उसी भाषा को जब चिह्नों-आकृतियों भाषा की संज्ञा दी जाती है-में लिखकर प्रकट किया जाता है, तब उन्ही चिह्नों और आकृतियों को उस भाषा-विशेष की लिपि कहा जाता है। कुछ विद्वानों मत से धरातल पर पृथक्-पृथक् भूखण्डों में विभिन्न समयों पर मानवों की सृष्टि और विकास होता रहा है; वे सब एक हो स्थान पर एक ही मानव से सम्बद्ध नहीं है। फलत: उन सबकी भाषाएँ भी एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् और स्वतंत्र है। इन पृथक् कुलों को ये विद्वान् आर्य, मंगोल, सेमेटिक, हेमेटिक, द्रविड़ आदि की संज्ञा देते है। किन्तु भारतीय मत की घोषणा इसके विपरीत है, और इस्लामी मान्यता भी उसका अनुमोदन करती है। इस मत के अनुसार सारी मानव जाति एक ही मूल पुरुष मनु अथवा आदम की सन्तान होकर मानव अथवा आदमी कहलाई।

कालान्तर विभिन्न भूखण्डों में फैलने, एक दूसरे से अलग-थलग होने और वहाँ की विशिष्ट जलवायु और संस्कारों से प्रभावित होने के फल-स्वरूप वह मानव जाति अनेक रूप, रंग, आकार और बोलियों में विभक्त होती गई। यह परिवर्तन लाखों वर्षों से चलते आ रहे हैं और इसलिए उन मानव-समूहों के रूप, रंग, आकार और बोलियों के अन्तर भी इतने सघन हो गए हैं कि ज्ञान की उपेक्षा करने वाले और केवल तर्क, अनुमान, प्रयोग, अनुसंधान आदि भौतिक साधनों को ही ज्ञान मानकर उन पर निर्भर रहनेवाले पाश्चात्य विद्वान तथा उनके अनुवर्ती भारतीयों का भ्रमित हो जाना अस्वाभाविक नहीं। यह बात इनसे ओझल हो जाती है कि कितना भी बड़ा वैषम्य इन जातियों के लक्षणों में दिखाई देता हो, उनकी आकृतियों और भाषाओं कुछ ऐसे तथ्य लाखों वर्ष बाद भी झलकते हैं, जो सारी मानव जाति को किसी पुरातन काल में एक मूल मानव में पितृत्व प्रदान करते हैं। भारतीय वाङ्मय के सृष्टिक्रम-सम्बन्धी विशाल ज्ञानकोश को विस्तार-भय से किनारे भी रख दे, तो भी जन-साधारण की समझ में आनेवाली कुछ बातें तो हमारे मत की पुष्टि करती ही है। उदाहरण के लिए-

(1) द्रविड़कुल की भाषाएँ आर्यकुल की भाषाओं से पाश्चात्य मत में मूलत: पृथक् मानी गई है। किन्तु संस्कृत की वर्णाक्षरी, उनका वर्गी-करण तथा लिपि का बाएँ से दाहिने लिखना उनके समान ही है। इसके विपरीत आर्यकुल की कुछ भाषाओं का खरोष्ट्री लिपि में (दायें से बायें) लिखा जाना और वर्णों की संख्या, क्रम, वर्गीकरण आदि में बड़ा अन्तर है।

(2) अरबी और संस्कृत की शब्दावली और लिपि में नाममात्र को भी मेल नहीं है, किन्तु उनकी व्याकरण में कई समानताएँ है, जबकि संस्कृत का अपने आर्यकुल ही की अन्य भाषाओं के व्याकरण से साम्य नगण्य सा है, या नहीं है।

(3) उत्तर-पश्चिम में सुदूरस्थ ईरान की अवेस्ता और गाथाओं की भाषा में असुर का अहुर उच्चारण है। बीच के पूरे वार्यावर्त में इसका अभाव होने के बाद उत्तर-पूर्व मे असम प्रदेश में फिर दस को दह और गोसाईं को गोहाई बोलते हैं।

(4) नेपाल के आदिम निवासी आर्यकुल के रूप, आकृति से सर्वथा भिन्न है। किन्तु वहाँ कुछ ही समय से आबाद आर्यकुल के राज-परिवार तथा राजा परिवार की आकृतियों पर नेपाली प्रभाव प्रत्यक्ष है।

(5) ब्राह्मी लिपि से ही उत्पन्न होते हुए, उत्तर भारत की भाषाएँ भोजपत्र पर लिखी जाने के फलस्वरूप गोलाकार हो गईं। रेखाकार, और दक्षिण भारत की भाषाएँ ताळपत्र पर लिखी जाने के कारण भारतीय भाषाएँ-वस्तु, जव मानव मात्र एक मनु (आदम) की सन्तान है और आज पृथ्वी पर उपलब्ध विविध भाषाओं और बोलियों का आदि स्त्रोत एक है, तव भारत के निवासियों और भारतीय भाषाओं को मूलत: पृथक् मानना, उनका बुनियादी वर्गीकरण करना कहाँ तक समुचित है? जहाँ तक हिन्दी, गुरमुखी, सिन्धी, राजस्थानी, ओड़िया, बंगला, असमिया, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, मैथिली, नेपाली, सिहली आदि भाषाओं, लिपियों अथवा में इतना अधिक साम्य है कि उनको एक परिवार से बोलियों का सम्बन्ध है, इन सबकी वर्णमाला, शब्दावली, व्याकरण आदि बाहर समझने की रत्ती भर गुंजाइश नहीं। ये सभी प्राचीन संस्कृत की पोती और भारतीय जनपदों में शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृत अथवा उनके अपभ्रंशों पुत्रियाँ हैं, देवनागरी लिपि में अपनी क्षेत्रीय साहित्यिक निधि को अपने बीच सँजोए रखें। अन्य लिपियों का विरोध नहीं उपर्युक्त प्रयास से यह

ओड़िया भाषा के अध्येता, लेखक, साहित्यकार

किसी प्रकार अभीष्ट नहीं कि भारत में प्राय: अन्य लिपियों के शिक्षण अथवा प्रचार में जरा भी कमी हो। वह ही, वरन् अधिक फलती-फूलती रहें। किन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि अन्य भाषाओं और लिपियों से सम्बन्धित जन, अथवा आपकी लिपि और भाषा के ही लोग, जो परिस्थितिवश दूसरे क्षेत्रों में स्थायी तौर बस गए हैं, उनको आपके प्रचुर साहित्य से वंचित होने की परिस्थिति पैदा न होने पाए। दो हज़ार वर्ष पूर्व तमिळनाडु के अमर सन्त तिरुवल्लुव का 'पञ्चम वेद' समझा जाने वाला नीति-ग्रंथ 'तिरुक्कुरळ्' अपनी लिपि साथ-साथ देवनागरी लिपि के कलेवर में राष्ट्र के कोने-कोने में लोकप्रिय होने की स्थिति में आ जाए, यह संकल्प भी कम पुनीत नहीं।

ओड़िशा प्रदेश भारत का पूर्वी समुद्रतटीय राज्य है। इस प्रदेश प्राचीन नाम 'उत्कल' है। जगत्प्रसिद्ध 'जगन्नाथ धाम' के कारण यह प्रदेश सारे भारत के लिए पर्यटन-भूमि और सारे राष्ट्र को जोड़ने की एक प्रमुख कड़ी रही है। ओड़िशा प्रदेश एक कृषिप्रधान राज्य है। यह अपने प्राकृति सौन्दर्य, तीर्थ, प्राचीन कला आदि में अति सम्पन्न है। श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर और उसकी मूर्ति-कला तथा भुवनेश्वर जैसे तीर्थ है, जह अवसर पर राष्ट्र के कोने-कोने से लाखों व्यक्ति हर साल आते हैं और परस्पर सम्पर्क करते हैं। लगभग चार हजार वर्ष पुरानी खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफाएँ, महानदी जैसी विशाल सलिला, आरम्भिक सदियों के सैकड़ों प्राचीन मंदिर, धोलिगिरि पर अशोक का शिलालेख रथयात्रा, विश्वविख्यात कोणार्क मन्दिर, चिलका झील, हीराकुंड, समुद्र का मनोहर दृश्य तथा स्नान, इस छोटे से राज्य में बहुत कुछ दर्शनीय है।

विश्व का सबसे बड़ा बाँध राउरकेला का कारखाना- संस्कृत साहित्य के मुकुट-ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' के प्रणेता श्री विश्वनाथ महापात्र महामहोपाध्याय और ओड़िआ प्रदेश को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक-सब प्रकार से समृद्धि की ओर लानेवाले श्री मधुसूदनदास प्रख्यात 'मधु बाबू' जैसी विभूतियों से यह प्रदेश गौरवान्वित रहा है। लोकसेवी श्री गोपवन्धु; उनका कीर्तिमान् गोपबन्धु ट्रस्ट, समाज कार्यालय, और इस यशस्वी ट्रस्ट के वर्तमान अध्यक्ष, दृढ़ता, विद्वत्ता की मूर्ति 'श्री राधानाथ रथ' ओड़िशा के मूर्धन्य मान्य व्यक्ति हैं।। लोहा, कोयला, वन की सम्पत्ति के साथ-साथ आधुनिक कल-कारखानों की भी अब कमी नहीं है। कपड़ा, लोहा, अल्मूनियम, कागज, सीमेंट आदि के उत्पादक स्थान है। यह है उत्कल का समृद्धिशाली प्रदेश!

ओड़िया वर्णाक्षरी, उच्चारण तथा भाषा ओड़िया की वर्णमाला 'देवनागरी वर्णमाला' के समान है। मराठी 'ळ' मात्र अधिक है। ओड़िया देवनागरी वर्णमाला का चार्ट अवलोकनीय है। केवल 'ज' दो प्रकार का है। एक वर्ग 'ज' जो जल, जन्तु यदि में प्रयुक्त होता है। दूसरा अवर्ग 'ज' जो शब्द के आदि में 'य' होने पर 'ज' पढ़ा जाता है, जैसे यदि-जदि, याहाँकर-जाहांकर, यज्ञ-जज्ञ। किन्तु मध्य या अन्त में आने पर 'नियम के अनुसार' य 'ही बोला जाता है।' रेफ 'के साथ' य अन्त में होने पर भी ज पढ़ा जाएगा, जैसे- सूर्य का 'सुर्ज्।' देवनागरी लिप्यन्तरण में अवर्ग 'ज' य अथवा ज दोनों प्रकार से लिखा गया है। पढ़ने में ओड़िआ-पद्धति पर दोनों सूरतों में 'ज' ही पढ़ना उचित होगा ; किन्तु हिन्दी-पद्धति पर 'य' अथवा 'ज' इच्छानुसार पढ़ सकते हैं। उसी प्रकार 'व' को प्राय: 'ब' पढ़ते हैं। संस्कृत के तो सभी तत्सम शब्द हिन्दी के समान ही ओड़िया में प्रयुक्त होते हैं।

अंग्रेजी तथा अरबी से आए शब्द भी ओड़िआ में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के समान ही सामान्य हेर-फेर से बोले जाते हैं। जैसे सन्दुक, रुमाल, दुवाल, कलम, साबुन, आलमारा, क्लास आदि। और भी शब्द हिन्दी तथा ओड़िया में जैसे के तैसे बोले जाते हैं-जैसे कुदाल, खुरपी, दर्जी, माला, साहुकार, महाजन, रूमाल, काम, घड़ी, जुआर, बाजरा, चादर, थाली, बहुत, दूर, पहरा, आन (दूसरा), जलेबी, पेड़ा आदि। कुछ हेर-फेर के साथ वोले जानेवाले शब्द-जैसे दूध-दूध, किछु कुछ, फुल-फूल, सांडुआसी-सॅड्सी, दोकान-दुकान, मसला-मसाला, उपरे-ऊपर, दोयात दावात, रुटि- रोटी, बाहुड़ि- बहुरि, ताउआ तवा, उजुड़ि-उजड़, बेलेणा बेलन, लुहा- लोहा, पथर- पत्थर, पाहाड़-पहाड़, खट-खाट, बाधाई-बधाई, बीच-बीच, कुणी डन, गाळ-गली, करचुली-करछुली, चामुचा-चिमचा, नळ-नाला, पाणि-पानी, गछ-गाछ (पेड़), चाउळ-चावल, कालि-कल, पेटपूरा भरपेट, ठिकणा-ठिकाना, निद-नींद, बदळ गलाणि बदल गया है, खुब-खूब, हात-हाथ, पहुँचिले-पहुँचे, माटि-मिट्टी, धोबा-धोबी, मोचि-मोची, डालबुंट-दालमोठ, डालि-दाल, मसुर-मसूर, मुग-मूँग आदि। ओड़िआ अक्षरों की लिखावट देखने में बड़ी विकृत और कठिन प्रतीत होती है। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो अधिकांश अक्षर-जैसे क, ख, ग, घ, ज, त, थ, ध आदि ऐसे हैं जिनमें उनके मुख एक ओर से दूसरी ओर घुमा देने से देवनागरी के समान बन जाते हैं।

ओड़िया में अक्षर भी उतने ही हैं, जितने देवनागरी लिपि में केवल मराठी लिपि का 'ळ' का विशेष प्रयोग होता है। तमिळ आदि दक्षिणी भाषाओं के समान ही ओड़िआ में भी अकारान्त शब्द सस्वर बोला जाता है, न कि जैसा हिन्दी में 'जल' सस्वर लिखकर 'जल्' हलन्त बोलते हैं। 'अच्छा बकस है' में हिन्दी में 'है' लगाया जाता है। ओड़िआ में संस्कृत की जरूरत नहीं की पद्धति पर 'एहा भल सिन्दुक 'पर्याप्त है।' है 'के लिए' अटे 'कहने की जरूरत नहीं है।

संदर्भ -

ओड़िया आदिकवि सारला दास की महाभारत की भूमिका -

(लेखक हिंदी के लेखक, आलोचक और ओड़िया और हिंदी के बीच में साहित्यसेतु हैं, ओड़िया साहित्य से हिंदी में अनुवाद की दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं)

क्वार्टन नं. सी/34, लिंगराज, टाउनशिप,
पो. हंडिधुआ, तालचेर,
जिला अनुगुल-759100 (ओडिशा)
मो.-9438878027

तमिल और हिंदी के बीच अंतर-संबंध

– सी. जयशंकर बाबु

भाषा भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रबल माध्यम है। अपने विचारों को अपनी मातृभाषा माध्यम से आसानी से प्रकट कर सकते हैं। अभिव्यक्ति के स्तर पर कतिपय भिन्नताओं के कारण अलग-अलग भाषाओं को अलग परिवारों की भाषाओं के रूप में मानते हैं। शब्द-भंडार और वाक्य-संरचना में भिन्नताओं के आधार पर एक ही परिवार में कई भाषाओं की गिनती होती है।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के जिस पारिवारिक वर्गीकरण की बात होती है, तद्नुसार हिंदी आर्य परिवार की भाषा मानी जाती है। तमिल द्रविड़ परिवार की भाषा मानी जाती है। भाषा-परिवारों के वर्गीकरण में समान अभिलक्षणों और शब्द-स्रोतों की भाषाओं को एक परिवार में गिना जाता है। एक परिवार में शामिल भाषाओं को सजातीय भाषाएँ मानते हैं। भिन्न परिवारों की भाषाओं को विजातीय माना जाता है।

हिंदी और तमिल भारतीय भाषाएँ हैं। भारतीय संस्कृति की रचनात्मकता के आधार पर इन दोनों में एकात्मकता की खोज की जा सकती है, भले ही भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विजातीय भाषाएँ मानी गई हैं।

तमिल का ऐतिहासिक विकास :- 'तमिल' शब्द को 'मधुरता' के पर्याय के रूप में माना जाता है। इस शब्द की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों की राय है कि 'तमिळ्' संस्कृत के 'द्रविड़' शब्द का विकृत या परिवर्तित रूप है। अर्थात् 'द्रविड़' शब्द से 'तमिळ्' शब्द का विकास हुआ है। 'द्रमिळ्म्' से 'तमिळ्म्' के विकास के क्रम में 'द्रविड़' शब्द से 'तमिळ्' शब्द के विकास को अधिकांश विद्वान मानते हैं। जिस द्रविड़ भाषा परिवार की चर्चा भाषा-वैज्ञानिक करते हैं, उसमें शामिल प्रमुख व प्राचीनतम भाषाओं में तमिल शामिल है। तमिल के उपलब्ध प्राचीन ग्रंथों में 'तोलकाप्पियम' का नाम सामने आता है, जिसके लेखन-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद होने के बावजूद अधिकांश विद्वानों की लगभग एक आम मान्यता है कि यह कृति लगभग ईसा के 450 वर्ष पूर्व की मानी जाती है। संस्कृत के सुख्यात वैयाकरण पाणिनि भी लगभग इसी कालखंड के माने जाते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार पाणिनि ई.पू. 600 वर्ष की अवधि के माने जाते हैं। 'तोलकाप्पियम' के आधार पर तमिल भाषा का लगभग 3000 वर्ष का इतिहास माना जाता है, क्योंकि किसी भी भाषा के पर्याप्त प्रचलन के बाद ही उसके मानकीकरण के प्रयासों के तहत व्याकरणिक नियमों का प्रतिपादन किया जाता है।

हिंदी का ऐतिहासिक विकास :- दुनिया का सबसे बड़ा परिवार भारोपीय परिवार है, हिंदी उसी परिवार की भाषा मानी जाती है। भारतीय परिवेश की दृष्टि से हिंदी आर्य परिवार की भाषा मानी जाती है। आर्य भाषा परिवार भारोपीय परिवार का उप-परिवार है। संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के क्रम में हिंदी के विकास को माना जाता है। आर्य भाषा परिवार की ये तमाम पुरानी भाषाएँ हैं, इनसे विकसित आधुनिक भाषाओं में हिंदी सहित कई भारतीय भाषाएँ हैं, जिनमें अधिकांश भारत के उत्तरी भूभाग में बड़ी संख्या में व्यवहृत होती हैं।

संस्कृत का अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अमिट संबंध है। शब्द-संपदा, व्याकरणिक सूत्रों का अनुपालन, वाङ्मय-धारा के अनुसृजन से इन भाषाओं के बीच सुदृढ़ भावात्मक संबंध विकसित हुए हैं। संस्कृत में जिन वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत आदि का प्रणयन हुआ है, ये सजहत: लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में भाषांतरण के माध्यम से उपलब्ध हैं। अनुवाद व अनुसृजन के माध्यम से तमाम बातें सभी भाषाओं में उपलब्ध होने के बावजूद संस्कृत के मूल श्लोकों का प्रयोग करने में भारतवासी गर्व महसूस करते हैं, संस्कृत के प्रति आकर्षण व आत्मीयता का यह विराट संकेत है। संस्कृत मूल के सहस्त्रों शब्द हिंदी के अलावा लगभग सभी भारतीय भाषाओं में घुल-मिल गए हैं। शब्दों के अलावा व्याकरणिक नियमों व अन्य कई दृष्टियों से तमिल पर संस्कृत के प्रभाव हम देख सकते हैं। इस प्रभाव का अनुशीलन हम तमिल के व्याकरणिक ग्रंथों के माध्यम से कर सकते हैं। संस्कृत, प्राकृत और तमिल भाषा के बीच संबंधों की

दक्षिण भारतीय भाषाओं के अध्येता, संस्थापक संपादक, 'युगमानस', प्रधान संपादक, 'आंतर भारती सह आचार्य, हिंदी विभाग, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय

खोज के आधार पर ही हिंदी और तमिल भाषाओं के बीच अंतर्संबंधों की खोज की जा सकती है।

तमिल और हिंदी भाषाओं का ध्वन्यात्मक विश्लेषण :- तमिल की ध्वनियाँ –

तोलकाप्पियर ने ध्वनियों की उत्पत्ति के संबंध में कहा है कि हवा आठ अंगों के माध्यम से अलग-अलग ध्वनियों का उत्पन्न करती है- छाती, कंठ, सिर, तालू, दाँत, जीभ, होंठ और नाक। इस बात को उन्होंने 'तोलकाप्पियम' में एक सूत्र के माध्यम से स्पष्ट किया है।

'अन्दी मुदला मुन्दु वळि तोन्ऱि
तलैयिनुम् मीडट्रिनुम् नेञ्चिनुम् निलैइ
पल्लुम् इद्ळुम् ऩावुम् मूक्कुम्
अणणमुम् उळप्पड एण् मुऱै निलैयान्
उरुप्पु उद्वुरु अमैय नेऱिप्पड नाडि
एल्ला एळुत्तुम् सोल्लुम् कालै
पिऱप्पिन् आक्कम् वेरुवेरु इयल
तिऱप्पडत् तेरियुम् काट्शियान।'

(तोलकाप्पियम, एळुत्तधिकारम्-83)

तोलकाप्पियर के इन सूत्रों का आधार पाणिनी के 'अष्ठाध्यायी' में मिल जाता है।

'आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान्, मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति, स प्रेरयति मारुतम्।।
मारुतस्तूरसि चरन्, मन्द्रं जनयति स्वरम्।'

आदि पंक्तियाँ जो पाणिनीय शिक्षा में पाई जाती हैं, उन्हीं का अनुवाद तमिल में प्रयुक्त होने के संबंध में डॉ. सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने माना है।

संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में तमिल ध्वनियाँ :-ध्वनि उत्पन्न करने के आभ्यंतर-प्रयत्न और बाह्य-प्रयत्न के संबंध में पाणिनी व अन्य संस्कृत व्याकरणविदों ने स्पष्ट किया है, उसे केवल तोलकाप्पियर ने समझा है। उनके परवर्ती वैयाकरणों ने नहीं समझा। संवार, नाद, घोष तथा विवार, श्वास, अघोष की उत्पत्ति से संबंधित ये सूत्र इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं –

'एल्ला व-एळुत्तुम वेलिप्पड-क् किलंदु
चोल्लिय पल्लि य-एलुतरु वलियिर।'

ध्वनियों की उत्पत्ति की चार अवस्थाएँ जिन्हें परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखारी के रूप में स्पष्ट करते हुए संस्कृत व्याकरण में उल्लेख मिलता है। परा की शब्द-ब्रह्म की अवस्था ध्वनि होती है, पश्यंती नाभि में होती है (जिसे योगी पहचानते हैं), मध्यमा हृदयस्थल में और वैखारी उच्चारण अवयवों के माध्यम से ध्वनि-उत्पादन की व्यवस्था होती है। पातंजली के महाभाष्य में इस संबंधी उल्लेख इस रूप में मिलता है –

'चत्वारि वाग्परिमिता पदानि
तानि विदुर ब्राह्मण्य ये मनीषिनह
गुहा त्रीनि निहिता नेङगायन्ति
तुरियम वॉको मनुष्य वदन्ति।'

तोलकाप्पियर के इस संबंधी सूत्र को जिसे उक्त अनुच्छेदों में हमने देखा है, के आधार पर शास्त्री जी मानते हैं कि तोलकाप्पियर ने संस्कृत शिक्षा, प्रातिसाख्या व व्याकरण का अध्ययन किया है। और अपने व्याकरण में तोलकाप्पियर ने तमिल भाषा के अनुरूप संस्कृत व्याकरण ग्रंथों में प्रतिपादित अनुकूल बिंदुओं को तोलकाप्पियम में अपनाया है। इस दृष्टि से कई सूत्र उल्लेखनीय हैं।

तोलकाप्पियर ने तमिल ध्वनियों को तीस माना है, जिसमें 12 स्वर और 18 व्यंजन हैं। संस्कृत की स्थिति इससे भिन्न है। तमिल में संस्कृत की कई ध्वनियों का प्रयोग शुरू में नहीं था, यह तो स्पष्ट है तोलकाप्पियर के कालांतर में संस्कृत की कई ध्वनियों का, जो मूलतः संस्कृत में नहीं है, प्रयोग होने लगा। मगर व्यंजनों में महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग नहीं हो रहा है। संस्कृत के शब्दों का जहाँ तक तत्सम या तद्भव रूप में तमिल में प्रयोग का संदर्भ है, उन मामलों में भी अल्पप्राण व्यंजन से ही तमिल में काम चलाया जाता है। तमिल की प्रकृति में महाप्राण उच्चारण का कोई महत्व नहीं रह गया है। द्रविड़ मूल का प्रभाव होने के बावजूद तेलुगु, कन्नडा और मलयालम में महाप्राण उच्चारणों का प्रयोग होता है। हिंदी और तमिल भाषाओं में ध्वनियों की दृष्टि से मूल अंतर यही है कि कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, वर्त्स्य तथा दंत्य वर्ग की ध्वनियों में जो महाप्राण ध्वनियाँ हिंदी में हैं, वे तमिल में नहीं हैं।

तमिल और हिंदी ध्वनियों की विशेषताएँ :-ध्वन्यात्मक दृष्टि से तमिल और हिंदी की ध्वनियों के संबंध में विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि हिंदी की भाँति तमिल में भी स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ हैं, जिन्हें क्रमशः 'उर्यि' (प्राण) 'एळुत्तु' (वर्ण) तथा 'मेय' (शरीर) एळुत्तु की संज्ञा दी जाती है। यह माना जाता है जिस भाँति प्राण के बिना शरीर सचेत रहना संभव नहीं है, उसी भाँति स्वर से जुड़े बिना व्यंजनों का उच्चारण पूर्ण नहीं होता।

तमिल और हिंदी में स्वर वर्णों (ध्वनियों) की तुलना करने से स्पष्ट

होता है कि अ, आ, इ, ई, उ, ऊ तक की छः स्वर ध्वनियों के उच्चारण में समानता है, ये सभी दोनों भाषाओं में बराबर हैं। तमिल भाषा में 'ऋ' वर्ण का प्रयोग नहीं है। हिंदी की ए, ऐ, ओ, औ ध्वनियों की तुलना तमिल ध्वनियों से करने पर स्पष्ट है कि इन ध्वनियों की दृष्टि से तमिल सहित तमाम द्रविड़ परिवार की भाषाएँ समृद्ध हैं। इन भाषाओं में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' की ध्वनियाँ भी हैं और इन ध्वनियों से आरंभ होने वाले शब्द इन भाषाओं में कई हैं। हिंदी में 'एकाएक', 'लोहार', 'सोनार' आदि शब्दों में आरंभिक स्वर ध्वनियों का उच्चारण ह्रस्ववत होता है मगर इनके लिए अलग लिपि संकेतों का प्रयोग नहीं है। इन दो स्वर वर्णों (ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ') की दृष्टि से हिंदी में जो अभाव है, वह तमिल के व्यंजन वर्णों के संदर्भ में देखा जा सकता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं, स्वर वर्णों और ध्वनियों की दृष्टि से हिंदी की तुलना में तमिल सुसमृद्ध है।

अनुस्वार और विसर्ग के संदर्भ में विचार करें तो स्पष्ट होता है तमिल में अनुस्वार का प्रयोग नहीं होता है और विसर्ग की बराबरी करनेवाला वर्ण (अक्) है, इसे तमिल वैयाकरण 'आयतम्' की संज्ञा देते हैं, इसका स्वतंत्र उच्चरण 'अक्' वत् किया जाता है। जिह्वामूल ध्वनि रूप में ही तमिल और हिंदी में इसका प्रयोग होता है। प्राचीन तमिल वाङ्मय में इसका प्रयोग रहा है। आज इसका बहुत ही कम प्रयोग किया जाता है। चूँकि तमिल में अनुस्वार नहीं है, अतः अर्धानुस्वार की परिकल्पना भी नहीं है।

व्यंजन ध्वनियों की दृष्टि से तमिल और हिंदी व्यंजनों की तुलना करने पर एक महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है कि तमिल में महाप्राण व्यंजन ध्वनियों का बिल्कुल प्रयोग नहीं है। तमिल में व्यंजन ध्वनियों के लिपि संकेतों के संबंध में भी एक विशिष्टता यह है कि पाँच वर्गों में प्रत्येक वर्ग की दो भिन्न ध्वनियों के लिए एक ही लिपि संकेत का प्रयोग किया जाता है। जैसे 'क' और 'ग' ध्वनियों के लिए तमिल में लिपि संकेत का ही प्रयोग होता है जबकि 'क' और 'ग' ध्वनियों का प्रयोग तो तमिल में है। जैसे कि स्पष्ट किया गया है, यह स्थिति क, च, ट, त, प पाँचों वर्गों की व्यंजन ध्वनियों के साथ भी है। उच्चारण की दृष्टि से तमिल भाषी 'क' और 'ग' में भले ही अंतर रखते हैं, मगर दोनों ध्वनियों के लिए परंपरागत रूप से एक ही लिपि चिह्न के प्रयोग की वजह से 'ग' ध्वनि से उत्पन्न शब्द सीमित हैं। 'क' वर्ग की ध्वनियों में एक लिप-चिह्न से 'क' और 'ग' ध्वनियों के प्रयोग और पहचान के चुनौती का समाधान भीतमिल की एक भाषिक विशिष्टता के रूप में शब्दों का विकास हुआ है। आरंभ में शब्द-ज्ञान विवेक के आधार पर 'क' और 'ग' में अंतर किया जाता है जबकि शब्द के बीचों बीच 'ग' ध्वनि का सहज प्रयोग होता है और 'क' का प्रयोग द्वित्व के साथ ही होता है। अतः तमिल शब्द संपदा की विशिष्टता है कि शब्द के अंदर 'क' ध्वनि का प्रयोग द्वित्व (क्क) के साथ ही होता है। 'क' वर्ग की भाँति च, ट, त, प वर्गों की ध्वनियों की स्थिति भी बराबर है।

हिंदी के अनुरूप ही तमिल में भी अनुनासिक व्यंजन(पंचमाक्षर) हैं - ङ; ञ, ण, न, म। अनुनासिक के साथ प्रयुक्त होने पर इन पाँच वर्गों (क, च, ट, त और प वर्ग) की ध्वनियों में आरंभिक ध्वनि की जगह दूसरी ध्वनि का प्रयोग होता है। अर्थात् 'क' की जगह 'ग', 'त' की जगह 'द' ध्वनि का प्रयोग होता है। यही पाँच वर्गों की व्यंजन ध्वनियों के साथ है। उदाहरण के लिए (पुदुवै) (पन्दम्) (पङ्कु) आदि। 'च' मात्र अपवाद है, इसका प्रयोग आरंभ में होने पर 'श' वत् उच्चरित होता है, द्वित्व होने पर 'च' और अनुनासिक के साथ 'ज' वत् उच्चरित होता है। उदाहरण के लिए (शङ्कु) (पच्चै), (पञ्जु) आदि शब्दों को हम देख सकते हैं। ठेठ तमिल में महाप्राण ध्वनियों की आवश्यकता नहीं है। महाप्राण तत्समों का तमिल में प्रयोग की स्थिति को 'तद्भव रूप' कहने की जगह तमिलीकृत रूप कह सकते हैं। कारण और तमिल-भाषिक विशिष्टताओं के अनुरूप उस शब्द का प्रयोग तमिल में होता है। उदाहरण के लिए 'रम्भा' शब्द के लिए तमिल में 'अरम्बै' का प्रयोग होता है। इसमें 'अ' उपसर्ग का जुड़ना और 'भ'(महाप्राण ध्वनि) की जगह 'ब'(अल्पप्राण ध्वनि) का प्रयोग होना तमिलीकरण की विशिष्टता के रूप में हम देख सकते हैं। ध्वनियों की दृष्टि से 'क' ध्वनि के लिए प्रयुक्त लिपि चिह्न का प्रयोग 'ह' के लिए भी किया जाता है, भले ही 'ह' ध्वनि के लिए अक्षर रूप होने पर भीतमिल मूल के शब्दों के लिए भी ('क') से काम चलाया जाता है। अन्य स्रोतों के शब्दों के लिए भी इसी स्थिति का प्रचलन तमिल वर्तनी के नियमों के विकास की दृष्टि से है।

महाप्राण ध्वनियों के प्रयोग वाली हिंदी भाषा में 'र' ध्वनि एक ही है, जिसका उच्चारण भी सरल है, जबकि तमिल में दो रूप हैं (र)और (ऱ)। लगभग 'ऱ' जैसी भिन्न ध्वनि, यह ध्वनि और लिपि चिह्न हिंदी में न होने से ध्वनि के अनुमान के लिए ही यह (ऱ) दर्शाया गया है। इनके संबंध में धर्मराजन जी का कथन है कि-'हिंदी में एक ही रेफ है, परंतु तमिल में दो रेफ हैं। तमिल व्याकरण एक रेफ को 'इडैयिनम' और दूसरे रेफ को 'वल्लिनम्' कहते हैं। हिंदी में चाहे तो इन्हें क्रमशः साधुरेफ और सकत रेफ या परुषरेफ कह सकते हैं। (र) साधुरेफ है और (ऱ) शकट रेफ है। इन रेफों के कारण न केवल उच्चारण में फ़र्क पड़ता है, अपितु अर्थ में भी अंतर आ जाता है। जैसे-परवै-समुद्र, पऱवै-पक्षी। साधुरेफ का उच्चारण मृदु होता है, शकटरेफ का उच्चारण

पुरुष होता है।'

तमिल की विशिष्टध्वनि का व्यंजन है, इस ध्वनि की पहचान के लिए देवनागरी में 'ऴ' चिह्न का प्रयोग किया जा सकता है। 'ळ' से भिन्न 'ष' के बीच की ध्वनि होने की वजह से 'ऴ' ('ल' से भिन्न मराठी में प्रयुक्त 'ळ' के नीचे नुक्ता लगाकर) प्रयोग उचित है तमिल में (ल) के अलावा (ळ) ध्वनि भी प्रयोग में है, जबकि हिंदी में केवल 'ल' का प्रयोग होता है। तमिल में औच्चारणिक भेद के अनुसार अर्थ भेद भी हैं। (पल्ली)–छिपकली और (पळ्ळ) –पाठशाला को उदाहरण के रूप में हम देख सकते हैं। हिंदी में प्रयुक्त ऊष्मवर्ण श, ष, स, ह के मामले में श, ष, सके लिए तमिल में (च) तथा (ह) के लिए 'क' अथवा 'अ' से काम चलाया जाता है। दक्षिण के संस्कृत पंडितों की वजह से ग्रंथ लिपिका विकास हुआ है। जिसमें (ज), (श), (स), (ह), (क्ष), (ष) और (श्री) शामिल हैं, जबकि ठेठ तमिल की अभिव्यक्ति के लिए इन ध्वनियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। आज संस्कृत तत्समों की अभिव्यक्ति के लिए यदा–कदा इनका प्रयोग होता है। संस्कृत से विकास की मान्यता के बावजूद हिंदी में औच्चारणिक भेद रह जाता है। द्रविड़ भाषाओं की औच्चारणिक विशेषता संस्कृत के बराबर अजंत है जबकि हिंदी में हलंत है। अत: द्रविड़ शब्दों का सही रूप में हिंदी देवनागरी में अभिव्यक्ति कर पाने की कठिनाई होती है। तमिल में हलंत उच्चारण के लिए प्रयुक्त लिपि संकेत (क्) हिंदी के अनुस्वार जैसा लगता है।

संयुक्ताक्षर लेखन की दृष्टि से परंपरागत दृष्टि से जो वर्तनी चलती आ रही थी, उसकी तुलना में तमिल में संयुक्ताक्षर लेखन इसलिए आसान माना जाता है कि वर्णों को अलग–अलग ही लिखा जाता है, पूर्व अक्षर पर हलंत के बराबर प्रयुक्त बिंदु को उस अक्षर पर लगाया जाता है (जो कि हिंदी भाषियों को अनुस्वार होने का भ्रम पैदा कर सकता है)। हिंदी में भी इस प्रकार की सरलता लाने की दृष्टि से केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा निर्धारित मानक वर्तनी में स्पष्ट प्रावधान है, जिसमें तमिल भाषा के अनुरूप ही संयुक्ताक्षरों को लिखा जाता है।

शब्द विचार :–शब्द–विचार को तमिल में 'चोल' कहते हैं। तोलकाप्पियर प्रभृति व्याकरणविदों ने उन्हें मूलत: दो रूप में माना है, यथा–'पेयरच्चोल' (संज्ञा) एवं 'विनैच्चोल'(क्रिया) और आगे इनके साथ दो और 'इडैच्चोल' (विस्मयादिबोधक), 'उरिच्चोल' (विशेषण) को जोड़ दिया गया है। यास्क के 'निरुक्त' में भी इससे मिलती–जुलती स्थिति पाई जाती है।

'चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपातश्च' (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार प्रकार के पद हैं) दुर्गाचार्य और ऋग्वेद और शुक्ल यजुर्वेद के प्रातिसाख्यों में भी तत्समान स्थिति पाई गई।

शब्द–विचार संबंधी विषय में संस्कृत और तमिल के संदर्भ में डॉ. पी.एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री ने काफ़ी विस्तार से विश्लेषण किया है। इस आलेख की सीमा को ध्यान में रखते हुए उन सबकी यहाँ चर्चा नहीं की जा रही है।

तमिल भाषियों ने संस्कृत में लेखन का कार्य भी किया है। तमिलभाषी संस्कृत कवि कृत 'आनन्दराघवम्' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह 'आनंद रामयण' के नाम से भी ख्यात हुआ है। तमिल प्रदेश में संस्कृत के फैलाव का कार्य भी काफ़ी हुआ था। हिंदी का भी सदियों से तमिल प्रदेश में तीर्थाटन की वजह से रहा है, आज़ादी आंदोलन के दौर में व्यवस्थित आंदोलन के रूप में हिंदी प्रचार कार्य संपन्न हुआ।

संस्कृत प्राचीनतम भाषाओं में एक होने की वजह से उसका किसी भी भारतीय भाषा पर प्रभाव के कई स्वागतयोग्य परिणाम हो जाते हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में आपसी संपर्क और समझ के साथ–साथ भारत की एकात्मता को विकसित करने में इसकी विशिष्ट भूमिका हो सकती है। तमिल और अन्य द्रविड़ भाषाओं पर संस्कृत के प्रभाव का भी इसी दृष्टि से बड़ा लाभ है। हिंदी संस्कृत की तनया मानी जाने के कारण निश्चय ही कई दृष्टियों से तमिल के साथ इसके अंत:संबंध के सूत्र मिल जाते हैं।

द्रविड़ भाषा–भाषियों द्वारा उनकी अपनी भाषाओं का प्रयोग मातृभाषा–प्रेम का द्योतक है। इन भाषाओं में संस्कृत के अवशेषों की वजह से अन्य भाषा–भाषी, मूलत: तथाकथित आर्य परिवार के भाषा–भाषी द्रविड़ भाषाओं के अधिकांश शब्दों को आसानी से समझ सकते हैं। भिन्न भाषाओं को समझने की यह क्षमता उन भाषाओं के प्रति आकर्षण और उन भाषाओं के प्रयोक्ताओं के साथ स्नेह और आत्मीयता के रूप में प्रकट होने में मदद करती है। भावात्मक एकता की सुदृढ़ नींव इसी से मजबूत होती है। संस्कृत की आत्मजा हिंदी का इसी आधार पर तमिल के साथ कई संबंध हैं।

शब्द–सूची व विश्लेषण :–तमिल में संस्कृत के असंख्य शब्द मिल जाते हैं। चूँकि संस्कृत शब्दों का हिंदी में सहज प्रयोग होता है, अत: तमिल में प्रयुक्त हिंदी शब्दों को पहचानना आसान है। उदाहरण के लिए संस्कृत के शब्द जो तमिल में तत्सम या तद्भव रूप में प्रयुक्त होते हैं उनकी एक संक्षिप्त–सूची यहाँ प्रस्तुत है। इन शब्दों में संस्कृत और तमिल में कतिपय कुछ और भेद ज़रूर हैं, मगर संस्कृत मूल शब्द का यथावत् प्रयोग या अंत में 'म्' जोड़कर तमिलीकृत (तद्भव)

रूप में अधिकांश संदर्भों में नज़र आते हैं।

तत्सम शब्दों के उदाहरण

संस्कृत शब्द	–	**तमिल शब्द**
आज्ञानम्	–	अज्ञानम
दानम्	–	दानम
अंजनम्	–	अंजनम
आभारणम्	–	आबरणम
अज्ञानम्	–	अज्ञानम
आलस्यम्	–	आलस्यम
उपनयनम्	–	उपनयनम
ऐक्यम्	–	ऐक्यम
कवचम्	–	कवचम
चक्रम्	–	चक्रम
चित्रम्	–	चित्रम
सुखम्	–	सुकम
ज्ञानम्	–	ज्ञानम

इन संस्कृत तत्समों में अधिकांश का समान अर्थ में हिंदी और तमिल में प्रयोग की वजह से ऐसे शब्दों तथा उनके आशय को समझने में हिंदी भाषियों को आसानी होती है। उदाहरण में दिए गए शब्दों के अंत में संस्कृत में 'म्' तथा तमिल में 'म' के प्रयोग है, जबकि हिंदी इनका लोप हो जाता है।

तद्भव शब्दों के उदाहरण–

संस्कृत शब्द	–	**तमिल शब्द**
ग्रह:	–	ग्रहम
आश्रम:	–	आश्रम
गुण:	–	गुणम
ग्राम:	–	ग्रामम
शोक:	–	शोकम
प्रयोग:	–	प्रयोगम
मंत्र:	–	मंत्रम

उक्त शब्दों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत शब्दों में जो विसर्ग ध्वनि है, वह तमिल में 'म' प्रत्यय के रूप में परिवर्तित होकर प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार के शब्दों की सूची बहुत लंबी है। संस्कृत मूल के सहस्त्रों शब्द तमिल में तत्सम, तद्भव रूपों में प्रयोग में हमें मिल जाते हैं जो हिंदी में भी सहजत: प्रयोग में हैं। तमिल व्यंजन ध्वनियों की सीमाओं के परिप्रेक्ष्य में कहीं तमिलीकृत उच्चारण ज़रूर हमें नज़र आता है, मगर तमिल में इन शब्दों का अस्तित्व है। इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि तमिल पर संस्कृत का प्रभाव ज़रूर है। तमिल भाषी कई संदर्भों में अपने व्यवहार में इन शब्दों का प्रयोग करते हैं।

हिंदी व संस्कृत शब्दों के आधार पर तमिल के शब्दों का निर्माण भी बड़ी संख्या में हुई है। संस्कृत मिश्रित तमिल को मणिप्रवाल की संज्ञा दी जाती है। कुछ लोगों की यह कोशिश रहती है कि ठेठ तमिल उच्चारण, शब्दों का प्रयोग करें। इसकी वजह से हिंदी भाषी कभी कुछ तमिल उच्चारण में किन्हीं संज्ञा शब्दों को सुनकर विस्मित हो जाते हैं। उदाहरण 'बिहार' के लिए 'बिगार' और 'बिहारी' के लिए 'बिगारी'(या 'बिकारी') जैसे उच्चारण करने पर उनका हिंदी में दूसरा अर्थ निकलने की वजह से हिंदी भाषियों को चकित होना सहज बात है।

शब्द–समूह की दृष्टि से तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्द हिंदी और तमिल दोनों में हैं। कारकों की दृष्टि से हिंदी और तमिल सुसमृद्ध हैं।

संस्कृत भाषा में लिंग तीन थे, जबकि हिंदी में दो लिंगों (स्त्री लिंग और पुल्लिंग) का प्रयोग होता है। तमिल में प्राणिवाचक शब्दों की ऐसी ही स्थिति होती है, इनके अलावा अप्राणिवाचक शब्दों के संदर्भ में नपुंसक लिंग का प्रयोग भी है। वचन के मामले में हिंदी और तमिल भाषाओं की स्थिति बराबर है।

शब्दों के अलावा व्याकरणिक नियमों व अन्य कई दृष्टियों से तमिल पर संस्कृत का प्रभाव हम देख सकते हैं। इस प्रभाव का अनुशीलन हम तमिल के व्याकरणिक ग्रंथों के माध्यम से कर सकते हैं। जैसे कि इससे पूर्व ही स्पष्ट किया गया है, 'तोलकाप्पियम' तमिल के उपलब्ध व्याकरणिक ग्रंथों में सबसे प्राचीन है। इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी के व्याकरणिक तत्वों का तमिल के व्याकरण के साथ तुलना की जा सकती है।

'तोलकाप्पियम' के प्रणेता तोलकाप्पियनार या तोलकाप्पियर को कई विद्वान 'तमिल भाषा के व्याकरण सिद्धांतों के जनक' मानते हैं। यह भी माना जाता है कि तोलकाप्पियर के गुरु अगस्त्य ने सबसे पहले तमिल भाषा व व्याकरण की व्याख्या की थी, उनकी कृति को 'अगत्तियम' के रूप में माना जाता है। संघम कालीन कुछ रचनाओं में इसका उल्लेख मिलता है, मगर यह कृति उपलब्ध नहीं हो पाई है। चूँकि अगस्त्य व उनके ग्यारह शिष्यों की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हो

पाईं, तोलिकाप्पियर (जो कि अगस्त्य का प्रथम शिष्य माना जाता है) द्वारा प्रणीत 'तोलकाप्पियम' को तमिल का प्रथम व्याकरण होने का श्रेय प्राप्त है। इसका अधिकांश पाठ आज परिष्कृत रूप में उपलब्ध है।

'तोलकाप्पियम' केवल व्याकरणिक ग्रंथ ही नहीं है, यह प्राचीनतम साहित्यिक कुसुम भी है जो तमिल भाषा, साहित्य, तमिल भाषियों के सामाजिक जीवन के विविध आयामों को प्रतिबिंबित करता है। युगीन इतिहास का यह बृहत दस्तावेज भी है। तोलकाप्पियर के संबंध में यह माना जाता है कि वे संस्कृत के भी ज्ञाता थे और उनकी कृति 'तोलकाप्पियम' पर 'ऐन्दिरम' के नाम से चर्चित व्याकरण का प्रभाव था। 'ऐन्दिरम' देवराज इंद्र द्वारा प्रणीत व्याकरणिक कृति मानी जाती है। इंद्र को कुशल वैयाकरण मानते हुए उनके व्याकरण का 'अगत्तियम' और 'तोलकाप्पियम' पर प्रभाव को भी माना जाता है।

संधि-

दो वर्णों के मेल हो जाने से उत्पन्न होने वाले विकार को 'संधि' कहते हैं।

तमिल व संस्कृत संधियों में तीन बिंदुओं में समानताएँ पाई गई हैं।

1. संस्कृत में जिस शब्द का अंत न से होता है और उससे पूर्व ह्रस्व स्वर है और उसके आगे स्वर से आरंभ होनेवाला शब्द जुड़ने पर ने द्वित्व हो जाता है।

सुगन + ईशह = सुगन्नीशह

तमिल में भी यही स्थिति है। उदा – कन् + अलकिदु = कन्नलकिदु

2. अंतिम 'म' का जब अघोष व्यंजन अनुसरण करता है तब वह तदनुरूप नासिक्य में बदलता है।

उदा – अम् + कित = अन्कित

('अनुस्वरस्य यायि पर स्वरनः')

तमिल का उदाहरण (अकारकीय संधि का संदर्भ) – मरम + कुरिदु = मरन्कुरिदु आदि।

3. संस्कृत तथा तमिल दोनों में संबोधक का अंतिम अक्षर में कोई परिवर्तन नहीं होता। इनके अलावा कई असमानताएँ ज़रूर हैं, इसके आधार पर विद्वानों का कहना है कि सैद्धांतिक दृष्टि से भिन्न भाषाएँ हैं।

हिंदी में मुख्यतः तीन संधियाँ देखी जाती हैं-स्वर संधि, व्यंजन-संधि, विसर्ग-संधि। स्वर-संधि के भी पाँच भेद हैं-दीर्घ संधि, गुण संधि, वृद्ध संधि, यण् संधि, अयादि संधि। तमिल की संधि हिंदी की से बिल्कुल भिन्न है।

द्रविड़ भाषाएँ और संस्कृत की आत्मजा हिंदी के बीच संबंधों की पहचान इन भाषा-भाषियों में आपसी सद्भाव विकसित करने का एक आत्मीय प्रयास साबित हो सकता है।

तमिल और हिंदी के बीच समान भाषिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ मुहावरों और लोकोक्तियों के संदर्भ में मिल जाते हैं। कई लोकोक्तियों दोनों भाषाओं में एक ही आशय से प्रयुक्त होती है, ऐसी अभिव्यक्तियाँ दोनों भाषा-भाषियों के बीच आपसी संपर्क-सूत्रों को मज़बूत करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

1. धर्मराजन (1990) (लेख - हिंदी-तमिल तुलनात्मक व्याकरण), तुलनात्मक व्याकरण, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (प्रथम संस्करण - अगस्त, 1990)

2. Dr. P.S. SubrahmanyaSastri (1934), History of Grammatical Theories in Tamil, TheKuppuswamiSastri Research Institute, Chennai. (1997 Edition)

3. Robert Caldwell (1856), A Comparative Grammar of the Dravidian or South Indian family of Languages, edited by Rev.J.L. Liyatt& T. Ramakrishna pillai, UoM, 1976, III Edition (Revised)

4. डॉ. सी. जय शंकर बाबु (2016), तमिल भाषा पर संस्कृत का प्रभाव (आलेख), मैसूर हिंदी प्रचार परिषद पत्रिका, वर्ष 46, अंक 11, पृ. 38-45

सहआचार्य, हिंदीविभाग, पांडिच्चेरी
विश्वविद्यालय, पुदुच्चेरी-605 014 (चैन्नई)
मो.- 9442071407

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है
– सुमित्रानंदन पंत

तेलुगु व हिंदी के बीच अंतर-संबंध

- ए. राधिका

भाषा विचार विनिमय का सशक्त साधन है। भाषा के बिना मनुष्य का विकास अधूरा है। ज्ञान तथा विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने तथा आदान-प्रदान करने का सशक्त माध्यम भाषा है। भारत जैसे एक बहुभाषिक देश के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो भाषा एक ऐसा अस्त्र है जिसके द्वारा समूची जनता को एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। भारत को एक सूत्र में बाँधने का श्रेय भाषा को दिया जाता है। यहाँ कई भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं में हिंदी अत्यधिक बोली जाने वाली भाषाओं के क्रम में सबसे आगे है और तेलुगु इस क्रम में दूसरे स्थान पर है। तेलुगु भाषा के साथ हिंदी का तालमेल कई मुद्दों पर होता है। वास्तव में भारतीय मूल की सभी भाषाओं की माता संस्कृत माना जाता है, इस कारण हिंदी और तेलुगु के कई शब्दों में एकरूपता पाई जाती है।

1960-70 के बीच सर्वेक्षणों के मुताबिक भारत में करीब 1652 भाषाएँ हैं। इन भाषाओं में कई भाषाएँ हिंदी से समरूपता रखती हैं। हमारे देश में 22 भाषाएँ संविधान की 8वीं अनुसूची में शामिल हुई हैं। ये सभी भाषाएँ अपने आप में हर प्रकार से समृद्ध हैं। इन सब भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन हुआ है और निरंतर हो रहा है। भाषा की वैज्ञानिकता की दृष्टि से हिंदी और तेलुगु भाषाओं की यह विशिष्टता है कि ये जैसे लिखी जाती हैं वैसे ही पढ़ी भी जाती हैं। विश्व की अन्य भाषाओं की तरह इसमें किसी अक्षर के उच्चारण का लोप नहीं होता है। तेलुगु को भी ठीक इसी प्रकार किसी अक्षर लोप किए बिना पढ़ा जाता है। स्पष्ट उच्चारण एक और विशेषता मानी गई है। इस विशिष्टता ने दोनों भाषाओं को सीखने में लोगों का रास्ता सुगम बनायी है।

तेलुगु और हिंदी भाषाओं का उद्भव और विकास :-तेलुगु द्रविड़ परिवार में आनेवाली भाषा है और हिंदी आर्य परिवार की भाषा। इन दोनों भाषाओं के लिए सुविकसित लिपि का प्रयोग किया जाता है। यह सत्य सर्वमान्य है कि हिंदी के लिए प्रयुक्त देवनागरी और तेलुगु के लिए प्रयुक्त तेलुगु लिपिजन्म ब्राह्मी लिपि से हुआ है, जो प्राचीन भारत की सबसे पुरानी लेखन प्रणाली है। तेलुगु लिपि में तेलुगु भाषा के प्रयोग का प्रमाण पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व तक मिलते हैं। ब्राह्मी लिपि ने अंतत: भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियों को विकास दिया, जिनमें देवनागरी, गुरुमुखी, तेलुगु, गुजराती, बंगाली, उड़िया, तमिल, मलयालम, कन्नडा, सिंहली और मध्य और दक्षिण पूर्व एशिया की बहुत बड़ी संख्या में लिपियाँ शामिल हैं (एम.सी. पद्मा व पी.ए. विजया)। तेलुगु भाषा का ब्राह्मी लिपि के दक्षिणी रूप से उत्पन्न होने के कई निदर्शन है।

हिंदी भारत की आधिकारिक भाषाओं में से एक है भारत की राजभाषा है। करीब 50 प्रतिशत भारतीय अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए हिंदी भाषा का उपयोग करते हैं। द्रविड़ भाषाओं में तेलुगु, तमिल, मलयालम और कन्नडा भाषाएँ शामिल हैं जो इसे दूसरा सबसे बड़ा भाषा परिवार बनाती हैं। तेलुगु आंध्र प्रदेश और तेलंगाना तथा पुदुच्चेरी की आधिकारिक भाषा है। ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न देवनागरी, और तेलुगु लिपियाँ बाएँ से दाएँ लिखी जाती हैं। दोनों भाषाओं में चौकोर रूपरेखाओं के भीतर सममित गोल आकृतियों को प्राथमिकता दी जाती है। देवनागरी को एक क्षितिज रेखा द्वारा पहचाना जाता है जो अक्षर के शीर्ष पर चलती है और वाक्यों के अंत में एक पूर्णविराम (' ।') रखा जाता है। देवनागरी, तेलुगु और गुरुमुखी लिपियाँ अबुगिडा लेखन प्रणाली से संबंधित हैं, जहाँ व्यंजन और स्वर एक यौगिक शब्द बनाते हैं (एम सी पद्मा व पी ए विजया)। हिंदी के लिए देवनागरी लिपि मेंग्यारह स्वरों और तैंतीस व्यंजन हैं, जबकि तेलुगु लिपि में अठारह स्वर और पैंतीस व्यंजन हैं, जो मिलकर शब्दांश बनाते हैं, दूसरी ओर गुरुमुखी लिपि में पैंतीस व्यंजन, अतिरिक्त छ: व्यंजन हैं। नौ स्वर विशेष, नासिका ध्वनि के साथ दो विशेष और एक विशेष जो व्यंजन उत्पन्न करता है, और तीन सबस्क्रिप्ट वर्ण।

दक्षिण भारतीय भाषाओं की अध्येता, शिक्षण व पत्रकारिता में सक्रिय और त्रिभाषी रचनाकार।

हिंदी और तेलुगु दोनों भाषाओं की वर्णमाला:-हिंदी और तेलुगु दोनों भाषाएँ काफ़ी विकसित वर्णमाला है। दोनों में सभी प्रकार के उच्चारणों के लिए उपयुक्त वर्ण हैं। स्पष्ट उच्चारण इन भाषाओं की एक और विशेषता मानी गई है। इस विशिष्टता ने दोनों भाषाओं को सीखने में लोगों का रास्ता सुगम बनाई है। तेलुगु को भी ठीक इसी प्रकार किसी अक्षर लोप किए बिना पढ़ा जाता है। हिंदी और तेलुगु दोनों भाषाओं में कई विषयों में समानताएँ हैं जैसे दोनों भाषाओं के अधिकाधिक अक्षर समान हैं। बाकी स्वर और व्यंजन अल्पप्राण तथा महाप्राण अक्षर आदि में एक रूपता है। हिंदी की तुलना में तेलुगु में कुछ वर्णों की संख्या जाता है। हिंदी के स्वराक्षरों में ए,ओ की जगह तेलुगु में क्रमश: ह्रस्व और दीर्घ के दो भिन्न वर्णों (और) का प्रयोग है बाकि अल्प प्राण और महाप्राण अक्षरों में कोई अंतर नहीं। इस क्रम में गौर से देखा जाए तो हर भाषा दो से तीन भाषाओं से मिलती जुलती है। कई शब्द एक से ज्यादा भाषाओं में एक जैसे नज़र आते हैं। यह भाषा का मौलिक तत्व है। भाषा कोस-कोस में बदलती रहती है। यह सर्वविदित है। इस प्रकार बदलती भाषा का दूसरी भाषा के साथ मेल-मिलाप होता है। समाज में प्रभावी रूप में प्रयोग होने वाले चाहे किसी अन्य भाषा के शब्द भी हो या इनका रूपांतरित शब्द भाषा के अंतर्गत स्थान दिए जाते हैं। कई संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी के शब्द हिंदी में देखने को मिलते हैं और तेलुगु में भी अन्य भाषा के शब्द। तेलुगु साहित्य एक स्वरांत भाषा है। इस कारण भी भाषा और मधुरबनता है। इस विशिष्टता के कारण भी संगीत साहित्य के लिए यह भाषा अत्यंत उपयुक्त है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इटालियन ऑफ़ द ईस्ट कहकर गुणगान किया है।

तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्द :-जैसे सर्वविदित है, संस्कृत विश्व की कई भाषाओं की जननी है। भारतीय भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का तत्सम और तद्भव रूप पाए जाते हैं। हिंदी और तेलुगु में भी इनका भरमार हैं। संस्कृत के शब्दों का यथावत जहाँ प्रयोग किया जाता है, उन्हें तत्सम शब्द कहते हैं। जैसे-जलज, लेखनी, फलम, पुष्पम, पदार्थ, आहार, मन, पुत्र, पुत्री, साधारण, माता, पिता आदि।

कुछ शब्द संस्कृत से उत्पन्न या विकसित शब्द होते हैं जिनका प्रयोग मूल रूप में न होकर उनसे उत्पन्न रूप कई भाषाओं में किया जाता है, इन शब्दों को तद्भव शब्द कहते हैं। जैसे-अडवि, अग्गि, कूडलि, सुन्न आदि तेलुगु में प्रचलित हैं।

देशी शब्द वे हैं, जिनका प्रयोग क्षेत्रीय स्तर पर किया जाता है और विदेशी शब्द वे हैं जिनकी व्युत्पत्ति के स्रोत विदेशी भाषाएँ हैं, जिन्हें जहाँ हम भारतीय भाषाओं में प्रयोग में लाते हैं, उन्हें विदेशी शब्दों की संज्ञा दी जाती है। हिंदी और तेलुगु दोनों भाषाओं में देशी और विदेशी शब्दों को पाया जाता है।

शब्दों के अर्थ के संदर्भ में हिंदी ओर तेलुगु :-साधारण, रात्रि, शुभ, चंद्र, सूर्य, तमाशा, दगा, ज़मीन्दार, नदी, फरियाद, झगड़ा, तारीख, विकास, आधार, जीवन आदि शब्द हिंदी और तेलुगु दोनों में समानार्थ पाए जाते हैं। लेकिन कुछ शब्द जिनका उच्चारण और वर्तनी में समानता पाई जाती है लेकिन इनका अर्थ अलग है। जैसे-शब्द

शब्द	हिंदी में अर्थ	तेलुगु में अर्थ
संसार	दुनिया	परिवार
अवस्था	दशा	तकलीफ़
अवसर	मौका	जल्दी
आशा	उम्मीद	इच्छा
आलोचना	समीक्षा	विचार-विनिमय
उपन्यास	एक लंबी कहानी (आख्यायिका)	भाषण

(अंग्रेज़ी शब्द नावल (Novel) के अर्थ में) परिवार जल्दी इच्छा

व्याकरण के संदर्भ में हिंदी और तेलुगु :- हिंदी और तेलुगु के व्याकरण में भी चूँकि दोनों भाषाओं का मूल संस्कृत होने के कारण भिन्नताओं से ज्यादा समानताएँ अधिक हैं। भले ही तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा मानी जाती है, तेलुगु भाषा संस्कृत की अभिव्यक्तियों का तेलुगु में सहज प्रयोग करने के कारण तेलुगु में संस्कृत मूल के शब्दों का भरमार है। संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, क्रिया विशेषण, अव्यय, काल, वचन, विभक्ति (कारक) समान हैं। लेकिन लिंग के विषय में एक विरोधाभास पाई जाती है। तेलुगु में तीन लिंगों का प्रयोग है। स्त्री लिंग, पुल्लिंग और नपुंसक लिंग। लेकिन हिंदी में दो ही लिंग का प्रयोग है। अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग जानना तेलुगु भाषा में बेहद आसान है, क्योंकि इनको नपुंसक लिंग में प्रयोग किया जाता है पर हिंदी के विषय में यह बात अलग है। अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग निर्धारण में कुछ नियमों के आधार पर किया जाता है। जैसे अकारांत शब्द पुल्लिंग और ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग का बोध कराते हैं लेकिन कुछ चूक भी हैं, यानी कुछ शब्द इस नियम का पालन नहीं करते हैं या अपवाद माने जाते हैं। अक्सर प्राणिवाचक शब्दों के लिए नर या मादा शब्दों को आगे जोड़ने के द्वारा लिंग भेद

किया जाता है। ठीक इसी तरह तेलुगु में भी स्त्रीवाचक और पुरुषवाचक के लिए क्रमशः आड़ा, मगा शब्दों को जोड़कर लिंग भेद स्पष्ट किया जाता है।

वचन के संदर्भ में भी तेलुगु और हिंदी दोनों भाषाओं में से तेलुगु में काफ़ी आसान नियम है, 'लु' अंत में लगाने के द्वारा एक वचन का बहुवचन में परिवर्तित होते हैं। हिंदी में वचन परिवर्तन भी लिंग पर आधारित है। पुल्लिंग शब्दों का बहुवचन में परिवर्तन हेतु आकारांत को एकारांत में बदला जाता है जैसे–

एक वचन	**बहु वचन**
लड़का	**लड़के**
बच्चा	**बच्चे**
घोड़ा	**घोड़े**

अकारांत और इकारांत पुल्लिंग शब्दों का बहुवचन परिवर्तन में कोई बदलाव नहीं होता। जैसे–

एक वचन	बहु वचन
घर	**घर**
पेड़	**पेड़**
पानी	**पानी**
मोती	**मोती**

स्त्रीलिंग संज्ञाओं में अकारांत, अकारांत का बहुवचन रूप एँ और इकारांत शब्दों का इयाँ लगने के द्वारा बनता है। जैसे–

कलम	**कलमें**
किताब	**किताबें**
माला	**मालाएँ**
समस्या	**समस्याएँ**
सेना	**सेनाएँ**
कहानी	**कहानियाँ**
लड़की	**लड़कियाँ**

साहित्यिक गतिविधयों में हिंदी और तेलुगु भाषाएँ :–पद्य रीतियों की बात पर गौर किया जाए तो हिंदी की पद्य रीतियों की तरह तेलुगु की पद्य रीतियों की संख्या भी बहुत है। रस, छंद, अलंकार आदि व्याकरणांशों के संदर्भ में भी इन दोनों भाषाओं में समानताएँ पाई जाती हैं। हिंदी के अनुरूप तेलुगु में भी हर प्रकार की साहित्यिक विधा में रचना की गई है। महाभारत, रामायण, भागवत की रचना तेलुगु में अत्यंत उत्कृष्टता के साथ की गई है। हिंदी साहित्य में जिन विशिष्ट विधाओं को स्थान मिला है उन सभी का प्रयोग हिंदी में भी हुई है। कहानी, निंबंध, उपन्यास, एकांकी, गद्य नाटक, पद्य नाटक, इत्यादि दोनों भाषाओं में समान रूप में हिंदी और तेलुगु भाषाएँ अपनी समान सत्ता दिखाई है। आधुनिक युग में भी दोनों भाषाओं का विकास क्रम समान तेजी के साथ हो रहा है। आधुनिक साहित्य के साथ–साथ लोक साहित्य का भी विकास दोनों भाषाओं में समान गति से हो रहा है। इक्कीसवीं सदी में आदिवासी साहित्य के संरक्षण और विकास का नया दौर शुरू हुआ है।

भारत में ऐसी कई विविधताएँ जिनके कारण भारत को एक छोटा विश्व कहा जाता है। भारत की हर विशेषता के पीछे हमारे देश की विविधता ही हमें दिखाई देती है। देश की सुंदरता उसकी विविधता में ही है। भाषाओं की विवधता उसके क्षेत्रीय भिन्नताओं पर निर्भर है और उनकी एकता या उनकी समानता उनकी पृष्ठभूमि पर निर्भर है। हिंदी और तेलुगु दोनों भाषाएँ इस प्रकार भिन्नता और एकता के प्रतीक हैं।

संदर्भ

तुलनात्मक व्याकरण, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण, अगस्त,1990

श्री सूर्यरायांध्रायनिघंटुवु, तेलुगु विश्वविद्यालय, तृतीय संस्करण, 1988

Identification of Telugu,Devanagari and English scripts using discriminating features, Padma MC, Vijaya PA, IJCSIT,Vol v,No.w, Nov 2009.

मलयालम और हिंदी के बीच अंतर-संबंध

-सी.जयशंकर बाबु , विजयेन्द्र बाबु

मलयालम द्रविड़ भाषाओं में आधुनिकतम मानी जाती है। इसकी प्राचीनता के संदर्भ में भाषावैज्ञानिक कथनों से यह स्पष्ट होता है कि मलयालम के व्यवहार प्रदेश केरल में कई सदियों तक तमिल प्रचलित भाषा थी। यह माना जाता है कि तमिल से ही मलयालय विकसित हुई है। मलयालम में तमिल एवं द्रविड़ भाषा के शब्दों के अलावा संस्कृत शब्द-संपदा का भरमार है। तद्भव रूपों की तुलना में तत्सम रूपों का ही प्रयोग अधिक है, मगर मलयालीकृत रूप में। हिंदी संस्कृत से विकसित भाषा मानी जाती है। हिंदी में तद्भव रूपों का काफ़ी विकास हुआ है। हिंदी की तुलना में अधिक संस्कृत शब्द-भंडार का मूल रूप में प्रयोग मलयालम में अधिक है। संस्कृत से संबंधों के क्रम में मलयालम और हिंदी के बीच अंतर्संबंधों की खोज की बड़ी प्रासंगिकता है।

मलयालम और हिंदी ध्वनियों की तुलना :-मलयालम और हिंदी ध्वनियों में काफ़ी समानताएँ हैं। कतिपय अंतर भी हैं। इन समानताओं और भिन्नताओं को समझने की कोशिश करेंगे। मलयालम और हिंदी की स्वर ध्वनियों में काफ़ी समान हैं। कुछ अतिरिक्त ध्वनियाँ मलयालम में देखी जा सकती हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ तक सभी स्वर हिंदी और मलयालम में समान हैं। उच्चारण की दृष्टि से 'ऋ' का उच्चारण 'रि' वत होता है, जबकि मलयालम में रु वत होता है। चूँकि यह स्वर है, अत: मलयालम का उच्चारण स्पष्टत: स्वरवत ही होता है । ए, ऐ और ओ, औ हिंदी में हैं, इनके स्थान पर मलयालम में ? (ह्रस्व ए), (ए), (ऐ), (ह्रस्व ओ), (ओ), (औ) हैं। स्पष्ट है कि मलयालम में अन्य द्रविड़ भाषाओं के अनुरूप ही ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' की ध्वनियाँ हैं, जबकि इनका हिंदी में बिल्कुल कम प्रयोग है, और अलग से अक्षर रूप भी हिंदी (देवनागरी) में प्रयोग में नहीं है। 'अं' और 'अ:' का प्रयोग भी मलयालम में है के रूप में। मलयालम में हिंदी की भाँति अर्धानुस्वर का उच्चारण बिल्कुल कम है, अत: मलयालमभाषी हिंदी में अर्धानुस्वर युक्त व्यंजनों (यहाँ तक कि अनुस्वार युक्त) के उच्चारण इस रूप में करते हैं कि कभी हिंदी भाषी भ्रम में पड़ जाते हैं। उदाहरण के लिए 'मैं' का उच्चारण 'मैम' जैसा करते थे। हिंदी में अनुनासिकता की जो अर्थभेदक स्थिति है, वह मलयालम में कम है।

व्यंजन वर्णों की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी और मलयालम में समान वर्ण कई हैं। क, च, ट, त, प वर्गों तक सभी वर्ण समान हैं। 'य' से 'ह' तक वर्ण भी दोनों भाषाओं में हैं। हिंदी की तुलना में मलयालम में कुछ अतिरिक्त ध्वनियाँ भी हैं- (ळ), (ऱ-'र' का उच्चारण कठोरपूर्वक होता है, जो 'र्र' जैसी ध्वनि होती है थोड़ी सी भिन्नता के साथ), (ऩ - 'न' का वर्त्स्य उच्चारण होता है)।

यह माना जाता है कि मलयालम के लिए प्रयुक्त लिपि का विकास ब्राह्मी के दक्षिणी रूप से हुआ है। तमिल के लिए प्रयुक्त वट्टेळुत्तु (वृत्ताकार लिपि) तथा संस्कृत पंडितों के द्वारा प्रयुक्त ग्रंथ-लिपि (संस्कृत ध्वनियों के लिए विकसित लिपि) के समन्वय से विकसित लिपि आज मलयालम लिपि के रूप में प्रयुक्त हो रही है। आधुनिक मलयालम के जनक माने जानेवाले 15वीं सदी के मलयालम कवि श्री तुंचत्तु रामानुजन एळुत्तच्छन को इस लिपि में सुधार का श्रेय भी दिया जाता है। उन्होंने अपनी कृतियों में अपने द्वारा सुधार की गई मलयालम लिपि का ही प्रयोग किया था। वर्तमान दौर में आधुनिक मलयालम लिपि का ही प्रचलन है।

हिंदी और मलयालम शब्द-भंडार :- भले ही हिंदी और मलयालम दो भिन्न परिवार की भाषाएँ मानी जीता हैं, मगर शब्द-भंडार की दृष्टि से हिंदी न जाननेवाली मलयाली भी हिंदी के कई शब्दों को समझ सकते हैं और मलयालम न समझने वाला हिंदी भाषी भी मलयालम के शब्दों को समझ सकता है। हिंदी और मलयालम के शब्द-भंडार पर संस्कृत का प्रभाव ही इसका कारण है।

जिस तरह हिंदी शब्द-भंडार के मामले में तत्सम, तद्भव, देशी और

मलयालम के अध्येता

विदेशी शब्दों के समूहों की बात होती है, उसी तरह मलयालम में भी तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्द उपलब्ध हैं। आधुनिक मलयालम में संस्कृत शब्दों की बड़ी मात्रा है। संस्कृत की तनया मानी जाने वाली हिंदी में भी कुछ संस्कृत तत्समों का भिन्न अर्थों में प्रयोग है, वैसी स्थिति मलयालम में भी है। संस्कृत आधारित शब्द-संपदा की वजह से इन दोनों भाषाओं के शब्द-भंडार की तुलना इन भाषाओं के अंतर्संबंधों की निकटता स्थापित करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिंदी और मलयालम में समान अर्थों में प्रयुक्त तत्सम भी मलयालम भाषा की प्रकृति के अनुकूल रूप में नज़र आते हैं। तमिल मूल की भाषा होने के नाते मलयालम में भी तमिल की भाँति ही हिंदी में प्रयुक्त शब्दों के 'म्' को जोड़ने से मलयालम रूप बन जाता है।

समान अर्थ में प्रयुक्त हिंदी और मलयालम शब्द उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत हैं –

'म्', 'णम्', 'नम्','वु' प्रत्यय आदि जुड़ने या थोड़े-से परिवर्तन के साथ मलयालीकृत होकर कई संस्कृत शब्द हिंदी में प्रयोग में हैं, वे मलयालम में भी समान अर्थ में प्रयुक्त हैं। के. रविवर्मा ने ऐसे शब्दों की सूची तैयार की है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत हैं –

हिंदी शब्द	मलयालम शब्द
अभिलाषा	अभिलाषम्
आरोप	आरोपणम्
आवश्यक	आवश्यम्
कचहरी	कच्चेरी
कमी	कम्मी
जीवन	जीवनम्
निरर्थक	निरर्थम्
पिता	पितावु
बाज़ार	बजार
मन	मनस्सु
माला	माल ('ल' का उच्चारण अकारांत होता है, हलंत नहीं)
मैदान	मैतानम
संसद	संसत्तु
सरकार	सरकार
स्मरण	स्मरण

हिंदी तद्भव शब्दों के मामले में भी मलयालम में कुछ परिवर्तनों के साथ प्रयोग में मिल जाते हैं। कुछ उदाहरण देखेंगे –

तत्सम रूप	हिंदी तद्भव	मलयालम में प्रयुक्त शब्द रूप
कृष्ण	कान्ह	कण्णन
पंक्ति	पांत	पंति
भिक्षा	भीख	पिच्च
मुख	मुँह	मुकर

हिंदी और मलयालम में कई ऐसे शब्द हैं दोनों भाषाओं में कई मामलों में एक जैसे रूप में प्रयुक्त होते हैं मगर दोनों भिन्नार्थ में प्रयोग में हैं। ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण हम देखेंगे –

मलयालम और	हिंदी में प्रयुक्त रूप	हिंदी में अर्थ	मलयालम में अर्थ
अन्याय	जुल्म		नालिश
अतिशय	अत्यधिक		अद्भुत
अपेक्षा	आशा, माँग		अनुरोध
अभिप्राय	मतलब		राय
आक्षेप	शिकायत		निंदा
आग्रह	अनुरोध		इच्छा
आलोचना	समीक्षा		विचार, सोचना
आशा	उम्मीद		इच्छा
उपन्यास	आख्यायिका (नॉवेल)		निबंध
कटाक्ष	व्यंग्य		तिरछी नज़र
कार्य	काम		बात, समाचार
कुली	मज़दूर		मज़दूरी
चरित्र	आचरण (शील)		इतिहास
पशु	जानवर		गाय
प्रसंग	मौका		भाषण
विचार	ख्याल		चिंता
शासन	हुकूमत		धमकी
साधु	संत		बेचारा
शिक्षा	अध्ययन		सज़ा

ऐसे शब्दों की सूची भी बड़ी है, मगर यह जरूर कहा जा सकता है, समानार्थी शब्दों की अधिकता है।

मलयालम और हिंदी में शब्दों का लिंग-निर्णय :- हिंदी में जिस भाँति संज्ञाओं का रूप परिवर्तन लिंग, वचन, विभक्ति आदि के कारण होता है, उसी तरह मलयालम में भी परिवर्तन होता है। हिंदी में दो ही

लिंग हैं–पुल्लिंग और स्त्रीलिंग जबकि मलयालम में तीन लिंग माने जाते हैं–पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग।

हिंदी में प्राणिवाचक शब्दों के लिंग नियम तो स्पष्ट हैं, मगर अप्राणिवाचक शब्दों के मामले में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के जो नियम हैं, उनके कई अपवाद भी हैं। जबकि मलयालम में प्राणिवाचक शब्दों के लिंग नियमों में एक अपवाद प्राणियों के साथ है आमतौर पर कुत्ता, बिल्ली आदि प्राणियों को ज्ञानहीन प्राणियों के रूप में नपुंसक लिंग में गिना जाता है। अप्राणिवाचक शब्दों के लिए मलयालम में नपुंसक लिंग का प्रयोग होता है। मलयालम में ज्ञानवान माने जानेवाले जीवों (जिनमें मनुष्य, देवता, पालतू जानवर आदि को मानते हैं) के मामले में ही स्त्री–पुरुष भेद माना जाता है। अन्य पशु–पक्षी जो ज्ञानवान नहीं माने जाते हैं, छोटे बच्चे आदि नपुंसक लिंग में माने जाते हैं। हिंदी में कुछ जीवों के लिंगबोध के लिए 'नर' और 'मादा' शब्द (उपसर्ग जैसे) लगाए जाते हैं, उसी तरह कुछ मामलों में मलयालम में 'आण' और 'पेण' शब्द लगाए जाते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी जहाँ बच्चा, बच्ची का प्रयोग होता है, वहीं मलयालम में 'आण कुट्टि' (लड़का), 'पेण कुट्टि' (लड़की) का प्रयोग होता है। 'पेण' शब्द में 'पे' का उच्चारण ह्रस्व होता है।

मलयालय में लिंग की पहचान के लिए यद्यपि कई प्रत्यय हैं, मगर कुछ सामान्य प्रत्यय भी हैं। मलयालम संज्ञाओं के मामले में 'अन' पुल्लिंग प्रत्यय है, 'इ' स्त्रीलिंग प्रत्यय है, जबकि 'अ' या 'तु' नपुंसक लिंग का प्रत्यय है। मलयालम के सर्वनामों के मामले में 'अन्' पुल्लिंग प्रत्यय, 'अळ्' स्त्रीलिंग प्रत्यय और 'तु' नपुंसक लिंग प्रत्यय होते हैं। उदाहरण के लिए 'अवन्' (पुल्लिंग), 'अवळ्' (स्त्रीलिंग), 'अतु' (नपुंसक लिंग)।

हिंदी में वाक्य–रचना में क्रिया का रूप आमतौर पर कर्ता के लिंग, वचन आदि के आधार पर निर्धारित होता है। कर्ता के साथ 'ने' प्रत्यय लगने की स्थिति अलग होती है, जिसमें कर्म के आधार पर क्रिया के लिंग, वचन आदि निर्धारित होते हैं। मलयालम में कर्ता के लिंग के आधार पर क्रिया रूप परिवर्तन नहीं होता है। मलयालम में क्रिया की स्थिति कुछ हद तक अंग्रेज़ी भाषा के अनुरूप होती है। हिंदी भले ही भारोपीय परिवार की भाषा है, मगर क्रिया के रूप निर्धारण में अंग्रेज़ी जैसी स्थिति नहीं होती है, वाक्य–रचना में क्रिया के निर्धारण में लिंग की भी भूमिका होती है। मलयालम वाक्यों में क्रिया का रूप निर्धारण हिंदी की तुलना में आसान है, क्योंकि इसमें कर्ता के लिंग को ध्यान में रखने की आवश्यकता ही नहीं होती है। इस संदर्भ में मलयालम की स्थिति अंग्रेज़ी जैसी लगती है।

हिंदी और मलयालम में शब्दों के वचन :– हिंदी तथा मलयालम दोनों भाषाओं में दो ही वचन हैं। भले ही संस्कृत में द्विवचन का अलग से प्रयोग है, संस्कृत की तनया मानी जाने वाली हिंदी और संस्कृत शब्दों के भरमार वाली मलयालम भाषा, दोनों में द्विवचन का प्रयोग अलग से नहीं होता। एक वचन से बहुवचन परिवर्तन के लिए इन दोनों भाषाओं में अलग–अलग नियम हैं। हिंदी के नियमों (विभक्ति रहित और सहित) की तुलना में मलयालम बहुवचन का नियम एक ही प्रकार का है। अर्थात् हिंदी के बहुवचन नियमों की तुलना में सरल भी है। मलयालम में बहुवचन बनाने के तीन नियम हैं। पहला नियम लिंग सहित शब्दों के बहुवचन बनाने संबंधी नियम। दूसरा लिंग रहित शब्दों के बहुवचन बनाने संबंधी नियम। तीसरा कभी–कभी बहुवचन–प्रत्यय के साथ दूसरा शब्द जुड़कर प्रयुक्त होना।

मलयालम के वचनों के कुछ उदाहरण देखेंगे –

नियम	एक वचन	बहुवचन
लिंग सहित	अध्यापकन	अध्यापकन्मार
लिंग सहित	तक्क	तक्कमार
लिंग सहित	मल	मलकळ
लिंग रहित	शूद्रन	शूद्रर
प्रत्यय के साथ	राजा	राजाकन्मार (इसमें राजा के साथ 'कळ्' और 'मार' जुड़ने से यह रूप बना है)
प्रत्यय के साथ	गुरु	गुरुकन्मार (इसमें भी 'कळ्' और 'मार' जुड़े हैं)

प्रत्यय के साथ बहुवचन रूप के लिए हिंदी के संदर्भ में गण, जन, लोग आदि जुड़कर बनते हैं।

हिंदी तथा मलयालम में कारकरचना :– हिंदी की तरह ही मलयालम में भी आठ कारक हैं। उन्हें समझने की कोशिश करेंगे।

क्र. सं.	हिंदी के कारक	हिंदी में विभक्ति-चिह्न	प्रत्यय मलयालम के कारक अर्थ / हिंदी से तुलना	मलयालम में
1	कर्ता	ने	निर्देशिका कर्ता	(कोई चिह्न नहीं)
2	कर्म	को	प्रतिग्राहिका कर्म	ए (ह्रस्व), ए (दीर्घ)
3	करण	से	संयोजिका करण	ओटु

4 संप्रदान	को	उद्योजिका संप्रदान	क्कु
5 अपादान	से	प्रायोजिका अपादान	आल्
6 संबंध	का, के, की,	संबंधिका संबंध	उटे, न्टे, ले
7 अधिकरण	में, पर	आधारिका अधिकरण	इल्
8 संबोधन	ए, ऐ, अरे --	संबोधन	हे, ए

हिंदी तथा मलयालम में यद्यपि कारकों की संख्या समान है, मगर प्रयोग में भिन्नता है। हिंदी में एक ही संज्ञा की कुछ संदर्भों में चार भिन्न प्रयुक्तियाँ होने की संभावना है, जबकि मलयालम में एक से अधिक कारकों के लिए नहीं आती है। हिंदी में विभक्तियों को अर्थ के आधार पर निर्धारित करना पड़ता है, उदाहरण के लिए करण व अपादान के लिए 'से' विभक्ति प्रत्यय का ही प्रयोग होने के कारण अंतर अर्थ के आधार पर ही स्पष्ट हो पाता है। हिंदी में कर्म और संप्रदान में कारक विभक्ति प्रत्यय 'को' की भी यही स्थिति है। हिंदी और मलयालम में कारकों के प्रयोग के संबंध में काफ़ी बातें की जा सकती हैं, मगर इस आलेख के आकार की सीमा को ध्यान में रखते हुए सीमित चर्चा ही की गई है।

कारकों के प्रयोग के क्रम में मलयालम और हिंदी में सर्वनामों की स्थिति :- हिंदी भाषा में लिंग-भेद के आधार पर सर्वनाम में रूप-भेद नहीं होता है, क्रिया के रूप के आधार पर ही लिंग-निर्णय स्पष्ट होता है। मलयालम में लिंग और वचनों के आधार पर क्रिया में रूप-भेद न होने के कारण सर्वनाम तीनों लिंगों के लिए अलग-अलग रूप में मिल जाते हैं। इस कारण हिंदी की तुलना में मलयालम में सर्वनामों की बड़ी संख्या है। हिंदी भाषियों को मलयालम के मध्यम पुरुष के सर्वनाम से निश्चय ही संशय में पड़ना पड़ेगा, जो अन्य पुरुष के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके अलावा उत्तम पुरुष बहुवचन मलयालम में दो हैं। वे हैं-श्रोतारहित और श्रोतासहित। 'ञान्' (मैं) के दो बहुवचन रूप मिलते हैं। 'ञङ्ङळ्' (हम) श्रोतारहित और 'नाम्' (हम) श्रोतासहित बहुवचन सर्वनाम रूप हैं। इनके लिए हिंदी में केवल 'हम' का ही प्रयोग होता है। चूँकि मलयालम में सर्वनाम के हिंदी से चार गुना रूप हैं, अत: इसकी भी विस्तृत चर्चा संभव है।

इसी तरह अन्य कई व्याकरणिक तत्वों की चर्चा की जा सकती है, जिसमें मलयालम में और हिंदी में समानता और भिन्नता के कई बिंदु हैं। संचार और विचारों के आदान-प्रदान का महत्त्वपूर्ण साधन होती है भाषा। अत: निश्चय ही इस दृष्टि से हिंदी और मलयालम में समान अर्थ प्रतिपादिक शब्दों और सांस्कृतिक, भावानात्मक अभिव्यक्ति के शब्दभंडार और अभिव्यक्तियों, मुहावरों व लोकोक्तियों में भी समानता के कई बिंदु नज़र आते हैं। भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने में भारतीय भाषाओं की एकात्मकता की बड़ी भूमिका है। राष्ट्रीय स्तर की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के सुदृढ़ीकरण के लिए विभिन्न भाषाओं में हिंदी के साथ एकात्मकता के सूत्रों को विकसित करने की अपेक्षा है। इससे हिंदी भाषाभाषियों में भारतीय भाषाओं के प्रति और विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रयोगकर्ताओं में हिंदी के प्रति श्रद्धा, सद्भाव और निष्ठा जागृत होगी, इससे भारत की भावात्मक एकता, सांस्कृतिक एकात्मकता का विकास होगा।

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Malayalam_script

2. के. रविवर्मा (1990) (लेख-हिंदी-मलयालम तुलनात्मक व्याकरण), तुलनात्मक व्याकरण, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (प्रथम संस्करण-अगस्त, 1990)

3.डॉ. एनईविश्वनाथअय्यर (2009), अनुवाद : भाषाएँ, समस्याएँ, प्रभात प्रकाशन

स संस्थापक संपादक, 'युगमानस', प्रधानसंपादक, 'आंतरभारती'

सहआचार्य, हिंदीविभाग, पांडिच्चेरीविश्वविद्यालय, पुदुच्चेरी-605014

'श्रीविराज', मुनिसिपल रोड,
मुत्यालम्मन नगर, गणपतिचेट्टि कुलम,
पुदुच्चेरी-605 015 (चैन्नई)
मो.- 9442071407

हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है

- कमलापति त्रिपाठी

कन्नडा एवं हिंदी भाषा का अंतर-संबंध

– उषारानी राव

मूल्यों एवं संस्कृति के प्रति नव चेतना जागृत करने में जीवंत भूमिका भारतीय भाषाओं की रही है।

किसी भी समूह, समाज अथवा देश में सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रमुख माध्यम भाषा है। यहाँ तक कि देश की स्वतंत्रता और मानव के संघर्ष एवं मुक्ति की अभिव्यक्ति का साधन बनकर भाषा का योगदान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति के साथ भाषा का सम्बन्ध अत्यन्त संश्लिष्ट रहा है। भारतीय संस्कृति एवं विरासत का प्रतिनिधित्व करने वाली भारतीय भाषाएँ अन्योन्याश्रित हैं। भाषा की चेतना सदैव से लोकमंगल की चेतना रही है। लोकजीवन, विज्ञान, राजनीति, साहित्य, कला, एवं धर्म के अंतर्गत भाषा, भावों, विचारों के द्वारा जीवन मूल्यों की वाहिका होती है। तत्ववेत्ताओं ने इसे ही वाक् शक्ति की संज्ञा दी है। शब्द को शिव और वाणी को शक्ति कहा। किसी भी भाषा की अपनी अस्मिता होती है। अभिव्यक्ति की बुनियादी शक्ति से भाषा अपनी ओर आकर्षित करती है। प्रसिद्ध भाषाविद विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं कि 'प्रौद्योगिकी, ज्ञान – विज्ञान और यांत्रिकी के साथ चलने के लिए नए संदर्भों में हिंदी को एक अधिक व्यापक भाषा का रूप लेना है।' वस्तुत: भाषा में अभिव्यक्त व्यक्ति एवं समाज की स्थितियों को साहित्य में उल्लेखित देखते हैं तो अद्वितीय उपलब्धि का अनुभव होता है। भाषा से संवेदना व्यापक होती जाती है। जिसका विस्तार हम भाषा की विभिन्न सरणियों में साहित्य के माध्यम से देखते हैं। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत चाहे संत ज्ञानेश्वर हों या तुलसी, कबीर हों या नरसी मेहता या वह प्रेमचंद का होरी हो या कामायनी का मनु या शेखर एक जीवनी का प्रमत्थ्यू हो, इन सबके भीतर प्रवाहमान संवेदना व्यक्ति, समाज और युग के मनोवृत्तियों में गहरे पैठकर नैतिक जिम्मेदारी का अनुभव कराता है। तुलसीदास का विनीत आग्रह 'भाषा भनति मोर मति थारी' भाषा के प्रति सामूहिक भाव बोध हिंदी की सम्पत्ति है। यह हिंदी की धन्यता है कि ब्रज, अवधी, मैथिली, राजस्थानी, खड़ी बोली, सिद्धों की सूफी और दक्कनी आदि का समावेश हिंदी भाषा साहित्य में हुआ है।

प्राचीन काल से ही दक्षिण भारत भाषाई सौहार्द के लिए उर्वर रहा है। दक्षिण भारत की भाषाओं में कर्नाटक की भाषा कन्नडा एक प्रमुख भाषा के रूप में जानी जाती है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में पुर्तगाली जब पहले-पहल भारत आए तो उन्होंने भारत के पश्चिमी तट तथा गोवा के दक्षिण में कर्नाटक के मध्य के क्षेत्र में कन्नडा भाषा को प्रचलित पाया था। उन्होंने वहाँ की भाषा को कैनरीज़ (canarese) शब्द दिया था। इसके पूर्व के इतिहास को देखते हैं तो उल्लेख मिलता है कि महाभारत के भीष्म पर्व में कर्नाटक शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है। वराहमिहिर की वृहद्संहिता एवं कथा सहिसागर में भी कर्नाट शब्द अनेकों बार आए हैं। दूसरी शताब्दी में रचित तमिल ग्रंथ शिल्पादिकारम में कन्नडा बोलने वालों को करुणाडर कहा गया है। पाँच द्रविड़ भाषाओं में कन्नडा एक उल्लेखनीय भाषा के रूप में विकसित है। कर्नाटक के हल्मिडी नामक स्थान से प्राप्त कन्नडा को शिलालेख 450 ई. का माना जाता है। कन्नडा साहित्य के इतिहासकार आर. नरसिंहाचार और ब्रिटिश मूल के बी. एल. राइस के अनुसार कन्नडा शब्द संस्कृत के कर्नाटका तद्भव है। 12वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक कन्नडा भाषा का व्याकरण संस्कृत सूत्रों में लिखा गया। हालाँकि दोनों की लिपियों में भिन्नता है। कन्नडा की ब्राह्मी एवं संस्कृत की देवनागरी है। ब्राह्मी लिपि कदम्ब और चालुक्यों के शासन काल में पाँचवीं और सातवीं के मध्य में प्रयोग किए जाने के प्रमाण मिलते हैं। इसमें 47 वर्णों का उल्लेख मिलता है। जो अब 51 वर्ण बन गये हैं। कन्नडा भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द मिलते हैं तो वहीं संस्कृत में भी कन्नडा भाषा के कई शब्द स्वीकार किए गए हैं। संस्कृत के ग्रंथों को प्रचुर मात्रा में

प्राध्यापक कन्नडा, कवयित्रि एवं लेखिका

कन्नडा में लिखे गए हैं। प्रथमत: फर्टिनेड किटेल वर्ष 1894 में सत्तर हजार कन्नडा के शब्दों के कोष तैयार करने के लिए प्रसिद्ध हुए। कविराजमार्ग (द रायल रोड ऑफ पोएट्स) कविताओं पर तथा वड्डाराधने नौंवीं शताब्दी में पहले साहित्यिक ग्रंथ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। तमिल भाषा के प्राचीन व्याकरण ग्रंथ तोलकापियम का हिंदी एवं कन्नडा में अनुवाद भाषा के व्याकरण और काव्य सिद्धांत पर अनूठा कार्य है।

किसी भी भाषा के विकास में लोकचेतना की अभिव्यक्ति अग्रणी होती है। साहित्यिक सर्जना भाषा को लोकप्रिय बनाती है। यही कारण है कि भाषा के विकास के साथ-साथ लोक चेतना की अभिव्यक्ति का साहित्यिक रूप भी उल्लेखनीय है। व्यक्ति और भाषा समाज के लिए पूरक होते हैं। आपसी निर्भरता सामाजिक सद्भाव के सोपान पर देश को उन्नति की ओर ले जाने का कार्य करते हैं। 12वीं शताब्दी में रचे गए वचन साहित्य भक्ति काल में अभिव्यक्त शरणागत भाव के सौंदर्य की पराकाष्ठा करते हैं।

हिंदी के साथ कन्नडा का अंतर्संबन्ध प्रारंभ से ही माना जाता है। व्याकरण विशेषज्ञ डॉ. ए. जानकी के अनुसार 'हिंदी की संयुक्त क्रियाएँ द्रविड़ भाषा की उपज है।' हिंदी में कृदन्त की बहुलता मिलती है। अव्ययों के साथ विभक्ति प्रत्यय का उदाहरण दृष्ट है। इल्ली इल्लिंदा इल्लिगे-यहाँ, यहाँ से, यहाँ पर आदि।

हिन्दी की ओर दृष्टि डालें तो हिन्दी की लिपि देवनागरी संस्कृत से प्रसूत है। हिन्दी जागरण की भाषा बनकर भारत के कोने-कोने में प्रसारित हुई। स्वतंत्रता के दिनों में हिन्दी भाषा ने चहुँ ओर पथ दर्शन किया है। हिंदी ने दक्षिण के क्षेत्र में भी अपने पैर पसारे। या यूँ कहा जाए कि स्वंतत्रता के संघर्ष की आँधी से हिंदी और कन्नडा की पारस्पारिकता नव-नवीन हुई। भाषिक समन्वय की दृष्टि से देखें तो दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं से अन्य भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदान की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन है। संचार क्रांति के युग में आज यह संबंध व्यापक रूप ले रहा है। दोनों भाषाओं के बीच सह-अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आपसी सौहार्द एवं सांस्कृतिक सामंजस्य के लिए भाषा की मिट्टी से अधिक उर्वर कौन सी वस्तु हो सकती है। बौद्धिक विचार एवं भाव धारा का एकमेक होना भाषाओं का प्रदेय है। कन्नडा और हिंदी के बीच ज्ञान-विज्ञान की साझेदारी अनुवाद के द्वारा कभी मूल भाषा से तो कभी अंग्रेजी के माध्यम से होता रहा है। सृजनात्मक चेतना का यह संवाद दोनों ओर से समाज और व्यक्ति को संकट से बचाने व उबारने का काम करती है।

लोहगढ़ किला लोनावाला महाराष्ट्र पर कन्नडा में अनुवाद ऐतिहासिक साझेदारी का उदाहरण है। उसी तरह भारत के निर्माण में कबीर के योगदान को कन्नडा में अनुवाद करना तथा जैन ग्रंथ के वैचारिक चिन्तन को पुष्ट करता है। कन्नडा और हिन्दी के बीच अनुवाद एक पुल के रूप में भाषाई एवं सांस्कृतिक एकरूपता लाने में उल्लेखनीय रूप से अग्रणी है।

हिंदी और कन्नडा में चंपू, गाथा, मुक्तक और प्रबंध शैलियों की विशेषता संस्कृत से प्रभावित है। षट्पदी एवं सांगत्य शैलियाँ कन्नडा भाषा की प्रमुख शैलियाँ हैं। दक्षिण में नागरी लिपि को नंदीनागरी के नाम से जाना जाता है। संस्कृत के पुस्तकों को लिखने में इसी लिपि का प्रयोग होता रहा है। यही कारण है कि प्राचीन ऐतिहासिक शिलालेख एवं ताम्रपत्र नागरी लिपि में ही पाए गए। हिंदी कन्नडा के सह अस्तित्व का सशक्त उदाहरण यह है कि देवनागरी का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। नागरी लिपि का प्रचार ईसा की आठवीं सदी के समय माना जाता है। दक्षिण में जो हिंदी का विकास हुआ वह दक्खिनी हिंदी के रूप में लोकप्रिय है। जिस प्रकार हिंदी के साहित्य में अवधी, ब्रज भाषा, मैथिली, राजस्थानी में रची गई रचनाएँ न्यस्त हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत में दक्खिनी हिंदी को आधार स्तंभ के रूप में स्वीकारा गया है। हिंदी में स्थानीयता का समावेश भाषा को सहज बनाकर जीवंत बना देता है। 'दक्खन 'शब्द भी संस्कृत से उद्भव हुआ। सहयाद्री की पर्वतमाला से लेकर गोदावरी कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदी तक का जो भू भाग है, उसे दक्खनी भाग कहा जाता है। दक्खिनी हिंदी का सूफी साहित्य हिंदी साहित्य से प्रभावित रहा।

मनुष्य के बाह्य क्रियाकलाप आंतरिक चेतना से ही परिचालित होते हैं। जीवन मूल्यों को आत्मसात कर युग विशेष को प्रस्तुत करना आंतरिक चेतना का परिणाम है। अत: अनेक सोपानों से गुजर कर वैचारिक चेतना को सांस्कृतिक जागरण की पृष्ठभूमि में नए क्षेत्र की खोज करते देखा गया हैं। महात्मा गाँधी ने स्वराज की संकल्पना में भाषा की परस्परता पर जोर दिया। गाँधी जी इस बात पर जोर देते थे कि जिन क्षेत्रों में हिंदी नहीं है, वहाँ हिंदी को पहुँचाया जाना चाहिए। सांस्कृतिक नवजागरण के अग्रणी गाँधी जी ने दक्षिण में

हिंदी प्रचार आंदोलन के कार्य को सुनिश्चित करने के लिए अपने सुपुत्र देवदास गाँधी को मद्रास भेजा था। 16 जून 1918 को हिंदी साहित्य सम्मेलन के बाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँधी जी के द्वारा संस्थापित संस्थाओं को राष्ट्रीय महत्व की संस्थाओं के रूप में घोषित किया गया। वर्ष 1964 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा राष्ट्रीय संस्था के रूप में घोषित हुई। इसकी चार शाखाएँ हैं और उच्च शिक्षा शोध संस्थान भी है। इन सभाओं के द्वारा हिंदी की विभिन्न कक्षाओं के लिए परीक्षाओं का संचालन किया जाता है। उच्च शिक्षा शोध संस्थान के माध्यम से शोध की औपचारिक उपाधियाँ भी प्रदान की जा रही हैं। इसके अलावा कुछ अन्य संस्थाएँ भी हैं, जो कर्नाटक, केरल, आंध्रप्रदेश में स्थापित की गई हैं। वर्ष 1939 में कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति, वर्ष 1943 में मैसूर हिंदी प्रचार परिषद तथा वर्ष 1953 में कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति की स्थापना की गई। इन संस्थाओं द्वारा संचालित कक्षाओं में हिंदी सीख कर परीक्षा देने वाले छात्रों की संख्या लाखों में हैं। वे विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों में शिक्षक के रूप में हिंदी के प्रचार प्रसार में लगे हुए हैं। इन संस्थाओं के द्वारा हिन्दी में कई पत्रिकाएँ भी प्रकाशित की जाती हैं। कर्नाटक के परिप्रेक्ष्य में यदि देखें तो यहाँ हिन्दी के प्रति विद्यार्थियों में रुचि जगाने एवं प्रचार तथा प्रसार के लिए निरंतर संघर्ष करने वालों में अग्रणी नागप्पा, शांताबाई, प्रभाषणकर प्रेमी, शिवलिंगपट्टन शेट्टी, चंद्रकांत कुस्नूर, ललिताम्बा, भालचंद जयशेट्टी, रामसंजीवनय्या, मनोहर भारती, अनंतमूर्ति राव आदि प्रमुख हिंदी के शिक्षाविद, लेखक, साहित्यकार एवं अनुवादक हैं। जिन्होंने हिंदी और कन्नडा में समान रूप से प्रतिबद्धता दिखाई है। मौलिक रचना के साथ-साथ श्रेष्ठ ग्रंथों के अनुवाद किए।

भाषा चिंतन की यह साझी परंपरा भारतीय भाषाओं की विस्तृत भौगोलिकता में समृद्ध होकर आवागमन करता रहा है। भौगोलिक विविधता बहुलतावादी चरित्र की विशिष्ठता को इंगीत करता है। भाषाई आकलन के लिए यह आवश्यक है। कर्नाटक स्वतंत्रता से पहले मैसूर राज्य के नाम से जाना जाता था। पश्चिम में अरब सागर, उत्तर पश्चिम में गोवा, उत्तर में महाराष्ट्र, पूर्व में आंध्र प्रदेश, दक्षिण पूर्व में तमिलनाडु तथा दक्षिण में केरल से जुड़ा हुआ यह राज्य एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। कर्नाटक में कोरगा, लंबानी, बड़गा आदि बोलियाँ प्रचलित हैं। दक्षिण कर्नाटक की बोली तुलु एवं कोंकणी है। जो कि एक समृद्ध भाषा भी है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में कन्नडा के साथ हिन्दी का पठन-पाठन जारी है।

हिंदी हमेशा से एक पुल की भूमिका में दिखाई देती रही है। आज यदि यह जानना चाहें कि भारतीय साहित्य में अथवा कन्नडा साहित्य क्या हो रहा है, तो जिस एक भाषा के माध्यम से आप ये मोटे तौर पर ठीक-ठीक जान सकते हैं, वह हिंदी है। अनुवाद का काम सबसे अधिक हिंदी में ही हो रहा है। यह सर्वविदित है कि हिंदी एक बड़ी भाषा है, तो बड़ी भाषा की जिम्मेदारी भी बड़ी होती है। वास्तव में भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाना देश की एक लोकतांत्रिक जरूरत है। हिन्दी को प्रमुखता से स्वीकार किया जाना आवश्यक है। इससे भारतीय भाषाओं के लिए हिन्दी में आलोचक, विमर्शक एवं बड़ी संख्या में पाठक मिल सकेंगे।

17, अरुणिमा, 11थ क्रॉस, नियर रवी इंटरप्राइजेज,
पद्मनाभ नगर, बेंगलुरु-560070 (कर्नाटक)
मोब.- 9845532140

हिंदी का प्रचार और विकास कोई रोक नहीं सकता

- पंडित गोविंद बल्लभ पंत

कन्नडा तथा हिंदी भाषाओं का अंतर-संबंध

- आलूरु राधिका, सी. जयशंकर बाबु

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से कन्नडा को द्रविड़ परिवार की भाषा माना जाता है। ऐसे वर्गीकरण के तहत हिंदी को आर्य परिवार की भाषा के अंतर्गत माना जाता है। इन दोनों भाषाओं में पारिवारिक भिन्नताओं के बावजूद निकटता के कई सूत्र मिल जाते हैं। इस प्रकार की निकटता के कई कारण हैं। कन्नडा भाषा का संस्कृत तत्समों का प्रयोग इसका एक प्रमुख कारण है। कन्नडा और हिंदी भाषाओं के बीच अंतर-संबंधों के अनुशीलन के बहाने दोनों भाषाओं में निकटता के सूत्रों को खोजने की कोशिश करेंगे।

भारतीय संस्कृति भिन्नता में एकता के दृढ़ सूत्रों का आधार स्तंभ है। भारतीय भाषाओं में आपसी संबंधों के सूत्र भी इसी आधार पर खोजे जा सकते हैं, भले ही भाषावैज्ञानिक उन्हें पाँच अलग-अलग भाषा परिवारों में वर्गीकृत करते हैं। कन्नडा और हिंदी के बीच अंतर-संबंधों के सूत्र कई मिल जाते हैं।

कन्नडा तथा हिंदी की ध्वनियाँ :- कन्नडा तथा हिंदी की ध्वनियों में समानता देखी जा सकती है। भाषाओं की प्रकृति और अपेक्षाओं के आधार पर कुछ भिन्नताएँ अवश्य हैं, मगर समानताएँ ही अधिक हैं। ध्वनियों की समानता स्वर और व्यंजनों में हैं। औच्चारणिक भिन्नताएँ भाषिक ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक नियमों और अपेक्षाओं के अनुसार ही होते हैं, मगर इन्हें भिन्न ध्वनियों की श्रेणी में नहीं मान सकते हैं।

अन्य द्रविड़ भाषाओं के मुताबिक ही कन्नडा में भी हिंदी की तुलना में अतिरिक्त स्वर ध्वनियाँ हैं। (स्वरात्मक रूप में 'रु' जैसी ध्वनि), (स्वरात्मक रूप में 'रू' जैसी ध्वनि), दीर्घ ऋ की ध्वनि ह्रस्व ए और ओ कन्नडा में प्रयोग में हैं। 6वास्तव में (स्वरात्मक रूप में 'रु' जैसी ध्वनि), (स्वरात्मक रूप में 'रू' जैसी ध्वनि) ध्वनियाँ तमाम प्रमुख द्रविड़ भाषाओं में रही हैं-मगर कालांतर में इनके प्रयोग में कमी आ गई है। हिंदी में ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ के प्रयोग की अत्यंत कम है, अत: इनके लिए अलग लिपि चिह्नों का विकास भी नहीं हुआ है। व्यंजन ध्वनियों में भी कुछ अतिरिक्त ध्वनियाँ कन्नडा में हैं जिनका हिंदी में प्रयोग नहीं है। उनमें मराठी में प्रयुक्त ळ जैसी ध्वनि कन्नडा में है, जबकि हिंदी में इसका प्रयोग नहीं हो रहा है।

हिंदी में बारहखड़ी व्यंजन ध्वनियों के साथ स्वर ध्वनियों के मेल से विकसित ध्वनियों की संज्ञा है। हिंदी के लिए प्रयुक्त व्यंजन ध्वनियों के लिए देवनागरी वर्णमाला में प्रत्येक व्यंजन के साथ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं (अनुस्वार) और अ: (विसर्ग) - इन बारह स्वरों की मात्राओं को लगाकर (संयुक्त रूप देकर) उच्चरित किया जाता है, उन्हें पूर्ण व्यंजन के रूप में माना जाता है। उदाहरण के लिए 'क' व्यंजन की बारहखड़ी के लेखन की प्रक्रिया का उदाहरण देखेंगे-क, का, कि, की, कु, कू, कृ, के, कै, को, कौ, कं, क:

इसे कन्नडा में।

ಕ, ಕಾ, ಕಿ, ಕೀ, ಕು,ಕೂ, ಕೃ, ಕೄ, ಕೂ, ಕೃ,ಕೄ, ಕೆ, ಕೇ, ಕೈ, ಕೊ, ಕೋ, ಕೌ, ಕಂ, ಕಃ

चूँकि कन्नडा में स्वर ध्वनियाँ हिंदी की तुलना में अधिक हैं, और उनकी संख्या अठारह होने की वजह से हिंदी की भाँति संज्ञा देने से 'अठारहखड़ी' कही जा सकती है। कन्नडा की स्वर ध्वनियाँ हैं। इनकी मात्राएँ इनस्क्रिप्ट कुंजीपटल में अलग से टंकित करने में कठिनाई है, अत: व्यंजनों के साथ लगे रूप को हम देख सकते हैं। वैसे विस्तारित इनस्क्रिप्ट कुंजीपटल के चित्र में हम देख सकते हैं -

ಅ, ಆ, ಇ, ಈ, ಉ, ಊ, ಋ, ೠ, ಌ, ೡ, ಎ, ಏ, ಐ, ಒ, ಓ, ಔ, ಅಂ, ಅಃ

कन्नडा शब्द-भंडार :- कन्नडा का बृहद् शब्द-भंडार हैं। संस्कृत शब्दों के कन्नडीकरण के माध्यम से कई शब्दों के सृजन व प्रयोग में कन्नडा अग्रणी है। हिंदी की भाँति ही कन्नडा में तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी स्रोतों, रूपों में प्रयुक्त शब्द हम देख सकते हैं। संस्कृत, हिंदी के शब्दों के अलावा विदेशी शब्दों का भी कन्नडीकृत रूपों को हम देख सकते हैं -

संस्कृत	कन्नडा
माता	माते
माला	माले
स्मरण	स्मरणे

संस्थापक संपादक, युग मानस, प्रधान संपादक, आंतर भारती, सह आचार्य, हिंदी विभाग, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय,

(उपरोक्त तीनों कन्नडा शब्दों के अंत में ह्रस्व 'ए' ध्वनि का प्रयोग होता है।)

हिंदी/हिंदुस्तानी/विदेशी	कन्नडा
ज़मीन	जमीनु
मामूल	मामूलु
खजाना	खजाने
इलाक़ा	इलाखे
आफ़ीस	आफ़ीसु
कालेज	कालेजु

(खजान, इलाखे आदि कन्नडा शब्दों के अंत में ह्रस्व 'ए' ध्वनि का प्रयोग होता है।)

कन्नडा तथा हिंदी में प्रयुक्त संस्कृत व विदेशी शब्द कई समानार्थी शब्दों के रूप में और कई भिन्नार्थी शब्दों के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

कुछ मूल रूप में और कुछ कन्नडीकृत रूप में हिंदी और कन्नडा में प्रयुक्त समानार्थी शब्दों में साधारण, रात्रि, दिन, शुभ, स्त्रोत्र, सायंकाल, पर्वत, नगर, रस, सूर्य, आकाश, शब्द, बुद्धि, प्राण, सुख, दु:ख, विकास, जीवन, तमाशा (तमाशे), तकरार (तकरारु), किला (किल्ले), जमादार, ज़मीन्दार, वादी, फरियादी, दगा, झगड़ा आदि के उदाहरण हम ले सकते हैं। साधारण, दिन आदि शब्दों का उच्चारण हिंदी में हलंत उच्चारण होता है, जबकि कन्नडा में पूर्णस्वरांत रूप में (जिसे अजंत कहा जा सकता है) उच्चारण होता है।

हिंदी और कन्नडा में भिन्नार्थ में प्रयोग होने शब्दों को भी हम देखेंगे –

शब्द	हिंदी में अर्थ	कन्नडा में अर्थ
अनुमान	अंदाज़ा	संदेह
अभ्यंतर	मध्य	रोक
अवसर	मौका	जल्दी
अवस्था	दशा	परिवार
आग्रह	हठ	क्रोध
आभास	झलक	भद्दापन
आलोचना	समीक्षा	विचार-विनिमय, सलाह
उद्योग	परिश्रम	नौकरी
उपन्यास	आख्यायिका	भाषण
उस्ताद	अध्यापक	मल्लवीर
कल्याण	भलाई	शुभ
चिंता	सोचना	दु:ख, फिक्र
चेष्टा	प्रयत्न	बदमाशी, शैतानी
दावा	हक़	मुकद्दमा
धर्म	मज़हब	दान, भीख
निदान	कारण	धीरे-धीरे
मर्यादा	सीमा	जानवर
यजमान	यज्ञ करनेवाला	मालिक
रक़म	धन	तरह, प्रकार
वचन	वाणी	गद्य
विज्ञापन	इस्तहार	प्रार्थना
संगति	साथ रहना	समाचार
संसार	दुनिया	परिवार
शिक्षा	विद्यार्जन	सज़ा

इस प्रकार भिन्नार्थी शब्दों की एक लंबी सूची है, आलेख की सीमा को ध्यान में रखते हुए कुछ उदाहरण ही प्रस्तुत हैं।

कन्नडा और हिंदी के बीच भिन्नार्थ में प्रयुक्त शब्दों की तुलना में समानार्थ में प्रयुक्त शब्दों की संख्या काफ़ी बड़ी मात्रा में है, अत: ये शब्द कन्नडा और हिंदी के बीच निकट के सूत्रों को सुदृढ़ करने में उपयोगी हैं। कुछ और उदाहरण हम देख सकते हैं। हिंदी और कन्नडा के बीच समान अर्थ में प्रयुक्त शब्दों में संपर्क, नीति, समय, सहाय, नवीकरण, सचिवालय, सरकारी, निघंयु, अत्यंत, अधिकृत, बृहत, पद, निर्माण, प्राधिकार, कल्याण, वाणिज्य, क्रीड़ा आदि ऐसे असंख्य शब्द हैं जो कन्नडा और हिंदी के बीच समान अर्थ में व्यवहार में हैं। अत: दोनों भाषाओं के बोलने वालों के बीच समझ विकसित करने में ऐसे शब्दों की बड़ी भूमिका होती है। वैसे उच्चारण की दृष्टि से हिंदी में जहाँ हलंत उच्चारण होता है, वहीं कन्नडा में संस्कृत की भाँति अकारांत उच्चारण होता है। इनके अलावा समान अर्थ में प्रयुक्त ऐसे कई शब्द हैं, जिनका सरल तद्भव रूपों में कन्नडीकृत होकर प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए 'हक' शब्द 'हक्कु' के रूप में प्रयुक्त होता है। हिंदी के 'सशक्तीकरण' के बराबर वाले शब्द कन्नडा में 'सबलीकरण', चिड़ियाघर के अर्थ में कन्नडा में 'मृगालय' जैसे शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति यह स्पष्ट करती है कि कन्नडा में संस्कृत भाषा के शब्दभंडार के आधार पर असंख्य नए शब्दों का निर्माण किया गया है, जिन्हें समझने में हिंदी भाषियों को कोई कठिनाई नहीं होगी। ऐसे शब्द हिंदी में भी अपनाए जा सकते हैं।

कन्नडा और हिंदी शब्दों के लिंग निर्णय-

कन्नडा में तीन लिंगों का प्रयोग होता है – पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग, जबकि हिंदी में नपुंसकलिंग का प्रयोग नहीं है। हिंदी की तुलना में कन्नडा में नियमबद्ध है। हिंदी लिंग निर्णय के लिए नियमों के बावजूद कई अपवाद हैं। कन्नडा संज्ञाओं का लिंग निर्णय आसान भी है। कन्नडा में निर्जीव पदार्थों, पुश–पक्षी बोधक शब्दों के लिए नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है। हिंदी के समान कन्नडा में भी कई प्राणिवाचक शब्दों के लिए पुल्लिंग–स्त्रीलिंग निर्धारण होता है।

स्त्रीलिंग वाचक शब्द		पुल्लिंग वाचक शब्द	
हिंदी	कन्नडा	हिंदी	कन्नडा
गाय	हसु	बैल	एत्तु
भैंस	एम्मे	भैसा	कोण
बकरी	कुरि	बकरा	टगरु

भेड़	मेके	भेड़ा	होत

हिंदी में जैसे कुछ प्राणिवाचक शब्दों के साथ नर, मादा लिंग निर्णय शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वैसे ही कन्नडा में भी गंडु (नर), हेण्णु (मादा) शब्दों का प्रयोग होता है।

वचन :- हिंदी तथा कन्नडा दोनों भाषाओं में वचनों की संख्या समान है, अर्थात् दोनों भाषाओं में दो ही वचन हैं–एक वचन और बहुवचन। हिंदी में बहुवचन के दो रूप हैं– 1. विभक्ति–रहित और 2. विभक्ति–सहित बहुवचन। हिंदी में बहुवचन बनाने के लिए कोई प्रत्यय जोड़ने की आवश्यकता नहीं है जबकि कन्नडा कई संदर्भों में एकवचन रूप को प्रत्यय लगाने से ही बहुवचन बनता है। बहुवचन बनाने के नियम हिंदी की तुलना में सरल और सुनिश्चित है।

कन्नडा में बहुवचन बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, वे शब्द की प्रकृति के अनुसार अंलग–अलग है। स्वाभाविक रूप से जब प्रत्यय जोड़े जाते हैं, जहाँ संधि बनती है, वहाँ संधि रूप में ही प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है।

एकवचन	-	**बहुवचन**
हुडुग	-	**हुडुगरु**
हुडुगि	-	**हुडिगियरु**
माव	-	**मावंदिरु**
मगु	-	**मक्कळु**
देश	-	**देशगळु**

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शब्द की प्रकृति के अनुसार (लिंग, अंतिम वर्ण आदि के आधार पर) प्रत्यय व प्रत्यय का रूप निर्धारित होता है। उक्त उदाहरणों में पुल्लिंग शब्दों के साथ (रु) प्रत्यय और स्त्रीलिंग शब्दोंके साथ (यरु), (दिरु) तथा नपुंसक लिंग के शब्दों के साथ (कळु), गळु प्रत्यय जोड़कर एकवचन से बहुवचन बनाया जाता है।

कारकीय व्यवस्था–

वैयाकरणों के अनुसार संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप का संबंध क्रिया के साथ सूचित किया जाता है, उसे 'कारक' (कन्नडा में 'विभक्ति') की संज्ञा दी जाती है। हिंदी तथा कन्नडा में कारकीय व्यवस्था लगभग समान है, मगर कुछ अपवाद अवश्य हैं, परसर्गों के रूप भाषिक प्रकृति और शब्द रूपों के अनुरूप होता है। हिंदी की संज्ञाओं के साथ प्रत्यय लगाने के पहले मूलरूप में बदलकर विकृत किया जाता है। इस प्रकारका रूप–परिवर्तन हिंदी की तुलना में कन्नडा में ज्यादा नियम–बद्ध है। हिंदी में नियमबद्धता की कमी है। कन्नडा में प्रत्यय लगाने के साथ ही कभी–कभी उपविभक्ति के रूप में या, व, न आदि वर्णों का आगम होता है। हिंदी तथा कन्नडा के कारकों की तुलना निम्नांकित तालिका से बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

हिंदी में कारक तथा उसका परसर्ग		कन्नडा में कारक तथा उसका विभक्ति चिह्न	
कर्ता कारक	**ने**	**प्रथमा विभक्ति**	**उ**
कर्म कारक	**को**	**द्वितीया विभक्ति**	**अन्नु**
करण कारक	**से**	**तृतीया विभक्ति**	**इंद**
संप्रदान कारक	**को, के लिए**	**चतुर्थी विभक्ति**	**गे, क्के), (गागी, ओसुग**
अपादान कारक	**से**	**पंचमी विभक्ति**	**देसेयिंद**
संबंध कारक	**का, के, की**	**षष्ठी विभक्ति**	**न, ळ, य, र नपुंसक लिंग के मामले में (गळ)**
अधिकरण कारक	**में, पर**	**सप्तमी विभक्ति**	**अल्लि**
संबोधन कारक	**ए, ऐ, हे, अरे**	**संबोधना विभक्ति**	**ए**

प्रथमा विभक्ति (कर्ता कारक)के अंतर्गत 'उ' प्रत्यय के प्रातिपदिक से मिलने पर 'न', 'य', 'व' का आगम होता है । उदाहरण के लिए 'अण्ण' + 'उ' = 'अण्णनु' ('भाई ने' के अर्थ में), 'मर' + 'उ' = 'मरवु' ('पेड़ ने' के अर्थ में)।

द्वितीया विभक्ति (कर्म कारक) में 'अन्नु' प्रत्यय प्रयुक्त होता है। हिंदी में 'को' का प्रयोग होता है ।इस कारक के प्रयोग में हिंदी और कन्नडा दोनों भाषाओं में समानता है।

वह फल (को) खाता है। – हिंदी के इस उदाहरण में कारक की जो स्थिति, वही कन्नडा की भी ही।

अवनु हण्ण (अन्नु) तुन्नुत्ताने।

तृतीया विभक्ति (करण) कारक में कन्नडा की स्थिति हिंदी से भिन्न है। कहीं अधिकरण कारक, कहीं संप्रदान कारक जैसी स्थिति नज़र आती है। चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी तथा सप्तमी के प्रयोग में कुछ भिन्नताएँ हैं। इन भिन्नताओं के बावजूद शाब्दिक अर्थ में एक जैसे लगते हैं।

हिंदी तथा कन्नडा में सर्वनाम :- हिंदी में प्रयुक्त सर्वनाम कन्नडा की तुलना में अधिक हैं। गहन अध्ययन से स्पष्ट होता है कि केवल हिंदी में संबंधवाचक सर्वनाम (जो) का प्रतिनिधित्व सीधा उसी अर्थ में कन्नडा में नहीं मिलता। हिंदी और कन्नडा के सर्वनामों को एक तालिका के माध्यम से संक्षेप में समझने की कोशिश करेंगे –

सर्वनाम प्रकार	हिंदी में सर्वनाम	कन्नडा में सर्वनाम
पुरुषवाचक	**मैं, हम, तू, तुम, आप**	**नानु, नावु, नीनु, नीवु, ताउ**
निजवाचक	**आप**	**तानु**
निश्चयवाचक	**यह, वह, सो**	**इवनु, इवळु, इदु, इवरु, इवु, अवनु, अवळु, अदु, इवनु, इवळु, इदु**
अनिश्चयवाचक	**कोई, कुछ**	**एनु, यारो**
प्रश्नवाचक	**क्या, कौन**	**एनो, यारु**

संबंधवाचक	**जो**
निर्देशवाचक	**आ, ई**
संख्यावाचक	**ओब्बळु, ओंदु**
समूहवाचक	**एल्लरू**

कन्नडा में उत्तम पुरुष सर्वनाम के बहुवचन रूप दो होते हैं –1. श्रोता विहीन–(नावु) तथा 2. स्रोता सहित–(नावुगळु) 7 हिंदी ही भाँति कन्नडा में भी आदर, अधिकार, बड़प्पन आदि दर्शने के लिए उत्तम पुरुष एकवचन के बदले बहुवचन का प्रयोग होता है।

हिंदी और कन्नडा में मध्यम पुरुष सर्वनाम के प्रयोग में थोडी–सी भिन्नता नज़र आती है। हिंदी में तू अल्पार्थ, अनुजों के लिए प्रेमपूर्वक, निकृष्ट के लिए अनादरपूर्वक आदि कई दृष्टियों से प्रयोग होता है। कन्नडा में ('नीनु' तू) समकक्ष व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है। हिंदी में मध्यमपुरुष बहुवचन रूप तुम को प्रयोग समकक्ष लोगों के लिए होता है। कन्नडा में प्रयुक्त एकवचन की जगह हिंदी में बहुवचन का प्रयोग होता है। प्रश्नवाचक सर्वनाम की स्थिति दोनों भाषाओं में एक समान है। निजवाचक सर्वनाम का प्रयोग हिंदी में तीन पुरुषों में होता है, जबकि कन्नडा में मात्र अन्यपुरुष में होता है। कन्नडा में संबंधवाचक सर्वनाम की जगह संबंधवाचक कृदंत या विशेषण से इसका काम चलाया जाता है।

इसी प्रकार कई व्याकरण तत्वों की चर्चा की जा सकती है जिससे स्पष्ट होता है कि कन्नडा और हिंदी के बीच समानता के कई सूत्र हैं। भारतीय संस्कृति से सज्जित इन दोनों भाषाओं में समानता के सूत्रों से भारतीय भावनात्मक एकता सुदृढ़ होने के साथ–साथ दोनों भाषाओं को बोलनेवालों के बीच अपनत्व की भावना के विकास में सहायक होते हैं। मुहावरें और लोकोक्तियाँ लोक व्यवहार भाषिक औज़ार होते हैं जो भाषा को विशिष्ट पहचान दिलाता हैं। सांस्कृतिक एकत्व के कारण कन्नडा और हिंदी भाषाओं में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियाँ में समान चिंतन के आधार पर विकसित विचारों को हम देख सकते हैं। ये भले ही दूसरी भाषा में हो, थोड़ा–सा संकेत देने पर दूसरी भाषा वाले आसानी से समझ सकते हैं। ये भावात्मक एकता के वे सूत्र हैं जो भारतीय की भावना को सुदृढ़ करने के साथ–साथ विराट भारतीय संस्कृति को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षम है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. श्रीकंठमूर्ति (1990) (लेख-हिंदी-तमिल तुलनात्मक व्याकरण), तुलनात्मक व्याकरण, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (प्रथम संस्करण-अगस्त, 1990)

2. (अनु) एन. ज्ञानमूर्ति (2017) - कन्नडा स्वयं बोधिनी, कन्नडा अभिवृद्धि प्राधिकार, बेंगलूरु (2017)

3. (सं.) एस. श्रीकंठमूर्ति (1973)-कन्नड हिंदी कोश, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (1973)

उपाध्यक्ष, ई-शिक्षा, श्रीविराज,
मुनिसिपल रोड, मुत्यालम्मन नगर,
गणपति चेट्टिकुलम, पुदुच्चेरी-605 014 (चैन्नई)
मो. 94420 23407

भाषा और संस्कृति से खिलवाड़ करने वाले राजनीतिज्ञ आते हैं और चले जाते हैं। भारतीय संस्कृति की प्रतीक हिंदी सदा अमर रहेगी।

– राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

हिंदी और लोक भाषाएँ

अतिथि संपादक

जवाहर कर्नावट

विदेशी भाषाओं और हिंदी का अंतर-संबंध

- जवाहर कर्नावट

लोकभाषाओं और हिंदी का प्रत्यक्ष संबंध सभी जानते हैं और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी का प्रगाढ़ संबंध है, यह भी सब मानते हैं। पर, विदेशी भाषाओं और हिंदी का अंतर-संबंध सुनते ही नेत्र, कर्ण-विस्फारित होने लगते हैं। कोई आरोपित अवधारणा प्रतीत होने लगती है यह, क्योंकि वास्तविकता पर से आवरण उठाने का कार्य न्यून मात्रा में हुआ है।

विश्व में इस समय 6000 से अधिक भाषाओं का अस्तित्व स्वीकार किया जा रहा है। भाषाएँ जीती हैं और रूप बदलती रहती हैं। कुछ दृश्य-पटल से ओझल भी हो जाती हैं। विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली दस भाषाओं में हिंदी का भी स्थान है। अन्य भाषाएँ हैं- मंदारिन, अंग्रेजी, स्पेनिश, फ्रेंच, अरबी, बंगाली, पुर्तगाली, रूसी और उर्दू।

इन प्रमुख भाषाओं का हिंदी से अंतर-संबंध एक रोचक एवं शोध-योग्य विषय है। 'अक्षरा' ने इस हेतु पहल की है। इस विशेषांक के माध्यम से यह समझने में आसानी होगी कि विश्व की प्रमुख भाषाओं और हिंदी ने एक-दूसरे पर क्या प्रभाव डाला और कैसे डाला? यह भी दृष्टव्य है कि किस प्रकार कुछ विदेशी भाषाएँ भारत आईं और उन्होंने कुछ अन्य भाषाओं के परिवर्तन, उत्पत्ति एवं अवसान को गति प्रदान की। भारत में हिब्रू, चीनी, ग्रीक, तुर्क, फारसी, अरबी, आर्मेनियन, पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी तथा कई अन्य भाषाएँ आंशिक रूप से प्रचलित रही हैं और एकाधिक जातीय समूह द्वारा बोली जाने वाली इन सभी भाषाओं ने भारत की सांस्कृतिक विविधता को एक नया आयाम दिया है।

भाषाओं के आगमन पर नजर दौड़ाएँ तो मध्य एवं पश्चिम एशिया से अरब, फारसी, तुर्क, हूण, मंगोल तथा अन्य जनजातियों के कुछ सदस्य भारत आए। ईसा पूर्व की शताब्दियों में व्यापारियों और साहसिक योद्धाओं का भारत में आगमन हुआ। यूरोप से सबसे पहले यूनानी लोग व्यापारियों एवं सैन्य साहसिकों के रूप में आए। लगभग 1500 साल बाद पुर्तगाली, डच, अंग्रेज एवं फ्रांसीसी आए, कुछ शताब्दियों तक रहे तथा वापस चले गए, मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर। इधर भारतीय भी समुद्री यात्रा करते रहे। वे पूर्व में चीन तथा फिलिपीन्स के सुदूर द्वीपों तक व्यापारी या धर्म-प्रचारक के रूप में तो पश्चिम में व्यापारियों, मिशनरियों एवं वेतन-प्राप्त सैनिकों के रूप में गए। उनके माध्यम से संपन्न वस्तुओं तथा विचारों के आदान-प्रदान का प्रभाव इन देशों की भाषा और संस्कृति पर भी हुआ।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के मध्य तक विदेशियों को कलकत्ता, बॉम्बे तथा मद्रास (अब क्रमशः कोलकाता, मुंबई और चैन्नै)ने अनेक रूपों में आकृष्ट किया। उनका सम्पर्क कृषि, कला और स्थापत्य, व्यापार, वाणिज्य, हस्तकला, कूटनीति, अभियांत्रिकी, भाषा एवं साहित्य, विधि, विवाह, औषधि, नौ परिवहन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, युद्ध इत्यादि तक बढ़ता चला गया और इन सब में शब्दों का आदान-प्रदान हुआ तथा देशज और विदेशी दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटक है-भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भाषा, साहित्य, कला, अध्यात्म आदि विविध क्षेत्रों की कृतियों के विश्व की प्रमुख भाषाओं में किए गए अनुवाद या मूल-लेखन। ऐसे सृजनात्मक कार्यों से भी इन भाषाओं में अंतर-संबंध निर्मित हुए।

इस प्रकार विश्व की प्रमुख भाषाओं का संस्कृत और हिंदी के साथ शाब्दिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान निरन्तर बना रहा। इस विशेषांक में रूसी, मंदारिन, स्पेनिश, अंग्रेजी, पुर्तगाली, अरबी, डच, मलय और सिंहली भाषा के हिंदी के साथ अंतर संबंध पर इन्हीं देशों में बसे भाषा वैज्ञानिकों/लेखकों ने प्रकाश डाला है। आशा है अब तक अपेक्षाकृत कम छुए गए इस क्षेत्र पर कलमकारों का शब्दांकन हिंदी समाज के पाठकों को रुचिकर लगेगा।

बी-102, न्यू मीनल रेजीडेंसी,
जे. का. रोड, भोपाल-462022
मो.-7506378525

सेवानिवृत्त राजभाषा अधिकारी, बैंक ऑफ़ बड़ौदा, विदेशी कार्यों के प्रमुख, रविंद्र नाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

किस ओर–हिंदी–अंग्रेजी, हिंग्लिश या इंग्दीज़

– वंदना मुकेश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है, उस समाज विशेष के लोगों के साथ वह भावों और विचारों का संप्रेषण करने हेतु एक विशेष भाषा का प्रयोग करता है, वह भाषा अपने साथ उस समाज को, उसकी संस्कृति को, अपनी संपूर्णता में अभिव्यक्त करती है। इसलिए भाषा, समाज और संस्कृति एक–दूसरे से अभिन्न हैं। अनादिकाल से मनुष्य अपनी जिज्ञासु वृत्ति अथवा परिस्थितिवश प्रवास करता रहा है। इससे नए प्रदेशों में नई भाषा के शब्दों को ग्रहण कर लेना भी स्वाभाविक प्रक्रिया है। भाषा के विषय में लोक में एक अन्य कहावत बहुत प्रचलित है, 'कोस–कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी' अर्थात् पानी का स्वाद और भाषा का स्वरूप परिवर्तनशील है। विद्वानों ने भाषा को बहता नीर कहा है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि भाषा बहते हुए जल अर्थात् नदी के पानी की तरह है, जो अपने साथ अनेक नदी–नालों के जल को बिना किसी भेदभाव के अपनाती चलती है और इस प्रक्रिया में स्वयं समृद्ध हो जाती है। इस प्रकार भाषाओं के आदान–प्रदान की प्रक्रिया अत्यंत सहज रूप में होती है। उदाहरण के लिए कोई एक भाषाभाषी बच्चा किसी अन्य भाषिक परिवेश में जन्म लेता है तो यह बहुत स्वाभाविक है कि वह बच्चा अपने परिवेश में बोली जाने वाली भाषा में शीघ्र प्रवीण हो जाएगा। मातृभाषा ऐसे शिशु के लिए द्वितीय भाषा बन जाएगी। उपरोक्त बिंदुओं के प्रकाश में हम इस आलेख में हिंदी और अंग्रेज़ी के पारस्परिक संबंधों का विवेचन–विश्लेषण करेंगे।

भारत में अंग्रेज़ी का आगमन सत्रहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी के आने पर हुआ। उसके पूर्व, भारत अनेक विदेशी आक्रमणों को झेल चुका था और अनेक भाषाओं और संस्कृतियों के शब्द हिंदी भाषा का अविभाज्य अंग बन चुके थे। जिनमें अरबी और फारसी की शब्दावली प्रमुख थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रभाव से भारत में अंग्रेज़ी का बोलबाला बढ़ता गया। इस विषय में डॉ. राजमणि शर्मा का कथन है कि 'विजेता बोली धीरे–धीरे शासित प्रदेश पर पर अपना अधिकार जमाती है और एक दिन ऐसा आता है कि वह उस देश की मूल भाषा से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।' भारत में भी मैकाले की शिक्षा नीति के कारण संस्कृत, अरबी–फारसी माध्यम से शिक्षण तथा धार्मिक शिक्षा को रोक दिया गया तथा शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी कर दिया गया। अंग्रेजी अधिकारियों ने प्रशासन संबंधी कार्यों के लिए हिंदी भाषा सीखी, वहीं बहुत से भारतीयों को अंग्रेज़ी में उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान किए गए। जिससे प्रशासनिक कार्य–क्षमता का वर्धन हुआ। अंग्रेज़ों ने लगभग दो सौ वर्षों तक भारत पर राज किया। इतने लंबे समय के संपर्क के कारण अंग्रेज़ी तथा हिंदी भाषाओं में परस्पर आदान–प्रदान स्वाभाविक था। यह सच है कि भारत में अंग्रेज़ी भाषा का विस्तार ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के साथ ही हुआ।

आज जो हिंदी हम बोलते हैं वह हजार वर्ष से भी अधिक वर्षों के भाषाई घात–प्रतिघात का प्रतिफलन है। इसी प्रकार आज जिस अंग्रेज़ी का प्रयोग होता है। वह भी परिवर्तन के कई पड़ावों को तय करती यहाँ तक पहुँची है। हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में शब्द, रूप, अर्थ ध्वनि, उच्चारण, व्याकरण, वाक्य विन्यास तथा विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों के स्तर पर अनेक भिन्नताएँ है। भाषाएँ परिवर्तनशील होती हैं और एक दूसरे प्रभाव पर अपना प्रभाव डालती हैं। अत: अर्थ–विस्तार, अर्थ संकोच, अर्थापकर्ष, शब्दागम, शब्दलोप, शब्द–विपर्यय इत्यादि एक भाषा की स्वाभाविक क्रिया बन जाती है। स्थानीय बोलियों, द्विभाषिकता, अशिक्षा, प्रौद्योगिकी इत्यादि का प्रभाव भी मानक भाषा पर पड़ने लगता है।

व्यक्तिगत स्तर पर मुझे दो ऐसे देशों में रहने, और हिंदी तथा अंग्रेज़ी के वातावरण में व्यवहार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। भारत, मेरी मातृभूमि, जो हिंदी का गढ़ है और इंग्लैंड, मेरी कर्मभूमि, जो अंग्रेज़ी का गढ़ है। अत: हिंदी और अंग्रेज़ी के परस्पर संबंधों को अपने दो देशों के अनुभव तथा कुछ विशिष्ट उदाहरणों के माध्यम से हम हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा के परस्पर प्रभाव को रेखांकित करेंगे।

हम अपनी प्रथम भाषा में स्वयं को सशक्तता के साथ अभिव्यक्त कर

अंग्रेजी भाषा की अध्येता, लेखक

सकते हैं। जब भी हम नई भाषा सीखते हैं तो हम पहले मन ही मन शब्दों का अपनी प्रथम भाषा में अनुवाद करते हैं। इस प्रक्रिया में हम नई भाषा की अपनी सीमित शब्दावली में से शब्दों का चयन करते हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि नई भाषा में मातृभाषा के शब्दों के सही पर्याय मिलें। इस हेतु स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए दोनों भाषाओं पर आश्रित हो जाते हैं। जिसे भाषा विज्ञान में कोड-मिक्सिंग तथा कोड स्विचिंग कहते हैं इनके उदाहरणों को आगे देखा जा सकता है।

अधिकांशत: जिन कारणों से दो भाषाओं पर परस्पर प्रभाव पड़ता है उसके प्रमुख कारक हैं –

1. ध्वनि/ उच्चारण Phonetic / Phonological Interference (Related to Pronunciation)

2. व्याकरण/ वाक्य संरचना-Grammatical / Structural Interference

3. शब्द Lexical / Vocabulary Interference

4. मुहावरे -लोकोक्तियाँ Idiomatic Interference

5. संदर्भगत Contectual Interference

6. वर्तनी Spelling Interference

1. ध्वनि/ उच्चारण Phonetic / Phonological Interference (Related to Pronunciation -अंग्रेज़ी की कुछ ध्वनियाँ हिंदी में नहीं है और हिंदी की कुछ ध्वनियाँ अंग्रेजी में नहीं है। अंग्रेजी की कुछ ध्वनियाँ हिंदी भाषा में नहीं हैं इसलिए हिंदी भाषा अक्सर इनका क्रमश: उच्चारण पीटर, प्लेज़र तथा, 'द' तथा 'थ' का उच्चारण भी हिंदी के 'द' और 'थ' की भाँति किया जाता है। चारों उच्चारण भिन्न होते हुए भी संप्रेषीयता के कारण प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार की भ, ड़, ढ, ढ़, ण का उच्चारण अंग्रेजी भाषा-भाषियों के लिए चुनौतीपूर्ण होता है और वे भ को ब (भारत -बारत) ही उच्चारित करते हैं। इसी प्रकार ड़ के स्थान पर र (साड़ी-सारी) ढ और ढ़ का उच्चारण अक्सर र अथवा ड करते हैं। जैसे पढ़ाई-पराई, ढक्कन-डक्कन)। इसी प्रकार अंग्रेजी के कई शब्द हैं जो हिंदी कृत करके बोले जाते हैं, जैसे स्कूल के लिए-इस्कूल, सकूल, स्टेशन के लिए-टेशन, टेसन, सटेसन, अंग्रेजी की ऑ ध्वनि का हिंदी में प्रवेश-जैसे, डॉक्टर, कॉलिज।

मैं, अंग्रेज़ी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाती हूँ। एक बार मेरी एक पंजाबी छात्रा ने कहा, 'टीचर, बिंडां बंद कर दो', मुझे समझ न आने पर उसने पुन: कहा, -'बिंडां कलोज' उसके हाव-भाव और इशारे से ही मैं समझ सकी कि वह खिड़की बंद करने को कह रही है। उसने मातृभाषा के प्रभाव के कारण 'विंडो के उच्चारण को सुविधापूर्वक 'बिंडां' बना दिया।

एक और अनुभव देखने लायक है-बरमिंघम से वॉलसॉल आते हुए टैक्सी ड्राइवर बात करने लगा और बोला, 'आप हलाडिए लईं जांदे हो? उसने बताया कि, 'फैमली नाल सकाटलैंडह लाडिए कित्ता सी।' हलाडिए अर्थात् हॉलिडे हिंदी तथा पंजाबी भाषा में अनेक समानताओं के कारण उपरोक्त उदाहरण लिए गए हैं।

2. व्याकरण / वाक्य संरचना- Grammatical / Structural Interference-मेरी बेटी जब इंग्लैंड आई तो मात्र पाँच वर्ष की थी। तेरह-चौदह तक की होते-होते यहाँ एकदम स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि वह पहले अंग्रेज़ी में सोचती है फिर हिंदी में अनुवाद कर के बोलती है। यथा,

(अ) 'मैं पिंक लिप्सटिक पहनूँगी।,' 'मैं मेकअप पहनूँगी' इसके विपरीत

(ब) 'मैंने नए कपड़े लगाए हैं' या 'मैंने साड़ी लगाई थी', जैसे प्रयोग भी सुनने को मिलते हैं।

अब यह दोनों वाक्य अंग्रेज़ी वाक्य 'आय एम गोइंग टु वेयर पिंक लिप्सटिक' I am going to wear pink lipstick तथा 'आय एम वेयरिंग न्यू क्लोथ्स'(I am wearing new clothes. तथा 'आय वोर ए सारी'(I wore a sari.) का सीधा शब्दानुवाद है 'अंग्रेज़ी के वेयर' शब्द का प्रयोग हिंदी भाषी कपड़े पहनने के अर्थ में करता है। इस प्रकार हिंदी भाषाभाषियों की अंग्रेज़ी में वेयर शब्द का अर्थ-संकोच हो गया है, अर्थात् उसका अर्थ सीमित हो गया है। जिससे ज्ञात होता है कि वक्ता, 'पहनना' और 'लगाना' इन दो क्रियाओं के अर्थ के अंतर से अनिभिज्ञ है।

अंग्रेज़ी में बिस्तर बनाया जाता है, हिंदी में बिछाया जाता है किंतु अब बिस्तर बिछाने के बजाय बिस्तर बनाया जाता है। एक और वाक्य ,

'मैं 'मॉर्निंग' में 'बेड' बना देती हूँ' I make my bed in the morning. (अंग्रेज़ी से प्रभावित)

मैं अपना बिस्तर सुबह बिछा देती हूँ। (हिंदी)

यहाँ हिंदी वाक्य में अंग्रेजी शब्द 'मॉर्निंग' तथा 'बेड' का प्रयोग 'कोड मिक्सिंग' का उदाहरण है। यहाँ एक और बात विचारणीय है। कि भारत में पहले बिस्तर सिर्फ रात को ही बिछाए जाते थे, अत:

'बिछाना' और 'बनाना' दो भिन्न क्रियाएँ हैं। अंग्रेज़ी के 'मेड' के लिए हिंदी में चादर झटकारने का भाव निहित है। 'मेड' के अर्थ में बिस्तर तैयार करना अधिक सटीक है। लेकिन आजकल क्रियाविशेषण 'ठीक' का प्रयोग 'मेड' के अर्थ में ही किया जाता है। यथा, 'बिस्तर ठीक कर देती हूँ।'

'my car broke'– के लिए हिंदी में कहा जाता है मेरी गाड़ी (कार) खराब हो गई। लेकिन मैंने यहाँ, ब्रिटेन में पैदा हुए हिंदीभाषी परिवारों के बच्चों को अनुवाद कर इस वाक्य को बोलते हुए सुना है। यथा –

'मेरी कार टूट गई।'

इसी प्रकार का एक मजेदार वाक्या आप से साझा करती हूँ। बरमिंघम में उस्ताद ज़ाकिर हुसैन का कार्यक्रम था कार्यक्रम के पश्चात् एक भारतीय मूल के ब्रिटिश तबला प्रेमी ने जाकर उनके पैर छुए और कहा, 'उस्ताज्जी, आपने बहुत अच्छा तबला खेला। यू रियली प्लेड..वेल।' उस्तादजी ने उसके भाव को समझा और विनम्रता से सिर झुका दिया।

3. शब्द Lexical / Vocabulary Interference– ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणों से हिंदी भाषा में अनेक भाषाओं के शब्द सहज रूप में समाविष्ट हैं। इनमें अरबी और फारसी और अंग्रेजी तो प्रमुख हैं।

हमारी शब्दावली में बालवाड़ी शब्द लुप्तप्राय सा है, प्रचलित शब्द 'नर्सरी' है। इसी प्रकार टाइम, किचन, वॉशरूम, टॉयलेट और जिम शब्दों ने क्रमश: समय, रसोईघर, स्नानघर, शौचालय तथा व्यायामशाला का स्थान ग्रहण कर लिया है। अंकल–आंटी का प्रयोग करते करते चाचा–चाची, बुआ इत्यदि भी कम ही सुना जाता है। अंग्रेजी के प्रभाव से नमस्ते, राम–राम भी शहरों से चला गया, रह गया हाय, हैलो।

इसी प्रकार अंग्रेज़ी में भी अनेक हिंदी शब्दों का समावेश है और ये शब्द निरंतर बढ़ रहे हैं। अंग्रेजी के ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में हिंदी के 700 से अधिक शब्दों का समावेश है। नमस्कार, गुरु, पंडित, अवतार, वरांडा, जंगल, चटनी, महाराजा, चाय, किंतु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस प्रकार हिंदी का चंपी अंग्रेज़ी का शैंपू, खाट से कॉट, जगन्नाथ से जगरनॉट, बन गया उसी तरह अंग्रेज़ी का लैंटर्न हिंदी का लालटेन बन गया। अंग्रेज़ी के specimen Signature का अनुवाद नमूने के हस्ताक्षर–देखकर तो माथा ठनक गया। इस शब्दानुवाद ने तो इस पद का अर्थ ही बदल कर रख दिया। specimen Signature का सही अनुवाद 'हस्ताक्षर का नमूना' होगा।

एक और उदाहरण देखें, 'मेरी तो सैट है, तेरी सैटिंग हुई कि नहीं?' **(संदर्भ न पता हो समझ नहीं सकते कि लड़की के विषय में बात हो रही है)**

4. मुहावरे–लोकोक्तियाँ Idiomatic Interference– मुहावरे–लोकोक्तियाँ अक्सर परिवेशगत अनुभवों के आधार पर गढ़ी जाती हैं। अत: सीधा–सीधा अनुवाद या समानार्थी शब्द तो नहीं मिल पाता। किंतु मिलते–जुलते अर्थों की लोकोक्तियों और मुहावरों से भावाभिव्यक्ति की जा सकती है किंतु कभी–कभी उस तरह के वाक्यों के अर्थ न समझ पाने पर समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। जैसे अंग्रेजी में समस्या का सामना के लिए 'फेस द म्यूज़िक'(हिंदी में 'परिणाम भुगतो') की लाक्षणिक अभिव्यक्ति हिंदी भाषाभाषी को समझने में कठिनाई होती ही है। 'you scratch my back I 'll scratch yours', का अर्थ तो या ह है कि तुम मेरी मदद करो और मैं तुम्हारी। किंतु तुम मेरी पीठ खुजाओ और मैं तुम्हारी जैसे अनुवाद से इस कथन की मूल आत्मा नष्ट होती है। या बिल्ली के भाग से छींका टूटा को बिल्ली का स्वभाव और छींके का अर्थ जाने बिना नहीं समझाया जा सकता वरना अर्थ का अनर्थ ही होता है।

5. संदर्भगत प्रभाव Contectual Interference– आपका दिन कैसा था?– हाउ वाज़ योर डे How was your day? जब आप दिन भर के काम के बाद किसी से मिलते हैं तो यह शिष्टाचारवश पूछा जाता है। यह प्रश्न पूर्ण रूप से अंग्रेज़ी से प्रभावित है। अंग्रेज़ी में संवाद शुरू करने का यह एक शिष्टाचारपूर्ण तरीका है जो अपने परिजन अथवा प्रियजन के प्रति आपकी संवेदनशीलता को भी प्रदर्शित करता है। हिंदी में किसी के दिन का हाल जानने के लिए अनेक तरीकों से पूछा जा सकता है। यथा,

'आज क्या–क्या किया?'

'और सब बढ़िया?'

'आज के हाल–चाल सुनाओ।' किंतु ये सारी अभिव्यक्ति अब हिंदी भाषा भाषियों में, 'आपका दिन कैसा था?' तक सीमित हो गई हैं।

पैर छूने के लिए बहुत लोग, 'डू प्रणाम' कहते हुए सुने जा सकते हैं।

'My laptop caught pneumonia, apparently because I left Windows open.' जैसे अंग्रेजी के चुटकुले पर कोई हिंदी भाषी व्यक्ति तभी हँस सकता है जब उसे कंप्यूटर का ज्ञान हो। वरना 'मेरे लैपटॉप को निमोनिया हो गया क्योंकि उसकी खिड़की खुली रह गई थी' जैसा संवाद अनर्गल प्रलाप ही प्रतीत होगा।

6. वर्तनी Spelling Interference–देवनागरी जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी भी जाती है किंतु अंग्रेज़ी में एक ही ध्वनि के अलग उच्चारण हिंदी भाषियों के लिए समस्या पैदा कर देते हैं। go, do में ओ ध्वनि उच्चारण भिन्न है तो कहीं अनुच्चारित ध्वनियाँ या सायलेंट ध्वनियाँ हैं। जैसे 'listen, plumber, nature, talk' आदि। भाषा की शिक्षिका होने के कारण इन मुद्दों को निकट से देखने समझने का अवसर मिला है। हाल की भारत–यात्रा में एक रेस्टॉरेंट के नाम के साथ लिखा था–'Test of Gujrat'। वास्तव में Taste of Gujrat होना चाहिए किंतु उच्चारण और वर्तनी के अज्ञान के कारण इस तरह की त्रुटियाँ अक्सर दिखाई दे जाती हैं।

हिंदी और अंग्रेज़ी भाषाओं में परस्पर प्रभाव से उपजने वाली समस्या पर किसी के द्वारा व्हाट्स ऐप पर भेजे इस अंश से समझा जा सकता है–

'एक महिला अपने पति से अंग्रेजी भाषा सीख रही थी, लेकिन अभी तक वो 'ष्ट' अक्षर पर ही अटकी हुई है। क्योंकि, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि 'ष्ट' को कभी 'च' तो कभी 'क' तो

कभी 'स' क्यूँ बोला जाता है।

एक दिन वो अपने पति से बोली, आपको पता है, 'चलचत्ता के चुली भी च्रिचेट खेलते हैं'। पति ने यह सुनकर उसे प्यार से समझाया, यहाँ 'सी' को 'च' नहीं 'क' बोलेंगे। इसे ऐसे कहेंगे, 'कलकत्ता के कुली भी क्रिकेट खेलते हैं।'

पत्नी पुन: बोली 'वह कुन्नीलाल कोपड़ा तो केयरमैन है न?' पति उसे फिर से समझाते हुए बोला, यहाँ 'सी' को 'क' नहीं 'च' बोलेंगे।' जैसे, चुन्नी लाल चोपड़ा तो चेयरमैन है न थोड़ी देर मौन रहने के बाद पत्नी फिर बोली, आपका चोट, चैप दोनों चाटन का है न?

पति अब थोड़ा झुँझालाते हुए तेज आवाज में बोला,

'अरे तुम समझती क्यूँ नहीं, यहाँ 'सी' को 'च' नहीं 'क' बोलेंगे। ऐसे, आपका कोट, कैप दोनों कॉटन का है न'.....

पत्नी ने हामी भरते हुए कहा अच्छा शाम को सनाट प्लेस में सेक खाने और सॉफ़ी पिलाने ले चलोगे?.....'

स्पष्ट है कि अंग्रेज़ीभाषा का ज्ञान प्रतिष्ठा का प्रश्न है तो तो सीखना–सिखाना तलवार की धार है।

उपरोक्त भाषा वैज्ञानिक कारणों के अतिरिक्त दो सबसे बड़े और महत्त्वपूर्ण कारण हैं –

भूमंडलीकरण तथा सूचना प्रौद्योगिकी का विस्फोट–भूमंडलीकरण तथा सूचना प्रौद्योगिकी के विस्फोट ने भाषायी परिवर्तन अथवा विकास को एकदम नया और अभूतपूर्व मोड़ दे दिया। भूमंडलीकरण तथा सूचना प्रौद्योगिकी के कारण हिंदी में नई शब्दावली का पदार्पण हुआ। सूचना प्रौद्योगिकी का ज्ञान अंग्रेज़ी भाषा में होने के कारण कोड–स्विचिंग की प्रवृत्ति भी सहज रूप में द्रष्टव्य है। कोड स्विचिंग अर्थात् आवश्यकतानुसार दो या दो से अधिक भाषाओं का प्रयोग करना। जैसे, मैं स्वयं हिंदी मराठी और अंग्रेजी का प्रयोग करती हूँ। वेबिनार, पेनड्राइव, क्लाउड, वनड्राइव, इंटरनेट, माउस, कर्सर, कंप्यूटर, लैपटॉप, पासवर्ड, यूज़रनेम, ब्लॉग, पॉडकास्टर, वीडियो कॉल, वहाटसऐप, फेसबुक इत्यादि हमारे दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। इनकी वजह से कोडमिक्सिंग स्वाभाविक रूप में हिंदी ही नहीं बल्कि सभी भाषाओं में देखी जा सकती है। इन शब्दों के नए पर्याय गढ़ने या खोजने के बजाय इन्हें ज्यों का त्यों ग्रहण करने से भाषा निश्चित ही समृद्ध होगी किंतु जिन शब्दों को लिए हमारे पास अपने शब्द हैं उन्हें छोड़कर अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करना कहीं न कहीं अपनी भाषा के प्रति हमारे हीन भाव को द्योतित करती है। अत: महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम अपनी मातृभाषा पर गर्व करना सीखें। अनावश्यक कोडमिक्सिंग के कारण ही आज हिंदी भाषा हिंग्लिश बन गई है। हिंदी के विकृत रूप के लिए स्मार्टफोन, सोशल मीडिया तथा ओटीटी मीडिया आदि जिम्मेदार है। इन माध्यमों पर अपभाषा के प्रयोग की अति कर दी गई है। ओटीटी पर कई बार ऐसा लगता है कि हिंदी सिर्फ गालियों की भाषा है। अंग्रेज़ी की गालियाँ भी फैशन समझकर युवावर्ग में धड़ल्ले से बोली जाती हैं। जबकि दोनों भाषाओं के सभ्य समाज की भाषा इसके एकदम विपरीत है। बाजारवाद की चपेट में हिंदी समाचार पत्रों तथा विज्ञापनों को देखकर तो यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि यह हिंदी का समाचार पत्र है कि अंग्रेज़ी का। पिछली भारत यात्रा में एक समाचार पत्र ने ध्यान खींचा– 'वेलेंटाइन–डे पर एन्जॉय करें, 'यूथ–लाऊंज' में बुकिंग करें' इस वाक्य में सिर्फ क्रियाएँ हिंदी में प्रयुक्त की गई हैं।

हिंदी का अंग्रेजी पर प्रभाव :– इस देश अर्थात् यूके में हिंदी का अंग्रेज़ी पर प्रभाव उस प्रकार दिखाई नहीं देता जिस प्रकार अंग्रेज़ी का हिंदी पर दिखाई देता है। इसका कारण यही है कि जो भाषा विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक कारणों अधिक शक्तिशाली हो जाती है अन्य भाषाओं पर उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। किंतु इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता आज सात सौ से अधिक हिंदी शब्दों का ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में अपने मूल अर्थ में समावेश किया गया है और यह निरंतर बढ़ रहा है।

कोविड के दौरान हिंदी के वैश्विक प्रसार में वर्धन हुआ। विभिन्न

आभासीय कार्यक्रमों में अंग्रेजी या यूरोप के हिंदी-विद्वानों की हिंदी भाषा में हिंदी का अधिक शुद्ध रूप को सुनने का अवसर मिला। उनकी भाषा में कोडमिक्सिंग लगभग न के बराबर है। उनकी हिंदी शब्दावली आज के भारतीय युवाओं की हिंदी शब्दावली से कहीं अधिक समृद्ध है। उनके नामों के साथ सम्मानसूचक 'जी' का प्रयोग जैसे रिचर्ड जी, यूरी जी तथा उनके द्वारा 'जी' का प्रयोग किया जाना अच्छा और गौरवपूर्ण लगा। यह हिंदी भाषियों के लिए अनुकरणीय है। यूके में पैदा हुए हिंदी भाषाभाषी बच्चे यहाँ के मूल निवासियों की तरह ही बात करते हैं अत: उनकी वाक्य-रचना पर तो मातृभाषा का प्रभाव तो नहीं दिखाई देता। लेकिन कोडमिक्सिंग का प्रभाव निश्चित देखा जा सकता है-

उदाहरणार्थ-दादी, कैप्ट द केक इन द फ्रिज।

2020 में केन्या के अनेक शहरों में घूमने का सुअवसर मिला और हम जा पहुँचे मकिंडु साहब गुरुद्वारा, यह गुरुद्वारा स्थानीय लोगों द्वारा ही चलाया जाता है। यहाँ के लोग आज भी अपने क्रिश्चियन नाम के साथ सीगा अर्थात् सिंह लगाते हैं। जैसे पीटर गोविंद सीगा। यह संदर्भ यहाँ इसलिए दिया जा रहा है कि भाषा और संस्कृति किस प्रकार अभिन्न हैं। और खोज करने पर पता चला कि प्रथम विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों की तरफ से सेना में भारतीय जवान भी अफ्रीका के दूरदराज इलाकों में रेल की पटरियाँ बिछाने जा पहुँचे और साथ ले गए अपनी भाषा और अपनी संस्कृति।

एक समय ऐसा था कि, अपने साम्राज्यवादी वर्चस्व के कारण अंग्रेज़ी बोलने और लिखने के नियम अत्यंत कट्टर और अंग्रेज़ी की ही एक कहावत 'माय वे और द हाईवे' My way or the Highway की तरह थे। इसी कारण अंग्रेज़ी न बोल पाने की हीनता अनेक लोगों में अवसाद और निराशा का कारण बनती थी। बीबीसी पर बोली जानेवाली अंग्रेजी को ही उच्चारण और व्याकरण की दृष्टि से मानक और सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। इस संदर्भ में अमेरिका के भारतीय मूल के प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक प्रो. ब्रज कचरू के योगदान को कौन नहीं जानता? अंग्रेजी भाषा विज्ञान, भारतीय भाषा विज्ञान, सामाजिक भाषा विज्ञान तथा अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के क्षेत्र के उन्होंने अभूतपूर्व एवं उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने ही संसार में व्यवहृत अंग्रेजी के विविध रूपों को मान्यता देने के लिए उसे 'वर्ल्ड इंग्लिशेज़' का नया नाम दिया।

निष्कर्ष के तौर पर इतना ही कहा जा सकता है कि उपरोक्त चर्चा अंग्रेज़ी और हिंदी भाषा के परस्पर संबंध और प्रभाव की एक झलकी मात्र है। हमने इसे कुछ विभागों में अध्ययन की सुविधा के लिए बाँटा, किंतु हमारी दृष्टि में इनका अध्ययन खानों में बंद कर के नहीं किया जा सकता। भाषाओं के एक दूसरे से प्रभावित होने के अनेक कारण हैं और हो सकते हैं है किंतु भाषा का मुख्य उद्देश्य संप्रेषण और संवाद स्थापित करना है। जब तक यह माँग पूरी हो रही है तब तक परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित होने के पश्चात् भी भाषा यदि संप्रेषण और संवाद में सक्षम है तो भाषा विज्ञान के अनुसार वह उन भाषाओं के विकास का ही एक पड़ाव है और डरने की कोई बात नहीं है। वैसे भी जो भाषा समय की आवश्यकता के अनुसार नहीं बदल पाती, वह धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। कोड-स्विचिंग, कोड-मिक्सिंग, नए शब्द तथा दूसरी भाषाओं की शब्दावली का समावेश भाषा के विकास को रेखांकित करते हैं। शब्दों के अर्थ, उनकी व्युत्पत्ति और प्रयोग का विषय अत्यंत रोचक है और उस विषय पर एक प्रपत्र अलग से लिखा जा सकता है। हम जानते हैं कि जिस भी भाषा के रूप का आज व्यवहार कर रहे हैं वह न प्राचीनकाल में प्रयुक्त होती थी न ही भविष्य में होगी। आज प्रयुक्त हिंदी-अंग्रेज़ी, आगे जाकर 'हिंग्लिश' बनेगी या 'इंग्दीज़', यह तो समय ही बताएगा। किंतु ये परिवर्तन कालांतर में भाषा विज्ञान और इतिहास के महत्त्वपूर्ण चरण सिद्ध होंगे।

35 Brookhouse Road,
Walsall, UK WSz xAE

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है

– महात्मा गाँधी

चीनी संस्कृति पर संस्कृत का प्रभाव

-विवेक मणि त्रिपाठी

संस्कृति किसी भी देश की आत्मा होती है तथा भाषा व साहित्य उस संस्कृति की वाहक। यदि किसी देश की सभ्यता, संस्कृति को समझना है तो सबसे अच्छा माध्यम साहित्य है। हम इतिहास से भी किसी सभ्यता संस्कृति को समझ सकते हैं। परन्तु इतिहास की विडम्बना यह है कि हम ऐतिहासिक पात्रों से संबंध स्थापित नहीं कर सकते, उनसे बात नहीं कर सकते और यदि इतिहास किसी विशेष विचारधारा से ग्रसित व्यक्ति द्वारा लिखा गया हो तो उसकी ऐतिहासिकता भी संदिग्ध हो जाती है। परन्तु साहित्य की विशेषता यह है कि हम साहित्यिक पात्रों के साथ एक संबंध स्थापित कर सकते हैं, उनसे वार्ता कर सकते हैं, उनके सुख-दु:ख को समझ सकते हैं। इस प्रकार साहित्य के माध्यम से किसी संस्कृति को समझना सबसे श्रेष्ठकर एवं सरल माध्यम है।

भारत-चीन विश्व के दो सबसे प्राचीन सभ्यता वाले देश हैं जिनके मध्य दो सहस्त्र वर्षों के आदान-प्रदान का गौरवशाली इतिहास रहा है। इतिहासकार भारत-चीन के मध्य आदान-प्रदान का प्रामाणिक समय पहली शताब्दी मानते हैं, जब बौद्ध धर्म का चीन में प्रवेश हुआ। परन्तु ईसा पूर्व लिखे ग्रंथों में भी भारत-चीन संबंध का उल्लेख मिलता है। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में चीन के महान इतिहासकार शमाछ्येन द्वारा लिखित पुस्तक (ऐतिहासिक अभिलेख) में भारत - चीन संबंध का वर्णन है भारत के संस्कृत महाकाव्य रामायण में 'चीन' शब्द का प्रयोग हुआ है, महाभारत में 'चीनी घोड़े' का उल्लेख है, मनुस्मृति में 'चीनी व्यक्ति' का उल्लेख है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'चिनपट्ट' का उल्लेख है, जिसका अर्थ चीनी वस्त्र होता है। ये सभी ग्रन्थ ईसा पूर्व में लिखे गए हैं, इससे यह स्पष्ट है कि भारत-चीन सांस्कृतिक संबंध ईसा पूर्व में ही प्रारंभ हो चुका था। संस्कृत में इस्पात के लिए चीनज शब्द का उपयोग हुआ है, नाशपाती को चिनराजपुत्र कहा जाता था। कालिदास के कुमारसंभव में 'चीनांशुक' का प्रयोग चीनी रेशम के लिए हुआ है।

चीन के पूर्वी हान राजवंश के सम्राट हान मिन्गाती के समय भारत से बौद्ध का धर्म का चीन में प्रवेश होता है, उसके उपरांत असंख्य भारतीय विद्वानों का भी चीन में आगमन होता है। चीन जाने वाले भारतीय ऋषि-मुनि केवल धर्म के ज्ञाता नहीं थे, अपितु उनमें से प्रत्येक ऋषि किसी न किसी विशेष विद्या में पारंगत थे। इस प्रकार भारतीय ऋषियों के साथ भारतीय दर्शन, भाषा विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान (नेत्ररोग, प्रसुतरोग, गुदारोग, शिशुरोग), ध्वनिविज्ञान, व्याकरण, छंदशास्त्र आदि चीन पहुँचा जिसका चीनी संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय विद्वान धर्मरुचि चीन पहुँचने के बाद नक्षत्र विज्ञान से सम्बन्धित ग्रंथों का चीनी अनुवाद किया, ज्ञानभद्र और यशोगुप्त ने 'पंचविद्या' का अनुवाद किया, इस पंचविद्या में ध्वनिविज्ञान, प्रौद्योगिकी विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा व्याकरण शामिल था। उपशून्य ने छंदशास्त्र का चीनी भाषा में अनुवाद किया। ज्ञानगुप्त अपने उत्कृष्ट चीनी भाषा के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे, उनके अनुवाद में थोड़ी भी त्रुटि नहीं रहती थी, उन्होंने 'फो पन शिंग ची चिंग (गौतम बुद्ध का जीवन चरित)' का अनुवाद किया। चीन जाकर भारतीय साहित्य का अनुवाद करने भारतीय मनीषियों में कुमारजीव का स्थान सर्वोपरि है। चौथी शताब्दी में चीन पहुँचते हैं और भारतीय ग्रंथों का चीनी अनुवाद कार्य शुरू करते हैं। कुमारजीव ने लगभग 50 से अधिक बौद्ध साहित्य के ग्रंथों का संस्कृत /पाली से चीनी भाषा में अनुवाद किया, जिनमें प्रमुख हैं विनयपिटक, महाप्रज्ञा पारमिता सूत्र शास्त्र तथा दशभूमिका सूत्र का चीनी अनुवाद। चीन में इनकी ख्याति न केवल अनुवादक के रूप में थी, बल्कि बौद्ध दर्शन के गुरु के रूप में भी थी, इनके तीन हजार से अधिक शिष्य थे। परमार्थ छठी शताब्दी में चीन पहुँचे, उन्होंने 64 दार्शनिक ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया, इसी काल में बोधिरुचि चीन के ल्वयांग पहुँचे, उन्होंने 39 ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। छठी शताब्दी में ही रत्नमति, बुद्धशांत, प्रज्ञारुचि, विमोक्षसेन आदि भारतीय विद्वान्

चीनी भाषा के अध्येता, लेखक

भरत से चीन पहुँचे, इन विद्वानों का अलग-अलग मत था, अत: उन्होंने अलग अलग अनुवाद ग्रन्थ तैयार किए।

भारत-चीन के इस साहित्यिक आदान-प्रदान में न केवल असंख्य भारतीय विद्वान चीन पहुँचे, बल्कि अनगिनत चीनी विद्वतजन भी अपनी अतृप्त ज्ञानपिपासा को संतृप्त करने के उद्देश्य से ज्ञानभूमि भारत की यात्रा की। चौथी शताब्दी में पूर्वी चिन राजवंश काल में 38 चीनी बौद्ध भिक्षुओं ने भारत की यात्रा के लिए प्रस्थान किया, इनमें से अधिकतर मार्ग में ही काल को प्राप्त हो गए। उसी काल में बौद्ध भिक्षु चिंग मंग के नेतृत्व में 15 भिक्षुओं का दल भारत यात्रा पर निकला, जिनमें से 9 भिक्षु पामेर पर्वत से आगे नहीं जा सके, एक यात्री की मार्ग में ही मृत्यु हो गई, चिंग मंग और उनके साथ गए चार यात्री ही भारत पहुँच सके। दसवीं शताब्दी में 457 बौद्ध भिक्षु भारत गए। पहली शताब्दी से शुरू होकर दसवीं शताब्दी तक भारत-चीन के मध्य विद्वानों का आना-जाना लगा रहा, तथा दोनों महान सभ्यताओं के मध्य साहित्यिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान अनवरत जारी रहा। ग्यारहवीं शताब्दी में भारत इस्लामी आक्रमण सफल होने के बाद तथा चीन में अल्पसंख्यक शासकों के द्वारा शासन के उपरांत दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान अवरुद्ध हो गया, आंशिक मात्रा में व्यावसायिक आदान-प्रदान जारी रहा।

भारत जाने वाले चीनी बौद्ध यात्रियों में सबसे प्रमुख फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग हैं। चौथी सदी के प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री फाह्यान अपनी यात्रा वृतांत लिखने वाले चीनी यात्रियों में वे सर्वप्रथम चीनी यात्री हैं, भारत आने का उनका मुख्य उदेश्य विनयपिटक को चीन लाना। सातवीं शताब्दी में महान चीनी बौद्ध तीर्थयात्री ह्वेनसांग भारत से 657 संस्कृत ग्रंथों के साथ वापस चीन पहुँचे जिनमें महायान सूत्र-224, महायान शास्त्र-192, स्थविरा सूत्र, शास्त्र एवं विनय-14, महासंगिका सूत्र, शास्त्र एवं विनय-15, महिसका शास्त्र एवं विनय-22, सम्मित्य सूत्र, शास्त्र एवं विनय-17, धर्मगुप्तका सूत्र, शास्त्र एवं विनय-42, सर्वास्तिवाद सूत्र, शास्त्र एवं विनय -67 शामिल थे। 15 वर्षों के उपरान्त ह्वेनसांग वापस चीन लौटने पर वृहद् स्तर पर बौद्ध सूत्रों के चीनी अनुवाद कार्य में लग गए, और कुल 75 ग्रंथों का 1335 भागों में अनुवाद कार्य पूरा किए, जिसमें (अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता) का चीनी अनुवाद सबसे महत्त्वपूर्ण है, जो 600 भाग में उपलब्ध है, उनके द्वारा (योगकरा) का भी चीनी अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है, साथ ही चीनी संस्कृति का भारत में परिचय की दृष्टि से ह्वेनसांग ने चीन के महान दार्शनिक ग्रन्थ (ताओज) का चीनी से संस्कृत अनुवाद किया। ह्वेनसांग का यात्रा वृत्तांत न केवल चीन के लिए महत्त्वपूर्ण है बल्कि भारत के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। यदि ह्वेनसांग का यात्रा वृत्तांत उपलब्ध नहीं होता तो मध्य भारत का इतिहास कहीं अँधेरे में खोया रहता तथा वाम इतिहासकारों द्वारा भारतीय इतिहास को कितना विकृत किया जाता इसकी कल्पना की जा सकती है। ह्वेनसांग के यात्रा वृतांत के आधार पर ही भारत के अधिकतर बौद्ध स्थलों का खोज संभव हो सका जो मुस्लिम आक्रमणकारीयों द्वारा नष्ट कर दी गई थी, लगभग अस्सी प्रतिशत बौद्ध स्थल ह्वेनसांग के यात्रा विवरणों के आधार पर खोजे गए हैं जिनमें नालंदा, सारनाथ आदि प्रमुख हैं।

भारत से आए इन साहित्यिक ग्रंथों के चीनी भाषा में अनुवाद से चीनी संस्कृति अत्यंत समृद्ध हुई। उदाहरण स्वरूप संस्कृत भाषा के स्वर विज्ञान के अध्ययन उपरांत चीनी विद्वानों ने चीनी भाषा के चार स्वारघात को निश्चित किया। चीनी भाषा में संस्कृत से लगभग बीस हजार से अधिक शब्द हैं, जिनमें से अधिकतर धर्म और दर्शन से संबंधित हैं, जैसे फो (बुद्ध), येनवांग (यमराज), शा (क्षण), छ्यान (ध्यान), था (स्तूप), नी (भिक्षुणी), फुसा (बोधिसत्व) थान श्यांग (चन्दन) आदि है।

ग्यारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक भारत-चीन के मध्य सांस्कृतिक -साहित्यिक आदान-प्रदान लगभग अवरुद्ध रहा। बीसवीं सदी में भारत चीन के मध्य सांस्कृतिक-साहित्यिक आदान-प्रदान पुन: प्रारंभ होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चार कविताओं का वर्ष 1915 में चीनी साम्यवादी दल के संस्थापकों में से एक छन तु श्यु ने चीनी भाषा में अनुवाद के बाद उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'शिन छिंग निएन' में प्रकाशित कराया। वर्ष 1924 और 1929 में उनका चीन यात्रा भी हुआ, तब उनके साथ चीन के प्रसिद्ध कवि श्वी चिडमो और प्रसिद्ध विद्वान ल्यांग छी छाओ उनके साथ रहे, श्वी चिडमो की कविताओं पर ठाकुर का प्रभाव भी दृष्टिगोचर है।

1935 में चीन के युवा विद्वान ची श्येन लिन जर्मनी जाते हैं, वहाँ संस्कृत और पाली भाषा का गहन अध्ययन करते हैं, वापस आकर चीन के प्रसिद्ध पेइचिंग विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा एवं संस्कृति का अध्यापन शुरू करते हैं, तथा साथ संस्कृत साहित्य के ग्रंथों के अनुवाद का भगीरथी कार्य भी शुरू किया। उन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तलम, विक्रमोर्यवशियम्, वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य पर दर्जनों

पुस्तक एवं सैकड़ों आलेख प्रकाशित कराया। प्रो. श्री फान छंग वर्ष 1929 में जर्मनी जाकर संस्कृत एवं पालि का अध्ययन करते हैं। वापस चीन आकर भारतीय साहित्यिक कृतियों का चीनी में अनुवाद करते हैं। उनके द्वारा संस्कृत से चीनी में अनूदित कृतियों में से प्रमुख है–'श्री अरबिंदो की रचनाएँ', 'सम्पूर्ण योग', 'भारतीय दर्शन – पचास उपनिषद', 'प्राचीन ब्राह्मण धर्म', 'भगवद्गीता' आदि। इनकी भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रति अगाध श्रद्धा का ही परिणाम था कि मृत्युशैया पर होते हुए भी 'भगवद्गीता' का चीनी में अनुदित पाण्डुलिपि को सौंप कर ही शरीर का त्याग किया।

1943 में चीन के विद्वान चिन ख मु भारत आते हैं, भारत में संस्कृत और पालि के अध्ययन के उपरान्त प्राचीन भारतीय दर्शन, संस्कृत साहित्य, बौद्ध धर्म पर शोध अध्ययन करना शुरू करते हैं, वापस चीन जाने के बाद अनुवाद कार्यों में अपना महती योगदान देते हैं, उनके द्वारा अनुदित कृतियों में से महत्त्वपूर्ण हैं महाभारत, मेघदूत, सावित्री, गाँधी दर्शन, संस्कृत साहित्य का इतिहास, खगोल विज्ञान आदि। साथ ही उन्होंने मूल पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें प्रमुख है – 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', 'भारतीय संस्कृति', 'कला विज्ञान वार्ता', 'तुलनात्मक सांस्कृतिक निबंध', 'चीनी–भारतीय लोगों की मित्रता का इतिहास' आदि। 1918 में छन यिन ख अमेरिका के प्रसिद्ध हॉवर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत और पाली का पालि का अध्ययन करने जाते हैं। 1942 में जन्में ह्वांग पाओ शंग संस्कृत एवं पालि के प्रसिद्ध चीनी विद्वान हैं। इनकी प्रसिद्ध अनुवादित कृतियों में 'भारतीय दर्शन', 'बौद्ध जातक की चयनित कहानियाँ', 'संस्कृत–चीनी बौद्ध शास्त्र', 'संस्कृत–चीनी वार्तालाप', आदि प्रमुख हैं– उनकी पुस्तकों में 'भारतीय शास्त्रीय काव्यशास्त्र', 'महाभारत का परिचय', 'संस्कृत काव्यशास्त्र का संकलन' अदि प्रसिद्ध हैं। 1902 में जन्में प्रो. लिन ली क्वांग फ्रांस में जाकर संस्कृत एवं पालि का अध्ययन करते हैं। प्रो. छ्येन वन चोंग वर्ष 1984 में चीन के प्रसिद्ध पेइचिंग विश्वविद्यालय में संस्कृत और पालि का अध्यापन में लगते हैं।

बीसवीं शताब्दी में भारत–चीन के मध्य साहित्यिक आदान–प्रदान को पुनर्जीवित करने के लिए चीन में हिंदी शिक्षण प्रारंभ होता है। 1942 में चीन के युन्नान प्रान्त के राष्ट्रीय पूर्वी भाषा महाविद्यालय में हिंदी शिक्षण प्रारंभ हुआ, लेकिन उस समय चीन में जापान विरोधी युद्ध विजय को देखते हुए हिंदी विभाग को सिछ्वान प्रान्त के छोंग्छिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया, और 1946 में नानचिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया। 1949 में चीनी जनवादी गणराज्य की स्थापना हुई और पूर्वी भाषा महाविद्यालय को नानचिंग शहर से राजधानी पेइचिंग के पेइचिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा महाविद्यालय में मिला दिया गया जो कालांतर में चीन में हिंदी अध्ययन का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया।

चीन में हिंदी शिक्षण को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है, पहला वर्ष 1942 से वर्ष 1948 तक, यह समय हिंदी शिक्षण का प्रारंभिक काल था, उस समय चीन राजनितिक रूप से बहुत ही उथल–पुथल से गुजर रहा था, परिणामत: इस काल में हिंदी भाषा शिक्षण में ज्यादा प्रगति नहीं हुई। चीन में हिंदी शिक्षण का दूसरा काल वर्ष 1949 से 1968 तक था, यह काल चीन में हिंदी शिक्षण के लिए बहुत ही अच्छा रहा, इसी समय नए भारत और नए चीन की स्थापना हुई, दोनों देशों के मित्रता की नई कहानी शुरू हुई, तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चऊ एन लाय ने चीनी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ने लिए प्रेरित किया, उस समय के भारतीय राजदूत महोदय की पत्नी को पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के निमंत्रित किया गया, फलत: हिंदी का भी विकास द्रुतगति से हुआ, इस काल के हिंदी विद्वानों ने चीन के हिंदी शिक्षण की मजबूत नींव रखी, लेकिन 1962 में हुए भारत–चीन युद्ध ने हिंदी की विकास यात्रा पर विराम लगा दिया।

तीसरा काल वर्ष 1966 से 1976 तक था, यह काल चीन में सांस्कृतिक क्रांति का काल था, सांस्कृतिक क्रांति के समय चीन में बहुत असमान्य काल था, विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा की प्रणाली को बंद कर दिया गया था, विद्यार्थियों को अनुशंसा के आधार पर प्रवेश मिलने लगा, जिसके कारण शैक्षिक रूप से असामान्य लोग विश्वविद्यालय में प्रवेश करने लगे जिसका प्रभाव हिंदी शिक्षण पर भी पड़ा, प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी मुख्यत: किसान और सैनिक होते थे, जिनकी अकादमिक क्षेत्र में कोई विशेष रुचि नहीं थी, फलत: उनका चीन के हिंदी अध्ययन–शोध में कोई विशेष योगदान नहीं रहा।

चौथा काल 1976 से 2005 और पाँचवाँ काल 2005 से वर्तमान समय तक। यह समय चीन के आर्थिक विकास के प्रारंभ का समय था, अस्सी के अंत का दशक चीन के आधुनिकतावाद और आर्थिक सुधारवाद में प्रवेश का समय था, चीन में चतुर्दिक सकारात्मक परिवर्तन का समय था, आर्थिक प्रगति के साथ चीन के कई नए विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई।

पाँचवाँ काल 2005 से वर्तमान समय तक। वर्ष 2005 में चीनी राष्ट्रपति का भारत आगमन हुआ, दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार बढ़ने लगा, व्यापार के साथ-साथ भाषाई सम्बन्ध भी प्रगाढ़ करने की आवश्यकता को दोनों देशों के नेताओं ने समझा और इस काल में चीन में सबसे ज्यादा विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई, और लगभग 10 नए विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम में स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठयक्रम शुरू की गई। वर्तमान में चीन के सत्रह विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा एवं साहित्य की पढ़ाई हो रही है। चीनी विद्यार्थी स्नातक एवं स्नातकोत्तर में भी लघु शोध निबंध लिखते हैं, इन लघु शोध निबंधों के माध्यम से चीनी विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, दर्शन, वाणिज्य, भारतीय नारी की स्थिति आदि को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही चीनी युवा भी अपने तथ्यपरक शोधों से हिंदी भाषा एवं साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

भारत चीन के मध्य साहित्यिक आदान-प्रदान को एक नई दिशा देते हुए चीन में हिंदी अनुवाद भी व्यापक स्तर पर हो रहे हैं, अभिज्ञान शाकुन्तलम, पंचतंत्र, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, सुर सागर, मैला आँचल, निर्मला आदि भारतीय साहित्यिक कृतियों का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका है। भारत के चीनी भाषा के विद्वान प्रो. बाली राम दीपक ने चीन के महान दार्शनिक ग्रन्थ 'कन्फ्यूशियस के सूक्ति संग्रह', 'मेंसिअस' आदि का चीनी भाषा से हिंदी में अनुवाद किया है। वर्ष 2016 में भारत-चीन सरकर ने संयुक्त अनुवाद कार्यक्रम की घोषणा की, जिसमें चीनी सरकार 25 भारतीय साहित्यिक कृतियों का हिंदी से चीनी में अनुवाद करेगी, तथा भारतीय सरकार 25 चीनी साहित्यिक कृतियों का चीनी से हिंदी भाषा में अनुवाद करेगी, उद्देश्य है भारत-चीन के वैसे पाठक जिन्हें चीनी-हिंदी नहीं आती, वे इस अनुवाद कार्यक्रम के माध्यम से एक-दूसरे की संस्कृति को समझ सकें। हिंदी से चीनी में अनुवादित होने वाली साहित्यिक रचनाओं में सूरदास-ग्रंथावली, मुंशी प्रेमचंद रचना संचयन (गोदान उपन्यास और लघुकथाएँ), अज्ञेय रचना संचयन (उनकी कविताएँ और लघु कहानियाँ), भीष्म साहनी रचना संचयन (तमस उपन्यास और लघुकथाएँ), महादेवी वर्मा रचना संचयन (कविताएँ) आदि हिंदी साहित्यिक कृतियाँ शामिल हैं। इस प्रकार के अनुवाद कार्यक्रम के माध्यम से भारत-चीन के मध्य दो हजार वर्षों के साहित्यिक आदान-प्रदान को पुन: गौरव प्रदान करना तथा एक नई दिशा देना है।

वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र, अभिज्ञान शाकुन्तलम का चीनी भाषा में पद्यानुवाद करने वाले प्रो. चिश्येनलिन को वर्ष 2008 भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किया गया, उस समय अस्पताल में थे, भारत आने की स्थिति में नहीं थे। तब भारत के तत्कालीन विदेशमंत्री श्री प्रणब मुखर्जी ने स्वयं चीन जाकर अस्पताल में प्रो. चिश्येनलिन को पद्मभूषण से सम्मानित किया, पद्मभूषण से सम्मानित होने वाले वे प्रथम चीनी विद्वान हैं। हिंदी में उनके योगदान को देखते हुए प्रसिद्ध चीनी शिक्षक प्रोफेसर यू लोंग यू को वर्ष 2016 में भारत के माननीय राष्ट्रपति द्वारा भारत अध्ययन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए 'भारत विद पुरस्कार' प्रदान किया गया। बीजिंग विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफेसर च्यांग चिंग ख्वेई जिनका सूरदास पर विशेष शोध कार्य है, को हिंदी में विशेष योगदान के लिए वर्ष 2018 में भारत सरकार द्वारा 'डॉ. जार्ज गियर्सन पुरस्कार' प्रदान किया गया। हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भारत-चीन के मध्य साहित्यिक आदान-प्रदान में जो योगदान संस्कृत, पाली भाषा ने दिया है, वर्तमान समय में वह कार्य हिंदी भाषा का माध्यम से हो रहा है। हिंदी को संस्कृत का सरल रूप कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आशा है कि हम संस्कृत के महत्व को पुन: समझेंगे तथा संस्कृत के गौरवशाली स्वरूप को पुनर्स्थापित करेंगे।

एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी)
क्वांगतोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन

साहित्य का मुख्य उद्देश्य विचारों के वितान तथा घटनाओं की स्मृति को सुरक्षित रखना है।

– बाबू श्यामसुन्दर दास

हिंदी के प्रचार-प्रसार में पुर्तगाली भाषा का योगदान

-शिव कुमार सिंह

हिंदी शिक्षण की परंपरा और उसका इतिहास अपने आप में एक दिलचस्प गाथा है, और अपने आप में कई ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक घटनाएँ अपने अंदर समाए हुए हैं। सभी विशेषज्ञ मानते हैं कि हिंदी को कई भाषाओं और बोलियों ने समृद्ध किया है और ये भाषाएँ केवल भारत देश की ही नहीं, बल्कि भारत से बाहर की भी हैं। इन्हीं गैर भारतीय उपमहाद्वीप की भाषाओं में से एक पुर्तगाली भाषा भी है, जिसने हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित भी किया है। उदाहरण के तौर पर नीचे दिए गए शब्द हिंदी में ही नहीं, वरन् दूसरी भारतीय भाषाओं में धड़ल्ले से प्रयोग होते हैं -

पुर्तगाली से हिंदी में

पुर्तगाली	हिंदी	पुर्तगाली	हिंदी
ananás	अनानास	pagar	पगार
armário	आलमारी	padre	पादरी
alfinete	आलपीन	pão	पावरोटी
aia	आया	pistola	पिस्तौल
camisa	कमीज़	falto	फालतू
capitão	कप्तान	fita	फीता
canastro	कनस्तर	balde	बाल्टी
câmara	कमरा	biscoito	बिस्कुट
café	कॉफी	botão	बटन
cartucho	कारतूश	mestre	मिस्त्री
igreja	गिरजाघर	mesa	मे
chave	चाभी	jesus	यीशू
toalha	तौलिया	sabão	साबुन
leilão	नीलाम	saia	साया

भारतीय भाषाओं में कोंकणी भाषा सबसे ज्यादा पुर्तगाली से प्रभावित हुई है, जिसमें तकरीबन 2000 (2000) शब्द पुर्तगाली मूल के हैं, और इसका कारण साफ है, क्योंकि कोंकण क्षेत्र में 1510 से 1961 तक, तकरीबन 450 (450) सालों तक, पुर्तगाली गोवा की राजभाषा थी। कोंकणी के अलावा पुर्तगाली भाषा का प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर भी गोचर होता है, जिसमें व्यापक प्रभाव मलयालम पे देखा जा सकता है, जिसमें तकरीबन 400 (400) शब्द पुर्तगाली मूल के आज भी इस्तेमाल हो रहे हैं। बाँग्ला, तमिल, मराठी और हिंदी/उर्दू में भी पुर्तगाली मूल के शब्दों का प्रयोग जारी है।

पुर्तगाली भाषा को हिंदी ने उतना प्रभावित नहीं किया है, जितना पुर्तगाली ने हिंदी को, लेकिन पुर्तगाली भाषा में भी हिंदी / भारतीय मूल के शब्द मौजूद हैं। जैसे-

हिंदी या भारतीय भाषाओं से पुर्तगाली में-

हिंदी	पुर्तगाली	हिंदी	पुर्तगाली
आसन	asana	कश्मीरी	xemira
आयुर्वेद	aiurveda	समोसा	amuça
बासमती	basmati	चुरुट (तमिल)	charuto
ब्राह्मण	brâmane	संसार	amsara
चीता	chita	सितार	sitar
की	caril	ठग	tugue
धर्म	dharma	Bengal [stick]	bengala
योग	yog[ue]/ ioga	बुद्ध	buda
कर्म	carma	शाल	&aile

स्रोत: www.infopedia.pt, Houaiss Dictio-

पुर्तगाली भाषा के अध्येता, लेखक

nary

पुर्तगाल दुनिया के उन देशों में से एक है जो क्षेत्रफल के मामले में बहुत छोटा, लेकिन मौजूदा समय में विश्व राजनीति में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एशिया में बहुतेरे युवा लोग पुर्तगाल को प्रसिद्ध फुटबाल खिलाड़ी क्रिस्तियानु रोनाल्दु की वजह से भी जानते हैं, लेकिन एक व्यक्ति जिसने पुर्तगाल का नाम दुनिया के इतिहास में हमेशा के लिए दर्ज करवा दिया, वे हैं महान समुद्री नाविक, वास्को द गामा (1468–1524), जिन्होंने ना सिर्फ भारत और पुर्तगाल / यूरोप के बीच समुद्री रास्ते की खोज की, बल्कि एक कुशल राजनयिक के रूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्को द गामा ने 8 जुलाई 1497 को बलैं, लिस्बन, पुर्तगाल से अपनी समुद्री यात्रा शुरू की और 20 मई 1498 को भारत, केरल के कालिकट तट पर पहुँचे। भारत से लाए सामान जैसे, मसाले, कपास, कीमती पत्थर आदि पुर्तगाल और यूरोप के बाजारों में कई गुना ज्यादा दामों पर बिके, जिससे पुर्तगाली राज्य को और पुर्तगाली व्यापारियों को कई गुना फायदा हुआ, धीरे–धीरे पुर्तगाल ने अरबियों के आधिपत्य को समाप्त करते हुए भारत से होने वाले व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया और सिर्फ पुर्तगाली ही भारतीय माल यूरोप में ला सकते थे, इस प्रक्रिया ने पुर्तगाल को यूरोप में एक बहुत धनी और सशक्त देश बना दिया। वास्को द गामा की मृत्यु भी 1524 में कोचीन में ही हुई।

15 वीं शताब्दी के बाद से आने वाली सदियों में10 से 15 लाख की जनसंख्या वाला एक छोटा सा देश पुर्तगाल यूरोप का ही नहीं, बल्कि दुनिया की महाशक्तियों में से एक बनकर उभरा, जिसने ब्राजील से लेकर जापान तक अपना आधिपत्य स्थापित किया और साथ ही 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में व्यापार के क्षेत्र में अरबी भाषा के एकाधिकार को समाप्त करते हुए उसकी जगह पुर्तगाली भाषा को एशिया में व्यापार और संपर्क की भाषा के रूप में स्थापित किया। जैसा कि, हैमिल्टन ने 1727 में लिखी अपनी किताब में उल्लेखित किया है।

भारत के लिए समुद्री राह की खोज ने और वास्को द गामा के कुशल नेतृत्व ने भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव रखी और यह साम्राज्य हमेशा समुद्र तटीय क्षेत्रों से जुड़ा रहा, और इस प्रक्रिया को अंग्रेज इतिहासकार, प्रोफेसर चार्ल्स बॉक्सर ने 'समुद्री साम्राज्य' की संज्ञा दी है। पुर्तगाली साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारत में ईसाइयत का प्रवेश हुआ, जिससे एक नए धर्म और एक और नई संस्कृति का भारत में जन्म हुआ।

पुर्तगालियों ने हिंद महासागर और दक्षिणी चीन सागर में व्यापारिक बंदरगाह और सैन्य ठिकाने स्थापित किए, और लगभग इस क्षेत्र से होने वाले सारे व्यापार पर उनका एकाधिकार स्थापित हुआ, और बिना उनको चुंगी दिए कोई भी नाव एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकती थी। पुर्तगालियों ने बहरीन, फारस (ईरान), मकाऊ (चीन), जापान और कई दर्जन जगहों पर पूरब में किलों की स्थापना की। 1510 में गोवा की जीत के साथ भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव पड़ी और जल्द ही दमन और दीउ के साथ साथ मालाबार तट के कई क्षेत्रों पर पुर्तगाल का आधिपत्य स्थापित हो गया और भारत में यह अधिपत्य 1961 तक बरकरार रहा।

उपरोक्त ऐतिहासिक घटनाओं ने भारतीय ज्ञान परम्परा को तेज़ी से भारत के बाहर भी प्रचारित–प्रसारित करना शुरू किया। कई मिशनरी पादरियों ने भारतीय भाषाओं (मुख्यत: तमिल, कोंकणी, बाँग्ला, मराठी और हिंदी/हिंदुस्तानी) और उनके व्याकरण को सीखने और समझने की कोशिश करने के साथ कई भारतीय भाषाओं को सीखने के लिए पुर्तगाली में इनके व्याकरण भी लिखें।

('जब यूरोपीय लोगों ने अपने दूरगामी ई–प्रकाशन के आधार पर शुरुआत की, तो उनके हितों में उनके धर्म, सामाजिक संगठन, नैतिकता और सबसे ऊपर, प्राकृतिक संसाधन और आर्थिक स्थिति शामिल थी।' लेकिन पहले क्षण से ही भाषा एक व्यावहारिक समस्या बन गई। उन लोगों के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए, जिनसे वे मिले और मुठभेड़ से maximal लाभ प्राप्त करने के लिए, एक निश्चित मात्रा में संचार आवश्यक था (hovdhaugen, 2000 : 925)

"When Europeans started on their far-reaching exploratory expeditions… Their interests in the people they met comprised their religion, social organization, morals and, above all, natural resources, and economic status. From the very first moment, however, language turned out to be a practical problem of great significance. To establish contact with the people they met and to obtain maximal benefit from the encounter, a certain amount of communication was necessary"

(Hovdhaugen, 2000 : 925).

कुछ नाम जिन्होंने भारतीय ज्ञान को पुर्तगाली भाषियों के लिए और यूरोपीय लोगों के लिए प्रथमत: उपलब्ध करवाया : पादरी एन्रीक एन्रीक्श पुर्तगाली जेसुइट गस्पार दअगिलार; पादरी अंताँउ द प्रोएँसा। यह सूची काफी बड़ी है, लेकिन शब्दों की सीमा को ध्यान में रखते हुए, इन्हीं विशेषज्ञों के बारे में यहाँ जानकारी दी जा रही है।

इन पुस्तकों और इन मिशनरियों के जरिए भारतीय भाषाओं का ज्ञान भारत से बाहर और भारत के अंदर भी प्रचारित होने लगा। इस परम्परा ने आगे अन्य भारतीय भाषाओं, मुख्यत: कोंकणी, बांग्ला, मराठी और हिंदुस्तानी/हिंदी के व्याकरणों और शब्दकोशों के प्रकाशनों की शुरुआत की। 16 वीं से 18 वीं शताब्दी तक पुर्तगाली भाषा व्याकरणिक जानकारी के लिए निरुपक भाषा के रूप में प्रयोग होती थी। 18वीं शताब्दी के मध्य से अंग्रेजी, डच और फ्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओं के शासन, व्यापार और सम्पर्क की भाषा बनने से पुर्तगाली का महत्व कम होता गया। इसी प्रक्रिया में, आगे चलकर डच भाषा में 1698 में हिंदुस्तानी/हिंदी का पहला व्याकरण केटेलार के द्वारा लिखा गया, जो कि किसी भी विदेशी भाषा में और यूरोप में हिंदी के ऊपर लिखा गया पहला व्याकरण है। चूँकि भारतीय भाषाओं के बारे में गोवा में व्याकरण और शब्दकोश पुर्तगाली में प्रकाशित होने लगे, इस वजह से एशिया के दूसरे देशों (मुख्यत: चीन और जापान) से मिशनरी, शोधकर्ता और विशेषज्ञ गोवा आने लगे और पुर्तगाली सीखकर या जिन्हें पुर्तगाली आती थी, वे सभी भारतीय भाषाएँ भी सीखने लगे। अत: पुर्तगाली भाषा ने और पुर्तगाली मिशनरियों ने भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार में 18 वीं सदी के अंत तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, खासकर पुर्तगाली भाषा सहायक भाषा की भूमिका में थी, जिस भूमिका में किसी भी विदेशी भाषा को सीखने के लिए आज अंग्रेजी है।

नए लोग और नई संस्कृतियों के साथ भारतीय भाषाओं में, विशेषत: कोंकणी, मराठी, मलयालम और तमिल में नए शब्द भी समाहित हुए और इन भाषाओं के ज़रिए ही हिंदी के साथ ही दूसरी भारतीय भाषाओं में भी, यथा, क. ईसाइयत के प्रवेश के साथ शामिल होने वाले कुछ नए शब्द निम्न हैं : पादरी, पापा, बिशप, आर्कबिशप।

ख. पुर्तगालियों के साथ कुछ नए तकनीकी और पहनावे के शामिल होने वाले निम्न शब्द हैं : आलमारी, बाल्टी, बम, बटन, कमीज, फ़ीता, पिस्तौल, चाभी।

ग. कुछ नए पौधे भी पुर्तगाली अफ्रीका, यूरोप और लैटिन अमेरिका से लाए और इस वजह से भी हम कई नए शब्दों से परिचित हुए, जैसे-अनानास, अनोना, काजू, गोभी, तंबाकू।

घ. पुर्तगालियों के आने से कई नए व्यवसायिक शब्द भी भारतीय भाषाओं में प्रचलित हुए, जैसे-मिस्त्री, कप, पाव।

1778 में पुर्तगाली मिशनरी के पादरियों द्वारा पुर्तगाली भाषियों के लिए हिंदुस्तानी व्याकरण Gramatica indostana a mais vulgar que se practica no Imperiodo gram Mogol offerecida aos muitos reverendos Padres Missionarios do dittoImperio मुग़ल साम्राज्य में सबसे ज़्यादा प्रचलित (इ)हिंदुस्तानी व्याकरण जिसे बताए गए साम्राज्य के कई मिशनरी पादरियों को अर्पित, प्रकाशित किया गया। व्याकरण के लेखक कोई पादरी ही हैं, लेकिन संभवत: उन्हें मठ से निष्कासित कर दिया गया था, और ऐसी स्थितियों में निष्कासित पादरी की रचनाएँ इस्तेमाल तो की जाती थीं, लेकिन उनका नाम हटा दिया जाता था। ऐसा ही इसी वर्ष पुर्तगाली पादरियों द्वारा पुर्तगाली भाषियों के लिए प्रकाशित मराठी व्याकरण के साथ भी किया गया है।

Gramaticaindostana में हिन्दी में दिए गए सभी उदाहरणों के लिए रोमन लिपि का इस्तेमाल किया गया है। 160 पन्नों वाली इस पुस्तक में अज्ञात लेखक ने व्याकरण को 9 भागों में बाँटा है-'Articolo', 'Nome', 'Pronome', 'Verbo', 'Participio', 'Adverbio', 'Conjugação', 'Proposição' और 'Interjeição'। दिलचस्प है कि 1778 में ही पुस्तक इस बात को भी बताती है कि यूरोपीय भाषाओं की वर्णमाला हिन्दी में प्रयोग किए जाने वाले वर्णों को ख़ासकर महाप्राण वाली ध्वनियों को दर्शाने के लिए पूर्णत: उपयुक्त नहीं है। अक्षरों और ध्वनियों की व्याख्या काफ़ी सटीक है, ख़ासकर मूर्धण्य वर्णों की जानकारी।

चूँकि यह पुस्तक किसी भी ऐसे व्याकरण के बारे में इंगित नहीं करती है, जिसे पुर्तगाली भाषियों के लिये पुर्तगाली में लिखा जा चुका हो, अत: इस अनाम / अज्ञात लेखक वाली पुस्तक को ही पुर्तगाली में हिन्दी के ऊपर लिखा गया पहला व्याकरण माना जा सकता है। इस पुस्तक को व्याकरण के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

में देखा जा सकता है। इस समय के पादरी औपचारिक भाषाविद नहीं होते थे और उनका उद्देश्य प्रमुखत: भाषा शिक्षण होता था, अत: यह व्याकरण आज की व्याकरण की पुस्तकों में प्रचलित भाषा सिद्धांत की परंपरा से थोड़ी अलग है।

मिशनरियों द्वारा लिखी गई पांडुलिपियाँ प्रकाशित होने से पहले रोम/वेटिकन सिटी को भेजी जाती थीं, और उनकी स्वीकार्यता और/या सुझावों को जोड़ने के बाद ही मिशनरी पुस्तकें प्रकाशित कर पाते थे और कई बार मिशनरियों की दूर-दराज इलाकों में मृत्यु के बाद उनकी सारी चीजें रोम भेज दी जाती थीं, अत: रोम स्वत: ही एशिया की भाषाओं पर काम करने का प्रमुख स्रोत बन जाता था, जहाँ एशिया की कई भाषाओं की जानकारियाँ एक साथ ही मिल सकती थीं। कई बार मिशनरियों को कई भाषाएँ सीखनी पड़ती थीं और अलग-अलग गिरजाघरों में सेवाएँ देनी पड़ती थीं। इससे कई बार मिशनरी कई भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी करते थे, इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है, Sebastião Dalgado की किताब Influência do vocabulário portuguêsemlínguasasiáticas जो कि 1913 CoimbraUniversity Press में प्रकाशित हुई है। इस किताब में एशिया की 50 से ज़्यादा भाषाओं पर पुर्तगाली भाषा के प्रभाव की जानकारी उदाहरण के साथ दी गई है। हिंदी पर पुर्तगाली भाषा के शब्दों के प्रभाव के उदाहरण ऊपर इस आलेख की शुरुआत में दिए गए हैं। तकरीबन 100 सालों बाद भी भारत और पुर्तगाल के बीच के भाषाई अध्ययनों के लिए यह पुस्तक एक प्रमुख स्रोत है। प्रो. Sebastião Dalgado प्रो.Guilherme de Vasconcelos de Abreu की मृत्यु के बाद लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में संस्कृत के प्रोफेसर रहे। 22 अप्रैल 2016 को इसी विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन केंद्र की स्थापना हुई। केंद्र हिंदी, संस्कृत, भारतीय इतिहास, संस्कृति, धर्म और दर्शन आदि के शिक्षण के जरिए भारतीय अध्ययन और विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण को पुर्तगाल में मजबूत करता आ रहा है।

नि:संदेह, पुर्तगाली खोज काल में नई दुनिया की खोज में दुनिया के कई अलग-अलग क्षेत्रों में गए, धीरे-धीरे वहाँ व्यापार आदि शुरू करने के साथ-साथ वहाँ अपना क़ब्ज़ा करना भी शुरू कर दिया। 1510 में सबसे पहले गोवा पर पुर्तगालियों ने अपना अधिपत्य स्थापित किया। वे व्यापार के साथ-साथ, ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिए अपने साथ मिशनरियों का एक समूह भी अपने साथ ले जाते थे। मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य ईसाइयत का प्रचार-प्रसार करना रहा है और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने स्थानीय भाषाओं और संस्कृतियों को सीखना और समझना शुरू किया और इस प्रक्रिया में भारतीय उपमहाद्वीप में हिंदी और भारतीय भाषाओं के व्याकरण और शब्दकोशों के निर्माण के साथ-साथ भारतीय दर्शन, संस्कृत, पाली, भारतीय धर्मों आदि की जानकारियाँ पुर्तगाली, डच, फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी में अनुवादित की गईं और इसके जरिए यूरोप, एशिया के अलावा दुनिया के अन्य देशों में भी भारतीय ज्ञान परम्परा पहुँची और तदुपरांत कई विदेशी विश्वविद्यालयों में संस्कृत और हिंदुस्तानी/हिंदी के शिक्षण की शुरुआत हुई और धीरे-धीरे भारत विद्या विभाग आदि के खोलने की परम्परा शुरू हुई और इन्हीं केंद्रों से हिन्दी / हिंदुस्तानी के शिक्षण की शुरुआत हुई और यह शुरुआत दुनिया के कई देशों में भारत की स्वतंत्रता से बहुत पहले की ही है। अत: भारतीय ज्ञान और हिन्दी के वैश्वीकरण और प्रचार-प्रसार में 18 वीं शताब्दी से नि:संदेह पुर्तगाली भाषा और पुर्तगाल एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा है।

भारतीय अध्ययन केंद्र,
कला-संकाय, लिस्बन विश्वविद्यालय,
पुर्तगाल

राष्ट्रीय एकता की कड़ी हिंदी ही जोड़ सकती है

- बालकृष्ण शर्मा नवीन

हिंदी और रूसी के अंतर-संबंध

-प्रगति टिपनीस

हिंदी और रूसी की पारस्परिकता-और अगर अधिक सटीक शब्दों में कहूँ तो रूसी और संस्कृत के अंतर-संबंध-ने मुझे पहली बार तब चकित किया था जब सोवियत संघ के अपने प्रवास के पहले वर्ष में मैंने रूसी भाषा सीखनी शुरू की थी। कुछ पाठों के बाद ही हमें यह बताया गया कि रूसी भाषा में प्रत्येक संज्ञा, वाक्य में अपनी कारक-भूमिका के अनुसार परिवर्तित होती है, यह बात सभी सर्वनामों के लिए भी लागू होती है। रूसी भाषा में छ: कारक होते हैं यानी प्रत्येक संज्ञा के दोनों वचनों के छ:-छ: रूप होते हैं। यह बात मुझे बहुत जानी-पहचानी लगी थी क्योंकि संस्कृत में भी आठ कारक होते हैं और उसके शब्द भी वाक्य में अपनी भूमिका के अनुसार रूप बदलते हैं। रूसी कारक -

रूसी कारक (case)	Noun mal chik लड़का	बहुवचन mal'chiki	Pronoun On वह (पु.)
कर्ता (Nominative case)	mal'chik	mal'chiki	on
कर्म (Accusative case)	mal'chika	mal'chikov	yego (यिवो)
करण (Instrumental case)	mal' chikom	mal'chikami	im
संबंध (Genitive case)	malchika	mal'chikov	yego
अधिकरण (Prepositional case)	O malchike	O mal' chikakh	o n om
सम्प्रदान (Dative case	mal chiku	mal'chikam	Yemu (यिमू)

रूसी भाषा में प्रत्येक क्रिया के भी छह रूप होते हैं-यानी प्रत्येक पुरुष के लिए दो रूप-एक एकवचन का और दूसरा बहुवचन का। प्रथम पुरुष में मैं के लिए एक रूप और हम के लिए दूसरा; मध्यम पुरुष में तुम के लिए एक और आप के लिए दूसरा, वैसे ही उत्तम पुरुष में वह के लिए एक और वे के लिए दूसरा।

प्रथम पुरुष

एक वचन : Ya pishu मैं लिखता हूँ।

बहु वचन : My pishem हम लिखते हैं।

मध्यम पुरुष

एक वचन : Ty pishesh तुम लिखते हो।

बहु वचन : Vy pishete आप लोग लिखते हैं।

उत्तम पुरुष

एक वचन : On, ona, ono pishet वह लिखता/लिखती है।

बहु वचन : Oni pishut वे लिखते हैं।

रूसी भाषा में संस्कृत की तरह ही तीन लिंग होते हैं : पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। यह अलग बात है कि संज्ञा-शब्दों के लिंग निर्धारण नियम दोनों भाषाओं भिन्न हैं। एक नियम दोनों में समान है-यदि संज्ञा से स्पष्ट रूप से यह बोध होता है कि वह स्त्रीजाति या पुरुषजाति की है तो उसका लिंग उसकी जाति का ही रहता है। इसलिए लिंग निर्धारण के नियम मुख्यत: निर्जीव संज्ञाओं के लिए होते हैं। रूसी में संज्ञा का लिंग-निर्धारण मुख्य रूप से शब्द के अंतिम अक्षर से होता है-जिन संज्ञाओं के अंत में कोई व्यंजन होता है, वे आमतौर पर पुल्लिंग श्रेणी में आते हैं; जिन संज्ञाओं के अंत में रूसी स्वर 'आ' अथवा 'या' होता है, वे मुख्यत: स्त्रीलिंग होते हैं और जिनके अंत में रूसी स्वर 'ओ (श)' अथवा 'ये (द्व)' होता है, वे नपुंसकलिंग श्रेणी में होते हैं। रूसी में दो अक्षर ऐसे हैं जिनका

रूसी भाषा की अध्येता, लेखक

कोई उच्चारण नहीं है, वे सॉफ्ट-साइन और हार्ड-साइन कहलाते हैं। जैसा कि इनके नामों से विदित है इनका काम उस व्यंजन को मृदुल एवं कठोर बनाना होता है, जिसके बाद ये लगे होते हैं। रूसी भाषा की बहुत सारी संज्ञाएँ 'सॉफ्ट साइन' से समाप्त होती हैं और इन में से कौन सी किस लिंग की है यह याद रखना होता है। रूसी भाषा में भी कुछ संज्ञाएँ अपवाद हैं जिनका लिंग निर्धारण नियमों के आधार पर नहीं होता है और उनके लिंग भी याद रखने होते हैं।

mal chik, dom, prepodavatel, papa, uchebnik-ये सब पुल्लिंग हैं। पापा शब्द के अंत में 'आ' स्वर लगा होने के बावजूद चूँकि इससे स्पष्ट रूप से पुरुष का बोध होता है इसलिए यह पुल्लिंग है।

Devushka, kvartira, mat, zemlya, derevnya-ये सब स्त्रीलिंग हैं। रूसी अक्षर सॉफ़्ट साइन के लिए यहाँ (') प्रयुक्त है। सॉफ्ट साइन से अंत होने वाला शब्द Prepodavatel' पुल्लिंग है क्योंकि अध्यापक आमतौर पर पुरुष हुआ करते थे और mat' स्त्रीलिंग है।

Okno, palÓto, derevo, gnezdo, platye -ये सब नपुंसक लिंग शब्द हैं।

संस्कृत में संज्ञाओं के लिंग-निर्धारण नियम भिन्न हैं। अगर मोटे तौर पर देखा जाए तो जिन शब्दों का कर्ता-रूप विसर्ग (:) में समाप्त होता है, वे मुख्यत: पुल्लिंग होते हैं। अधिकतर आकारांत और ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होते हैं और अधिकांश अनुस्वार यानी म् में समाप्त होने वाले शब्द नपुंसकलिंग कहलाते हैं। संस्कृत में लिंग निर्धारण के नियम बहुसंख्य हैं और उनके अध्ययन के बाद संज्ञाओं का लिंग-निर्धारण सरल हो जाता है।

रूसी में गणनीय संज्ञा का रूप उसके साथ प्रयुक्त संख्या के साथ बदलता है और तदनुरूप विशेषण और क्रिया भी बदलते हैं। अगर किसी इकाई संज्ञा की बात हो रही है तो वह कर्ताकारक के एकवचन में लिखी जाती है, दो, तीन और चार इकाइयों के लिए संज्ञा के संबंधकारक का एकवचन प्रयुक्त होता है तथा पाँच से बीस तक के लिए संज्ञा के संबंधकारक का बहुवचन। आगे की सभी दहाइयों में इक्कीस जिसे रूसी में भी अंग्रेजी के twenty one की तरह 'बीस और एक' कहा जाता है-चूँकि यह संख्या एक में समाप्त होती है इसलिए इसके लिए इकाई संज्ञा का नियम दोहराया जाता है; बाईस से चौबीस तक के लिए दो से चार इकाइयों वाला नियम और पच्चीस से तीस तक बहुवचन वाला और यों ही आगे।

संज्ञा	इकाई	दो, तीन, चार इकाइयाँ	पाँच से बीस तक
Mal'chik (पु)	O d i n umnyy mal'chik एक चतुर लड़का	D v a umnykh malchikaa दो चतुर लड़के	P y a t' umnykh malchikov पाँच चतुर लड़के
Shar (पु.)	O d i n krasnyy shar एक लाल गुब्बारा	Chetyre krasnykh shara चार लाल गुब्बारे	Odinnadtsat' krasnykh sharov ग्यारह लाल गुब्बारे
Devushka (स्त्री.)	O d n a russkaya devushka एक रूसी लड़की	T r i russkiye devushki तीन रूसी लड़कियाँ	Devyat' russkikh devushek नौ रूसी लड़कियाँ
Kniga (स्त्री)	O d n a legkaya kniga एक हल्की किताब	D v e legkiye knigi दो हल्की किताबें	S e m' legkikh knig सात हल्की किताबें
Okno (नपुंसक.)	O d n o bol'shoye okno एक बड़ी खिड़की	D v a bol'shikh okna दो बड़ी खिड़कियाँ	Vosem' bol'shikh okon आठ बड़ी खिड़कियाँ
Platye (नपुंसक.)	O d n o platye एक ड्रेस	Tri platya तीन ड्रेस	Desyat' platyev दस ड्रेस

रूसी अध्ययन के आरम्भ में रूसी और संस्कृत के बीच पहली समानता दोनों भाषाओं में विभिन्न कारकों का होना लगी थी, हालाँकि संस्कृत में आठ कारक होते हैं और रूसी में छह। संस्कृत के कारक (विभक्तियाँ) हैं - कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध,

अधिकरण, सम्बोधन। रूसी के कारक हैं - कर्ता (Nominative Case), कर्म (Accusative Case), करण (Instrumental Case), अधिकरण (Prepositional Case), सम्बन्ध (Genitive Case), सम्प्रदान (Dative Case) - इस आधार पर यह स्पष्ट होता है कि रूसी में अपादान कारक और सम्बोधन कारक नहीं हैं। सम्बोधन कारक आधुनिक रूसी भाषा में नहीं है परन्तु प्राचीन स्लावी भाषा में था और उसकी गूँज आज भी 'ओ बोजे-? Bozhe हे भगवान!' जैसे शब्दों में सुनाई देती है। (रूसी कारकों के लिए देखें तालिका रूसी कारक) संस्कृत और रूसी दोनों ही भाषाओं में कारक की पहचान शब्द के बदले प्रारूप से होती है। प्रत्येक शब्द के कर्ता-रूप के अंत में होने वाला परिवर्तन बताता है कि उक्त शब्द वाक्य में किस कारक का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

संस्कृत का मैंने कोई गहन अध्ययन नहीं किया था लेकिन स्कूल में हिन्दी के साथ अनिवार्य संस्कृत कक्षा छठी से बारहवीं तक पढ़ी थी और संस्कृत के व्याकरणिक नियमों को थोड़ा जानती-समझती थी। रूसी भाषा में शब्द-संरचना और व्याकरण के नियम मुझे ठीक वैसे ही गाणितिक एवं स्पष्ट लगे थे जैसे संस्कृत के और इसके चलते रूसी भाषा सीखना कोई बहुत मुश्किल काम नहीं सिद्ध हुआ था। हाँ, इस बात का अफसोस बहुत रहता था कि काश संस्कृत का अध्ययन थोड़ा और गम्भीरता से किया होता तो शायद रूसी सीखना और सरल हो जाता।

दोनों ही भाषाओं के अपने अल्पज्ञान के बावजूद रूसी और संस्कृत में समानताओं को देख पाना कोई विरली बात नहीं थी। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है कि जब हम कुछ नया सीखते हैं और अगर उसे अपनी जानकारी के किसी तथ्य से सम्बद्ध कर पाते हैं तो सीखने की प्रक्रिया सरल और सार्थक हो जाती है।

भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन विश्व में अट्ठारहवीं सदी से आजतक होता आ रहा है। और सबसे रोचक बात यह है कि इसकी शुरुआत सन् 1780 में तब हुई जब ब्रिटिश जज विलियम जोन्स 61746-17948 का तबादला कलकत्ता, भारत हुआ। विलियम जोन्स ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक थे और उन्हें ग्रीक (यूनानी) और लैटिन भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। भारत में रहकर उन्हें तात्कालिक भारतीय कानून को समझना और प्रणालीबद्ध करना था ताकि ब्रिटेन भारतीय कानून के आधार पर ही वहाँ शासन कर सके। इसके लिए उन्हें संस्कृत सीखने की आवश्यकता पड़ी। संस्कृत का अध्ययन करते समय वे अपने जीवन के सर्वसार्थक निष्कर्ष पर पहुँचे थे। उन्होंने यह पाया था कि लैटिन और ग्रीक के अपने ज्ञान के चलते वे संस्कृत के कुछ शब्दों के अर्थों का अनुमान लगा सकते हैं। संस्कृत अध्ययन के चार महीनों बाद उन्होंने एक लेख में लिखा :

'संस्कृत भाषा की संरचना अपनी प्राचीनता के बावजूद अद्भुत है। ग्रीक की तुलना में यह अधिक परिपूर्ण तथा लैटिन की तुलना में अधिक समृद्ध है। दोनों से कहीं अधिक परिष्कृत होने के बावजूद यह दोनों के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है-इन तीनों भाषाओं की क्रियाओं तथा व्याकरण में ऐसी सघन समानता है, जो संयोगवश नहीं हो सकती। यह समानता इतनी गहरी है कि किसी भी भाषाशास्त्री के लिए जो इन तीनों का अध्ययन साथ में कर रहा हो यह स्वीकार करना एक कठिन काम हो सकता है कि इनकी व्युत्पत्ति का स्रोत एक नहीं है।'

प्रणालीबद्ध तरीके से भाषाविज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन का श्रेय विलियम जोन्स को जाता है। शुरुआत में इस अध्ययन को इंडो-जर्मन कहा गया और बाद में वह इंडो-यूरोपीय यानी भारोपीय कहलाने लगा।

इंडो-यूरोपीय भाषा समूह के भौगोलिक प्रस्तार में लगभग समस्त यूरोप, ईरानी पठार और उत्तरी भारतीय उपमहाद्वीप आते हैं। इस समूह की कई भाषाएँ-जैसे अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, स्पैनिश, डच और रूसी-इनसे सम्बद्ध देशों के औपनिवेशिक होने के कारण एक बड़े भूभाग में फैल गईं और आज भी वहाँ बोली जाती हैं। भारोपीय भाषा परिवार कई समूहों में बँटा हुआ है और उसके आठ समूहों की भाषाएँ आज जीवित हैं तथा फल-फूल रही हैं। इन आठ समूहों में हिन्द-ईरानी तथा बाल्टिक-स्लाव भाषा परिवार आते हैं। हिंदी और रूसी इन्हीं दो परिवारों से सम्बद्ध हैं; हिंदी का सम्बन्ध हिन्द-ईरानी परिवार से है और रूसी का बाल्टिक-स्लाव परिवार से।

रूसी भाषा का उद्गम प्राचीन स्लावी भाषा है और हिंदी का संस्कृत। समय की धारा में बहते हुए ये प्राचीन भाषाएँ कई परिवर्तनों से गुजरी हैं और आज अपने मूल रूप से बहुत भिन्न हैं। संस्कृत का मूल रूप नहीं बदला है पर हिंदी तक आते-आते वह पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के रास्तों से गुजरी है। रूसी प्राच्यविद अलेक्सान्दर वस्तोकव 61781-18648 ने भाषाओं के तुलनात्मक अध्यययन के लिए यह बात स्पष्ट रूप से कही थी-

'वर्तमान भाषाओं और बोलियों की प्राचीन भाषाओं से तुलना अवश्य की जानी चाहिए लेकिन उसके लिए आवश्यक शर्त यह है कि आधुनिक भाषा के अध्ययनरत तथ्य की जड़ें प्राचीन भाषा से जुड़ी हों तथा वह तथ्य प्राचीन भाषा के आधार पर निर्धारित अवधारणाओं की पुष्टि करता हो न कि खंडन। समय के साथ भाषा में हुए परिवर्तनों को ध्यान में रखे बिना किसी प्राचीन भाषा की आधुनिक भाषा से तुलना करना भाषाविज्ञान को उसके इतिहास में कई वर्ष तो क्या सदियों पीछे धकेलने के समान है और ऐसा करने से भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से वंचित रह जाता है।'

हिंदी और रूसी के अंत:संबंध तभी बेहतर समझे जा सकेंगे जब ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इनमें हुए परिवर्तनों के आधार पर भाषाओं में निहित समानताओं का अध्ययन किया जाएगा। संस्कृत की हिंदी तक की यात्रा और उसमें आए परिवर्तनों तथा आधुनिक रूसी के बीच की समानताओं का अध्ययन करते समय रूसी की प्राचीन स्लावी भाषा से आज तक की यात्रा को भी अवश्य ध्यान में रखना होगा।

रूसी प्राच्यविद तथा प्राचीन भारतीय भाषाओं और दर्शनशास्त्र के विशेषज्ञ अन्द्रेई व्सेवोलदविच परिबोक ने इस प्रश्न के उत्तर में- रूसी और संस्कृत के बीच समानता मुख्यत: कहाँ दृष्टिगोचर होती है-एक साक्षात्कार में कहा था कि रूसी भाषा व्याकरणिक रूप से प्राचीन भाषाओं के बहुत समीप है; उदाहरण के तौर पर इसमें छ: कारक हैं और संस्कृत में आठ कारक। यह तथ्य दोनों भाषाओं के सामीप्य को दर्शाता है। संस्कृत में उत्तम पुरुष के एकवचन के लिए उपयुक्त क्रियाओं के अंत में 'ति' (गच्छति) होता है और रूसी की क्रिया में 'ह्ल' (delajet, pishet आदि); इसके अलावा रिश्तों के लिए प्रयुक्त होने वाले नाम हमारे यहाँ समान हैं-

देवर के लिए शब्द देवेर (dever') प्रयुक्त होता है, मातृ के लिए मात्य (mat'), संस्कृत में बेटा सुनु होता है तो रूसी में सीन (syn); इसके अतिरिक्त कुछ अन्य रिश्तों के लिए प्रयुक्त शब्दों में भी स्पष्ट समानता देखी जा सकती है जैसे भ्रातृ रूसी में ब्रात- brat होता है तो श्वसुर होता है स्वयोकर-svyokar और बहू संस्कृत में स्नुषा होती है तो रूसी में स्न?ा - snokha होती है। विधवा को रूसी में व्दवा- vdova कहते हैं। मांस का रूसी शब्द म्यासा- myaso होता है और संस्कृत शब्द मास (महीना) रूसी में mesyats होता है। रूसी और संस्कृत दोनों के शब्दों में उनकी व्याकरणिक भूमिका के अनुसार थोड़े बदलाव होते हैं और इसके चलते रूसियों के लिए संस्कृत सीखना अन्य यूरोप वासियों की तुलना में अधिक सरल होता है।

एक बार नागार्जुन तथा दो-तीन अन्य भारतीय साहित्यकार एक हिंदी सम्मेलन के लिए कज़ाकिस्तान की तत्कालीन राजधानी अल्माअता आए थे। इस सम्मलेन में भारतीय भाषा एवं साहित्य विद तथा तुलनात्मक भाषाविज्ञान विशेषज्ञ सिर्गेई सेरेब्रिआनी भी शिरकत कर रहे थे। अल्माअता से उन दिनों 'Prostor -प्रस्तोर' नाम की एक पत्रिका निकलती थी, वहाँ उपस्थित सभी रूसी जो हिंदी जानते थे उसका अनुवाद बताने की कोशिश करने लगे। किसी ने प्रस्तोर का अनुवाद फैलाव बताया तो किसी ने विस्तार। नागार्जुन थोड़ी देर सबकी बातें सुनते रहे और बोले प्रस्तार क्यों नहीं हो सकता इसका अनुवाद। तब तक सभी उपस्थित लोग शब्दों में 'प्रस्तोर' शब्द की व्याख्या कर चुके थे और यह बता दिया था कि क्षितिज तक फैली लम्बी-चौड़ी जगह को 'प्रस्तोर' कहते हैं। प्रस्तार शब्द उस दिन सभी रूसियों के लिए एक नई और सुखद खोज थी और उसने हिंदी-रूसी भाषाओं के शब्दों के सामीप्य को उनके लिए एक नए रूप में पुन: प्रस्तुत किया था।

भारोपीय परिवार की भाषाएँ दो वृहद् समूहों में सतेम तथा केंतुम शब्दों के आधार पर विभाजित हैं। इस विभाजन की अन्य गहनताओं में जाए बिना अगर मोटे तौर पर देखा जाए तो सतेम समूह में वे भाषाएँ हैं जिनमें संख्या सौ के लिए प्रयुक्त शब्द सतेम के समान है और केंतुम समूह में वे भाषाएँ हैं जिनमें संख्या सौ केंतुम से मिलती जुलती है। संस्कृत और स्लावी भाषाएँ सतेम समूह में हैं। संस्कृत और रूसी की संख्याओं में समानता मात्र शतम (sto) तक सीमित नहीं है। आइए दोनों भाषाओं की पहली दस संख्याएँ देखें-

संख्या	संस्कृत	रूसी
1	एकः	Odin
2	द्वौ	Dva
3	त्रयः	Tri
4	चत्वरः	Chetyre
5	पञ्चम्	Pyat'
6	षष्टम्	Shest'
7	सप्तम्	Sem'
8	अष्टम्	Vosem'
9	नवम्	Devyat'
10	दशम्	Desyat'

इस तालिका को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कुछ संख्याएँ तो पूर्णत: एक जैसी हैं जैसे दो, तीन और चार तथा अन्य संख्याओं में - केवल नौ को छोड़कर-समानता काफी प्रत्यक्ष है। और जैसा कि हम जानते हैं दस तक की संख्याओं को जोड़कर आगे की गिनतियाँ बन जाती हैं, इसलिए सौ तक पहुँचते-पहुँचते बहुत सी गिनतियाँ ऐसी मिलती हैं जो केवल रूसी या केवल संस्कृत जानने वाले भी एक-दूसरे की भाषा जाने बगैर समझ लेते हैं। संख्या-प्रणाली किसी भी संस्कृति की जड़ों से जुड़ी होती है और उसके बारे में बहुत कुछ कहती है।

भाषाओं के पारस्परिक संबंध तथा सतत एक-दूसरे से कुछ ग्रहण करते रहने की उनकी प्रवृत्ति ही इस परिवर्तनशील जग में उन्हें समृद्ध करते है, उनमें साँस फूँकते रहते हैं। रूसी और हिंदी भाषाओं में कितने ही शब्द अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं से आकर इतनी गहराई से पैठ कर गए हैं मानो उनके बिना अपनी बात कहना भी मुश्किल हो। हर भाषा नए शब्दों को अपनाते समय अपने अनुरूप उनमें थोड़े बदलाव कर देती है। बादशाह, बाजार, वज़ीर, शाबाश, सराय, सुलतान, संदूक, अल्माड़ और ऐसे ही तमाम शब्द भारत और रूस दोनों ही देशों में रोजमर्रा की जिन्दगी में लोगों की जबान पर चढ़े मिल जाते हैं। एक शब्द ऐसा है जिससे ही अधिकतर भारतीय और रूसी अपने दिन की शुरुआत करते हैं, वह पूरे दिन उनके साथ बना रहता है और दिन का अंत भी मुख्यत: उसके पान से ही होता है। वह शब्द है चाय। चाय शब्द चीनी भाषा से आकर रूसी और भारतीयों के मानस में यों बैठा है मानो सदा (vsegda) से वहाँ था। अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों की बहुतायत हिन्दी में तब आई जब अपभ्रंश ने समाज की आवश्यकता को समझते हुए इन भाषाओं के शब्दों को अपनाया और जबान उर्दू वजूद में आई। उर्दू का समतुल्य और समस्वर शब्द रूसी में orda है। Orda का अर्थ जमघट, झुण्ड आदि होता है। क्या उर्दू भी भाषाओं का वह झुण्ड नहीं जिसे तत्कालीन हिंदुस्तानी भाषा अपभ्रंश ने अपने विकास और विस्तार के दौर में अपनाया था?

आधुनिक रूसी भाषा और संस्कृत के शब्दों में समानता पाने की हर किसी की अपनी कोई कहानी अवश्य होती है। मॉस्को में गत 50 से अधिक वर्षों से रह रहे विनय शुक्ल एक वरिष्ठ पत्रकार और राजनीतिक विश्लेषक हैं; साथ ही अनुवाद एवं रेडियो में काम करने का भी इन्हें अच्छा अनुभव है। रूस आने और भाषाओं में समानता तलाशने के अपने अनुभवों के बारे में बताते हुए ये कहते हैं-'जिन पहले रूसी छात्रों से मेरा परिचय हुआ उनमें से एक का कुलनाम Vdovin था, जब मैंने पूछा कि उसके नाम का क्या अर्थ है तो उसने बताया कि रूसी भाषा में 'vdova' का अर्थ होता है विधवा और विधवा के वंशज को Vdovin कहते हैं। रूसी भाषा में वेद (the root - ved' का मतलब ज्ञान (ज्ञानी) होता है। उदाहरण के लिए भाषाविद् को रूसी में yazykoved कहते हैं (यज़िक का अर्थ भाषा होता है)। आप में से कुछ ने रूसी राष्ट्रपति दिमित्री मेदवेदेव का नाम तो अवश्य सुना होगा। उनके कुलनाम 'मेदवेदेव' का अनुवाद होता है- मेद्वेद का वंशज। रूसी शब्द मेद्वेद दो शब्दों म्योद (med) और येद (yed) से मिलकर बना है। म्योद का अर्थ मधु और येद का अर्थ खाना (संस्कृत अद) होता है। प्राचीन रूस में लकड़ी की बनी विशालकाय मूर्तियों की पूजा की जाती थी और आपको शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन मूर्तियों को 'बलवान' कहा जाता था। हालाँकि आधुनिक रूसी भाषा में बलवान का मतलब बुद्धू हो गया है ठीक वैसे ही जैसे गौतम बुद्ध के अनुयायियों को तत्कालीन रूढ़िवादी बुद्धू कहकर पुकारते थे।'

बुद्ध के विषय को अगर विस्तार दिया जाए तो संस्कृत शब्द बुद्ध का अर्थ होता है ज्ञान-सम्पन्न, ज्ञानी और रूसी में क्रिया (budit') है जिसका अर्थ होता है जगाना और इस क्रिया से बने विशेषण (प्रबुझद्योनि- probuzhdennyy) का अर्थ भी ठीक वही होता है जो बुद्ध का।

आजकल सर्दियों का मौसम है, उत्तर भारत में हिमपात (क्रिया padat'-गिरना) हो रहा है तो रूस में भी सर्दियाँ यानी zima (हिम का सम-स्वर शब्द)-रूसी भाषा का अक्षर '5' संस्कृत के 'ह' समान है। घरों को तापने (रूसी में क्रिया topit') के लिए लोग अग्नि (ogon') का सहारा ले रहे हैं। मौसम वर्तन करते (क्रिया vorotitsya-वापस आना) रहते हैं। जल्दी ही वसंत (vesna) आएगा, कई मीटर ऊँची जम गई बर्फ लुप्त (क्रिया dolupit's'a - परतें उतरना) हो जाएगी, सब कुछ प्लावित (plavit'sya -पिघलना) हो जाएगा। बदलते मौसम में कुछ दिन कोहरे के धुएँ - संस्कृत शब्द धूमाम् (रूसी dym) में डूबे होंगे लेकिन जल्दी ही तम (temen'- अंधकार) हटेगा और श्वेत (svet) का प्रस्तार (prostor) होगा। नव-जीवन (novaya zhizn'), नव-ज्ञान (novoe znaniye ज़्नानिये) से सब कुछ जी (zhi-1) उठेगा। रूसी शब्दों zhi-t'

(क्रिया जीना); zhi-zn '(जीवन) का मूल शब्द भी zhi है8 हर कोई अपने घाव यानी स्व-व्रण (svoi rany) भूलेगा, रुदन (क्रिया rydat '-रोना कलपना) छोड़कर हृद (grud '- छाती) में हर्ष की रुचें (luch- किरणें) तान (tyanut '-फैलने) मारेंगी।

एक और समानता है जो विवाह शब्द की हमारी समझ में एक नया आयाम जोड़ सकती है। रूसी क्रिया vozit ' का अर्थ होता है, वाहन: यानी सवारी पर ले जाना, और vivozit ' (विवाहन:) का अर्थ होता है कहीं से कहीं ले जाना। विवाह शब्द का इस आधार पर अर्थ निकलता है कहीं से कहीं ले जाना। हमारे यहाँ विवाह के बाद पत्नी को पति उसके घर से अपने घर ले जाता है-कहीं यही विवाह का शब्दश: अर्थ तो नहीं?

मुहावरों और कहावतों का भी बहुत एक जैसा होना यह दर्शाता है कि सोच, रीत-रिवाजों, मान्यताओं और अंधविश्वास आदि के स्तर पर भी हमारी संस्कृतियों में समानता रही है। उदाहरण के तौर पर अगर 'कानी कौड़ी न होना' मुहावरा लिया जाए तो कानी कौड़ी का अर्थ होता है वह कौड़ी जिसमें माला में पिरोने के लिए छेद किए गए हों और जो धन के रूप में प्रयोग करने के योग्य न रह गई हो और जिसके पास कानी कौड़ी भी नहीं है वह अतिशय निर्धन व्यक्ति हुआ। इस का समानार्थी मुहावरा रूसी में Ni Imet ' Lomanogo Grosha Za Dushoy है, जिसका शब्दश: अर्थ है पास आधे कोपेक का टूटा सिक्का (खोटा सिक्का) तक न होना अर्थात् बहुत करीब होना। ऐसे बहुत सारे मुहावरे और कहावतें जब समय-समय पर आकर टकराते हैं तो सुखद अनुभूति दे जाते हैं।

जिस भाषा (संस्कृत) को अस्तित्व (yestestvo) में आए इतनी सदियाँ हो गई हैं, उसके और रूसी भाषा के बीच समानताओं का अध्ययन करते समय इसके अर्थ की सार्थकता मेरे लिए और स्पष्ट हो गई। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रत्येक खोज शिक्षण की दिशा में भी एक बड़ा कदम होता है। जितना बेहतर हम किन्हीं दो भाषाओं की समानताएँ और अंतर समझते हैं, उन उदाहरणों के आधार पर उतना ही सरल हो जाता है भाषा सीखना और सिखाना। इस प्रकार के अध्ययन मात्र भाषाओं को बेहतर समझने में ही मददगार नहीं होते बल्कि भाषा के नीचे बहतीं संस्कृति और समाज की मानसिकता की धाराओं तक भी ले जाते हैं। अनुवाद कार्यों के लिए भी भाषा के साथ समाज की मानसिकता और संस्कृति को समझना बहुत जरूरी होता है, यानी इन अध्ययनों से अनुवाद कार्य भी लाभान्वित होते हैं। हालाँकि रूसी और संस्कृत का तुलनात्मक भाषाविज्ञान अध्ययन अभी लगभग दो सदी ही पुराना है लेकिन हमारी जातियों और संस्कृतियों की आपसदारी प्राचीन काल से चली आ रही है और अभी इसके बहुत सारे प्रमाण हमें इन दो प्राचीन भाषाओं (संस्कृत और प्राचीन स्लावी) में छिपी जानकारी से मिल सकते हैं। भाषाविज्ञान से मिलने वाली पारस्परिकता की हर नई जानकारी हमारे दो देशों (भारत और रूस) को मात्र भाषाई स्तर पर ही समीप नहीं लाती हैं बल्कि प्रत्येक बार इस बात की पुष्टि करती है कि वर्तमान परिवेश में भी जनस्तर से लेकर राजनीतिक और राजनयिक स्तरों तक दृष्टिगोचर हमारी आपसी समझ की जड़ें कहीं गहराई में जुड़ी हुई हैं।

संदर्भ :- अंतरजाल

- सांस्कृतिक सचिव, हिंदुस्तानी समाज, मॉस्को

न है आवश्यकता भ्रामक सपनों की
न ही किसी सुन्दर आदर्श लोक की-
नियति नित यह सवाल उठाती है
कौन हैं हम इस प्राचीन यूरोप में?

अचानक आ धमके मेहमान?
या कामा और ओब की घाटियों से
आया कोई गिरोह
क्रोध सींचता है जिसकी साँसें
निरर्थक रोष रौंदता है सब?

या हैं हम - उस महान जाति के
नाम जिसका भुलाया न जाएगा कभी
जिसकी वाणी आज तक
संस्कृत के राग से एक ताल है?

सांस्कृतिक सचिव,
हिंदुस्तानी समाज, मास्को

अपृथकनीय हिंदी-अरबी का प्रगाढ़ अंतर-संबंध

- आरती 'लोकेश'

'कुर्सी'-'मेज, आदमी, इंसान, उम्र, हाल, सेहत, खैर'-'खबर, 'अखबार, दुनिया, किताब, कलम, कानून, वक्त, कमीज, हिसाब, नसीब, रकम, माफी, मुश्किल, यानी' कितने ही शब्द हम अपनी आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग करते हैं जिन्हें हम हिंदी में इस तरह अपना चुके हैं कि यह भ्रम ही हो जाता है कि ये कदाचित हिंदी के ही हैं। उर्दू में भी इस्तेमाल में लाए जाने वाले ये सभी शब्द वास्तव में अरबी भाषा की देन हैं।

'मतलब', 'कीमत', 'लेकिन', 'व', 'मगरूर', 'मुखबिर', 'खतरा', 'बदला', 'तबादला', 'हवा', 'दरिया', 'कलाम', 'कायब', 'हक', 'जमाना', 'सबूत', 'तमाम' आदि कितने ही ऐसे शब्द हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में घुल-मिल अविलग बन चुके हैं।

अरबी भाषा के इतने शब्द हिंदी और उर्दू में इतनी सरलता से स्थापित हो पाने का क्या कारण हैं, आइए इस पर विचार करते हैं। भारतवर्ष में हिंदी भाषा का उद्गम 10 वीं से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य कहीं पाया जाता है। तब से अपने विकास की यात्रा आरंभ कर हिंदी का वर्तमान रूप बहुत से उतार-चढ़ाव व ऐतिहासिक घटनाओं का परिणाम है। प्रारंभ में हिंदी का रूप 'अपभ्रंश'भाषा के शब्दों से भरा था। हिंदी के इस रूप से विकसित होकर कई बोलियों का भी जन्म हुआ। हिंदी भाषा एक समावेशी भाषा है। इस पर बहुत-सी भाषाओं का प्रभाव है। अरबी भी उनमें से एक है। अरबी-फारसी भाषा के मिलते-जुलते रूप और उनके एकसाथ घुले-मिले होने के कारण प्राय: दोनों का नाम एक साथ ही आता है। तुर्की-अरबी-फारसी के समावेश से ही हिंदी भाषा में 'क', 'ख', 'ग', 'ज', 'फ' इन पाँच नए व्यंजनों का आगमन हुआ।

भारत में अरबी भाषा का पदार्पण मुगल काल से हुआ। मुगल ईरान से भारत आए किंतु उनके पूर्वजों का मूल स्थान उज्बेकिस्तान और तुर्कमेनिस्तान से माना जाता है। ईरान में इन दो देशों की संस्कृति का प्रभाव 7वीं शताब्दी से अपने जड़ें जमा चुका था। मुगल काल में उत्तर भारत में हिंदी का अस्तित्व अभी संघर्षरत ही था। अवधी व ब्रज भाषा आमजन की भाषा थी। मुगलों के साथ आई अरबी भाषा, जो अरबी-फारसी-तुर्की भाषा का सम्मिलित रूप थी, भारत में अपना रूप बदलने लगी। अरबी भाषा के शब्द बहुतायात में हिंदी और उर्दू दोनों ही भाषाओं ने अपनाए और धीरे-धीरे आमजन की भाषाएँ बनीं।

अरबी की वर्णमाला को 'अल अबजादियाह' कहा जाता है। अरबी और हिंदी की वर्णमाला का तुलनात्मक अध्ययन यह बताता है कि कुछेक वर्णों की हिंदी से साम्यता के अतिरिक्त, अरबी में हिंदी की बहुत-सी ध्वनियाँ बिल्कुल नहीं पाई जातीं। हिंदी की समृद्ध वर्णमाला में 13 स्वर व 39 व्यंजन अर्थात् कुल 52 अक्षर हैं।

अरबी तथा फारसी बहुत निकट की भाषा होते हुए भी कुछ भिन्नताएँ हैं। अरबी में जहाँ 28 अक्षर हैं वहीं फारसी में 32 हैं। दोनों के लिखने का एक ही तरीका है। कॉपी के आखिरी पन्ने से पहले की ओर लिखा जाता है और हिंदी में पहले से आखिरी की ओर। अरबी लेख के लिए, इन कॉपियों पर भी नामादि लिखने की जगह पृष्ठावरण पर ही बनी होती है। साथ ही हिंदी के विपरीत इसे उर्दू के समान दाएँ से बाईं ओर लिखा जाता है। इसी कारण इन कॉपियों में हाशिया भी सीधे हाथ की ओर होता है। ध्यातव्य है कि जब अंकगणित की बात आती है तो किसी संख्या को बाएँ से दाएँ ही लिखा व पढ़ा जाता है। हिंदी व अरबी दोनों भाषाओं में बहुत-सी विषमताएँ होने पर भी कुछ समानताएँ भी हैं। हिंदी की अक्षर-धनियाँ क, ज, त, द, न, ब, म, य, र, ल, श, स, ह अरबी भाषा में ज्यों की त्यों पाई जाती हैं। अब अगर भिन्नताएँ देखें तो स्पर्शी व्यंजनों में से मूर्धन्य व्यंजन वाले 'ट' वर्ग की पाँच ध्वनियाँ तो अरबी भाषा से सम्पूर्णतया नदारद हैं। कण्ठ्य 'क' वर्ग, तालव्य 'च' वर्ग, दन्त्य 'त' वर्ग के महाप्राण अक्षर वाली ध्वनियाँ भी नहीं पाई जातीं। ओष्ठ्य व्यंजनों में से 'प' 'भ' नहीं होते अरबी में। अंतस्थ व्यंजनों में से 'व' नहीं पाया जाता अरबी भाषा में। अरबी में छोटे उ की मात्रा के आकार का अक्षर, जिसे अरबी में 'वाव' पढ़ा जाता है, वह अंग्रेजी के 'डब्ल्यू' का कार्य करता है, 'वी' का नहीं। या यूँ कहें कि 'वाव' अक्षर ऊ की मात्रा लगाने के लिए प्रयुक्त होता है, स्वतंत्र व्यंजन के तौर पर नहीं।

नीचे हिंदी वर्णमाला की कुछ ध्वनियों की समानरूपी अरबी ध्वनियों पर गौर करते हैं-

1. क (काफ़) क़ (क़ाफ़) ख (ख़) (ख़ा) ग (ग़) (ग़ैन) घ ङ
2. च छ ज (जीम) ज़ (ज़ा) झ ञ
3. ट ठ ड ढ ण

अरबी भाषा की अध्येता, लेखक

4. त (ता, तॉ) थ, द (दाल) ध न (नून)
5. प फ (फ़) (फ़ा) ब (बा) भ म (मीम)
6. य (या) र (रा) ल (लाम) व (वाव)
7. श (शीन) ष स (सीन, साद) ह (हा) ह (हा)
8. अ – (अ की ध्वनि के लिए 'अलिफ़' के साथ 'फतहा' का प्रयोग होता है)
9. आ–(अलिफ)
10. इ (इ की ध्वनि के लिए 'अलि' के साथ 'कसरा' का प्रयोग होता है)
11. ई (या)
12. उ (उ की ध्वनि के लिए 'अलिफ़' के साथ 'दमाह' का प्रयोग होता है)
13. ऊ (वाव
14. ए–यह औ के समान बोला जाता है और 'अ' के लिए लगने वाला चिह्न ही प्रयोग होता है।
15. ओ–'उ' की ध्वनि के लिए प्रयुक्त अक्षर ही 'ओ' के लिए भी प्रयोग होता है।
16. ऋए ऐ औ अं–ये स्वर व इनकी मात्राओं का कोई प्रावधान नहीं है।

उच्चारण	अंग्रेजी ध्वनि	हिंदी के समकक्ष ध्वनि
अलिफ़	a	अ
बा	b	ब
ता	t	त
सा	th	स–थ के बीच की ध्वनि
जीम	j	ज
हा	h	ह:
खा	kh	ख़
दाल	d	द
ढ्रैल	dh	द–ध के बीच की ध्वनि
रा	r	र
जा	z	ज
सीन	s	स (दंती स)
शीन	sh	श
साद	s	सॉ (तालव्य स)
दॉद	d	दॉ

अरबी अक्षर	उच्चारण	अंग्रजी ध्वनि	हिंदी के समकक्ष ध्वनि
	तॉ	t	त–थ के बीच की ध्वनि
----	थ्वा	z	जॉ
....	अ्न	?	अॅय
---	गैन	gh	ग़
---	फा	f	फ़
---	क़ाफ़	q	क़
	काफ़	k	क
---	लाम	l	ल
---	मीम	m	म
---	नून	n	न
---	हा	h	ह
---	वाव	w	व
---	या	Y	य

अरबी भाषा में स्वर अथवा मात्राओं को दो तरह से देखा जाता है– 'शॉर्ट साउंड'तथा 'लॉन्ग साउंड'। तीन 'शॉर्ट वॉवल'होते हैं और तीन ही 'लॉन्ग वॉवल'।

1. 'शॉर्ट वॉवल' हैं–'फतहा', 'कसरा', 'दमहा'
2. 'लॉन्ग वॉवल' हैं– अलिफ, या, वाव

एक बार अरबी वर्णमाला से हिंदी ध्वनियों की समानता पर भी दृष्टिपात कर लेते हैं।

अरबी के अक्षरों के तीन या चार रूप पाए जाते हैं। शब्द में अपने स्थान के अनुरूप प्रत्येक अक्षर अपना रूप बदलता है। अगर वह शब्द के आरंभ में आया है तो उसकी आकृति भिन्न होगी, अगर मध्य में आया है तो अलग रूप और अंत में इन दोनों से पृथक। कुछ–कुछ अक्षरों की मूल आकृति एकल रूप में इन तीनों से अलग है। फिर मात्रा के साथ जुड़ जाने पर भी इनके रूप में परिवर्तन आता है। कुल मिलाकर एक अक्षर की 9–10 बनावट दिखाई दे सकती हैं।

शब्दों के उच्चारण के मध्य प्रवाह और विराम के लिए भी कुछ चिह्न अपनाए जाते हैं। अरबी भाषा अंगेजी कर्सिव की तरह है अर्थात् अक्षरों को जोड़–जोड़कर, शब्द लगातार एक प्रवाह में लिखा जाता है। यदि शब्द के बीच में कहीं जोर डालने के लिए रुकने का नियम है तो उसे 'सुकून' के चिह्न से अंकित किया जाता है।

अरबी भाषा में 'प' वर्ण न होने से उसका रूपांतरण कर 'ब' की तरह बोला व लिखा जाता है। महाद्वीपीय भोजन 'पिज़्ज़ा' अरबी भाषा में 'बीजा' कहलाता है। अमेरिकी खाने की प्रसिद्ध लड़ी 'पिज़्ज़ा हट' को अरबी भाषा में 'बीजा हत' लिखा जाता है। अरब देशों में खूब बिल्लियाँ होने के बावजूद भी अरबी भाषा में बिल्ली के लिए कोई अपना शब्द नहीं है, इसे 'कैत' कहा जाता है। इसी प्रकार काली-सफेद धारियों वाला जानवर अरबी में भी 'जीबरा' है।

अरब देशों में प्रवासियों के नाम की अंग्रेजी वर्तनी को अरबी में लिप्यांतरण कर लिखा जाता है। वीरेश, अपूर्वा आदि नामों में आए 'व' अक्षर के लिए आजकल एक नए अरबी अक्षर का जन्म हुआ है। 'काफ' के ऊपर दो की बजाय तीन बिंदु लगाकर उसे 'व' पढ़ लिया जाता है। पहले व के लिए फ़ लगाया करते थे।

भारतीयों के संपर्क में कई दशकों से रहने के कारण 'रोटी' शब्द अरबी ने अपना लिया है। 'खुब्ज' को अरबी रोटी और चपाती को 'अल-हिंदिया रोटी' कहा जाता है। हिंदी भाषा की सरलता-सहजता के कारण अरबीभाषी लोग हिंदी को शीघ्रता से अपना लेते हैं, इससे भी कुछ शब्द अरबी भाषा में घुल गए हैं। मुद्रा को 'रुपया' कहना भी आम है और स्वागत के लिए 'नमस्ते'भी। अरबी लोग पूछते हैं- 'हिंदी मालूम?' और 'हाँ' में गर्दन हिलती देख हिंदी में बात आरंभ कर देते हैं।

अरबी से हिंदी में अवतरित इन सभी शब्दों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। एक, जिनके लिए कोई ठीक हिंदी अनुवाद मौजूद नहीं और दूसरे वे, जिनके लिए पर्याप्त हिंदी शब्द उपस्थित हैं। ऐसे ही कुछ अरबी शब्द कोष्ठक में हिंदी समानार्थक इस प्रकार हैं-

गायब (अदृश्य), शराब (मदिरा), मौत (मृत्यु), हादसा (दुर्घटना), अक्ल (बुद्धि), अजीब (विचित्र), आईना (दर्पण), इंतजार (प्रतीक्षा), औरत (स्त्री), कुर्बानी (बलिदान/त्याग), जवाब (उत्तर), जुर्माना (दंड), तरकीब (उपाय), तरक्की (प्रगति), दंगा (संक्षोभ/विप्लव), दिमाग़ (मस्तिष्क), मदरसा (विद्यालय), अंगूर (द्राक्षी), अंदर (भीतर), अक्सर (प्रायः), अगर (यदि), अदालत (न्यायालय), अफसोस (शोक), अमीर (धनवान), असली (विशुद्ध), आजाद (स्वतंत्र/उन्मुक्त), आराम (विश्राम), आवाज (ध्वनि), आशिक (प्रेमी), आसमान (गगन), आसान (सरल), आहिस्ता (मंद/धीमा), इलाज (उपचार), कम (अल्प), करीब (निकट), कलम (लेखनी), कागज (कागद), कानून (विधि), काफ़ी (पर्याप्त), किस्सा (उपकथा/किवदंती), कुल (सकल/योग), कोशिश (प्रयास), खत्म (समाप्त), खरीद (क्रय), खाली (रिक्त), खिलाफ (विरुद्ध), खून (रक्त), खुद (स्वयं), खुश (प्रसन्न), गंदा (मलिन), गरम (तप्त), गरीब (निर्धन), गलत (दोषपूर्ण), आदि।

ऐसे ही चश्मा (ऐनक), चेहरा (वदन), ज़हर (विष), मकान (आलय), शादी (विवाह), हुकूमत (शासन), लेकिन (किंतु/परंतु), शुक्र (आभार),ज़ाहिर (व्यक्त/प्रकट), हासिल (प्राप्त), रूबरू (प्रत्यक्ष), मुजरिम (अपराधी), आदमी-औरत (पुरुष-स्त्री), उम्र (वय), क़िस्मत (भाग्य), क़ीमत (दाम), किताब (पुस्तक), अर्श (नभ), आखिर (अंत/अंतिम), शहीद (बलिदानी), शैतान (राक्षस), ईनाम (पुरस्कार), फन (कला) आदि भी हिंदी में अपना पर्याय पाते हैं।

अरबी भाषा के कुछ शब्द हिंदी में अपना रूपांतरण नहीं ला पाए। 'आलू', 'आलू बुखारा', 'कद्दू', 'जलेबी', 'हलुआ', 'शरबत', 'कोफ्ता', 'आवारा', 'कुर्ता' आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो हिंदी भाषा में रच-बसकर अब आगत नहीं रहे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य भी शब्द हैं जिनका हिंदी तर्जुमा उतना उपयुक्त नहीं बन पड़ा है और वही अर्थ देने में असमर्थ है। उदाहरण के लिए, 'कमीज' को 'अंगरखा' कह देने से बात नहीं बनती क्योंकि अंगरखा एक विशिष्ट प्रकार का परिधान है और कमीज से उसकी बनावट की तुलना नहीं हो सकती।

'कुर्सी' को 'आसन्द' या 'मंचिका' कह देने से वह किसी की भी समझ से बाहर हो जाएगी। 'मेज' को 'चौकी' नहीं कहा जा सकता। चौकी का एक अलग ही चित्र प्रस्तुत होता है हमारे मानस-पटल पर, जिस पर बही रखकर जमीन पर आसन लगाकर बैठा जाता है या आसन पर बैठ चौकी पर भोजन परोसा जाता है। कुर्सी-मेज का हिंदी में पर्याप्त शब्द के अभाव का कारण भी हमारी संस्कृति से जुड़ा है। पर्यावरण संरक्षण से प्रेरित हमारी परंपरा में मूढ़ा और पीढ़ा तो होते हैं, जो बेंत से बने हुए होते हैं परंतु कुर्सी-मेज का चलन बाद में ही शुरू हुआ।

ऐसा ही एक और शब्द 'खराब' है जिसका कोई हिंदी पर्याय उपलब्ध नहीं है। विगुण या जुगुप्स कहने से खराब का बहुत वीभत्स रूप समझ आता है। 'गिरफ्तार' को 'आसेध या प्रग्रहण' कहने से चित्र ही उपस्थित नहीं होता। 'दुकान' को विक्रयालय कहने से वह बात नहीं आती। 'गनीमत' शब्द का कोई हिंदी विकल्प हम नहीं पाते। 'सलाम' शब्द के साथ ही सलाम की क्रिया भी निहित है अतः इसे 'नमस्ते' से बदला नहीं जा सकता। 'नमस्ते' की अपनी एक क्रिया है जो 'सलाम' से सर्वथा भिन्न है।

अरबी के समान ही तुर्की भाषा के कुछ शब्द भी हमारी रोज की बोलचाल का हिस्सा हैं। बहादुर, कुर्ता, कैंची, चाकू, चम्मच, बीबी, बारूद, लाश जैसे शब्द आगत शब्द हैं। ये इस प्रकार आए और हिंदी गृह में घुस बैठे कि इनके बिना हिंदी की कल्पना बेमानी है। हिंदी-अरबी भाषा का प्रगाढ़ अंतर-संबंध अपृथकनीय बन चुका है।

दुबई, यू.ए.ई.
मो.-+971504270752

हिंदी और डच : एक आपसदारी

– रामा तक्षक

वर्ष 2019, नीदरलैंड्स में भारतीय राजदूत श्री वेणु राजामणि द्वारा एक पुस्तक लिखी गई थी। यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी गई है। नीदरलैंड्स में इस पुस्तक के विमोचन के आयोजन में मुझे भी आमंत्रित किया गया था। इस पुस्तक का शीर्षक है व्हॉट वी केन लर्न फ्राम द डच अर्थात् 'डच से हम क्या सीख सकते हैं।' यह पुस्तक, एक उदाहरण है कि किस तरह से मानव एक-दूसरे की समझ से जीवन को सँवार और समाज का पोषण कर सकता है। एक-दूसरे के अनुभवों की समझ, विश्व के एक सिरे से विश्व के दूसरे छोर पर काम आ सकती है। यह सीख की भावना हर किसी के मन में रहती है। ऐसी ही भावना भारतीयता के प्रति डच लोगों में भी देखी जाती है।

भारत से डच लोगों का सम्बंध भी बहुत पुराना है। व्यापार की ललक में, अंग्रेजों की भांति डच व्यापारी कोर्नेलिस द हार्टमैन का नाम भारत के इतिहास में मिलता है।

डच भाषा में लिखी पुस्तक डी वर्बोगन वेयरेल्ड में इस पुस्तक के लेखक जॉस गोमन्स लिखते हैं कि 1550 से भारत और नीदरलैंड्स के सम्बंध रहे हैं। वे आगे लिखते हैं 17 वीं शताब्दी में भारत और डच के बीच आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बंध अपने चरम पर थे। इस काल में, भारत के केसुदास और कूंची के धनी डच चित्रकार रेमब्रांट वान राइन के चित्रों में एक गहन कलात्मक संवाद भी देखने को मिलता है।

एक अन्य पुस्तक का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इस पुस्तक का नाम टोक कोली गेमेक्टन है। यह डच भाषा में लिखी गई है। इस पुस्तक के लेखक भारतीय मूल के आर भगवान बली हैं। वे बहुत अच्छी हिंदी भी बोलते हैं। इस पुस्तक के विमोचन व विमर्श के अवसर पर पुस्तक के लेखक को सुनने का मौका मिला। यूँ तो गिरमिटिया जीवन पर बहुत पुस्तकें लिखी गई हैं। इसी दिशा में यह एक नई पुस्तक है। जो गिरमिटिया जीवन की शुरुआत के नए राज खोलती है। आर भगवान बली इस डी टोट कोली गेमेक्टन पुस्तक में, आर्काइव के पन्नों तक पहुँच बनाकर, अंग्रेज और डच सरकार की मिलीभगत का रहस्य खोलते हैं। यह पुस्तक भारतीय मजदूरों के सूरीनाम आगमन का कच्चा चिट्ठा पढ़ने और इन मजदूरों के जीवन के इतिहास को जानने का सुंदर स्रोत है। इस पुस्तक का आधार डच और अंग्रेज सरकार की आर्काइव से मिली तथ्यगत जानकारी है। भारतीय मजदूरों के भारत से प्रस्थान के समय पंजीकरण की जानकारियाँ आँख खोलने वाली हैं। इन भारतीय मजदूरों के पंजीकरण में लिखा है कि सभी रोजगारशुदा हैं। कोई अध्यापक है। कोई नर्स है, कोई पटवारी है। यानी इन मजदूरों में कोई भी ऐसा नहीं है जो भारत से सूरीनाम जाते समय बेरोजगार हो।

गिरमिटिया मजदूर पाँच बरस बाद भारत न लौटें, इसके लिए डच सरकार ने मजदूरों को छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े देकर मालिक बना दिया।

यह सब जानकारी मुझे 28 मार्च 2021 को सरनामी हाऊस की पार्टी में मिली। मैं भी सपत्नी आमंत्रित था। मुझे भी मंच पर बोलने का मौका दिया गया। मैंने कहा 'डच में बोलूँ और गड़बड़ हो जाए तो बुरा मत मानना।'

'मेरा उच्चारण कहीं बेतरतीब हो सकता है।'

'आप हिन्दी में बोलो' आयोजक से उत्तर मिला। मैंने संक्षिप्त वक्तव्य हिन्दी में ही दिया।

इस आयोजन की थीम का हिस्सा सोद्देश्य भारत यात्रा भी था। सूरीनाम से नीदरलैंड्स में आ बसे भारतवंशी अपने पुरखों के गाँव, परिवार, जमीन की तलाश में कितने सक्रिय और आतुर हैं। इस तथ्य की झलक इस आयोजन में मिली।

इस आयोजन में कुछ ऐसे लोगों से व्यक्तिगत रूप से भी मिलना और बातचीत करना सम्भव हुआ। इस बातचीत में कई तथ्य सामने आए। जिनमें से एक तथ्य यह है कि जिन गिरमिटिया मजदूरों की चौथे पाँचवीं पीढ़ी का जन्म सूरीनाम में हुआ है। जबकि वे नीदरलैंड में आ बसे हैं। ये भारतवंशी जब पहली बार भारत की धरती पर हवाई

डच भाषा के अध्येता, लेखक

जहाज से उतरते हैं। भारत की धरती पर पैर टिकाने पर, उन्हें आत्मीयता का एक अविस्मरणीय अनुभव होता है। भारत यात्रा का आयोजन करने वाली एक महिला ने बताया कि जब मैं पहली बार भारत की धरती पर उतरी तो मेरे कन्धे ढीले हो गए।

एक दूसरे भारतवंशी ने कहा कि मुझे इतना सुकून मिला। मुझे लगा 'मैं अपने घर आ गया हूँ।'

इस आयोजन से पहले सूरीनाम में जन्मे भारतवंशी राजमोहन व उनकी पत्नी मालती मेरे घर पर आए थे। उन्होंने भी बातचीत के दौरान यही सब कहा था। राजमोहन भोजपुरी के संगीतज्ञ हैं। सूरीनाम में उनकी लोकप्रियता स्वाभाविक है लेकिन भारत में भी उनकी लोकप्रियता कमतर नहीं है।

इस पुस्तक विमोचन के समय एक युवक असित शिवमंगल से भी मेरा परिचय हुआ। इनका जन्म भी सूरीनाम में हुआ है। वे इस समय नीदरलैंड्स में रहते हैं। उनसे बातचीत करने पर पता चला कि वे अपने परदादा के जन्म स्थान को भारत में ढूँढ़ना चाहते हैं।

एक अन्य पुस्तक है तेरूग नार मिज्न रोटी लेखक रामोन ब्यूक शीर्षक है 'रोटी की ओर वापसी।'

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यह पुस्तक एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है जिसका हिंदी से कोई लेना-देना नहीं है। वह केवल सूरीनामी है। भारतवंशी भी नहीं है लेकिन एक सतत् और गहन जिज्ञासा इस पुस्तक के शीर्षक से ही लग जाती है।

यहाँ अमृता शेरगिल की जीवनी पर लिख देना भी तर्कसंगत है। वे हंगरी में पैदा हुई थीं। पेरिस फ्रांस में पली-बढ़ी थीं। अमृता शेरगिल ने अपने दोस्तों को कहा 'मेरा जन्म कहीं भी हुआ हो। मैं कहीं भी पली-बढ़ी हूँ। देश तो मेरा भारत ही है।' यह सुन सब दोस्त चौंक पड़े थे।

इन विभिन्न स्तरों पर बने सम्बधों से ही एक भाषा के शब्दों की आवाजाही दूसरी भाषा में होती है। शब्दों की आवाजाही जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक भाषाओं का आपसी अंतर-संबंध होगा।

डच भारोपीय परिवार की जर्मन शाखा से जन्मी और जर्मन और अंग्रेजी भाषा से पल्लवित भाषा है। नीदरलैंड के अतिरिक्त डच भाषा बेल्जियम के उत्तरी आधे भाग में, फ्रांस के नार्ड ज़िले के ऊपरी हिस्से में व इसके अतिरिक्त यूरोप के बाहर डच सूरीनाम, न्यूगिनी आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा में रहनेवाले डच नागरिक भी अभी तक अपनी डच मातृभाषा को अपनाए हुए हैं। दक्षिण अफ्रीकी यूनियन राज्य में भी बहुत से डच मूल के नागरिक रहते हैं और उनकी भाषा भी डच भाषा से बहुलांश में मिलती-जुलती है। यद्यपि डच एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित हो गई है।

जैसा कि पहले लिखा डच, पश्चिमी जर्मनिक भाषा समूह का हिस्सा है, जिसमें अंग्रेजी, स्कॉट्स , सियाई , लो जर्मन (ओल्ड सैक्सन) और हाई जर्मन भी शामिल हैं। इसकी विशेषता कई ध्वन्यात्मक और रूपात्मक नवाचार हैं जो उत्तर या पूर्वी जर्मनिक में नहीं पाए जाते हैं।

यहाँ डच और हिंदी भाषाई स्तर पर डच भाषा के कुछ शब्दों को रेखांकित करना बहुत समीचीन और उचित जान पड़ता है। सबसे पहले डच गिनती के कुछ अंक हम देखें तो वे उच्चारण और अर्थ की दृष्टि से संस्कृत व हिंदी के बहुत निकट प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ-

डच शब्द	**उच्चारण**	**संस्कृत**	**हिंदी**
Een	ऐन	एक:	एक
Twee	ट्वे	द्व	दो
Drie	द्री	त्रि	तीन
Zes	जेस	षष्ठ	छ:
Zeven	जेवन	सप्तम	सात
dht	आख्ट	अष्ट	आठ
Negen	नेघन	नवम	नौ
Zestig	जेस्टिख	षष्ठी	साठ
Eenentwintig	ऐनएनट्वींटख	एकाविंशति	इक्कीस
Tweeentwintig	ट्वेएनट्वींटख	द्वाविंशति	बाईस
Negenentwintig	नेघनएनवींटख	ऊनत्रिंशत्	उनतीस
Negenennegentig	नेघन एननेघंटख	नवनवति	निन्नानवे

संक्षेप में यह बताना भी आवश्यक है कि गिनती के क्रम में इक्कीस से उनतीस, इकत्तीस से उनतालीस तक और इसी तरह से इकतालीस से उनचास से लेकर, इक्यावन से उनसठ से आगे, इकानवे से निन्नानवे तक इसी क्रम में बोला और लिखा जाता है। गिनती के इस क्रम में लिखे जाने से डच भाषा पर परोक्षत: संस्कृत भाषा का प्रभाव स्पष्टत: दिखाई पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट है कि भारोपीय परिवार की यह भाषा जर्मन भाषा से प्रभावित है और जर्मन भाषा संस्कृत भाषा से प्रभावित रही है।

कुछ अन्य शब्द –

डच शब्द	उच्चारण	संस्कृत	हिंदी
Deken	डेकन	तूलिका	ओढ़ने की वस्तु /रजाई
Dekken	डेक्कन	-----	ढकना
(tafel dekken	टाफल डेक्कन		मेज पर मेजपोश बिछाना)
Naam	नाम	नामः	नाम
Man/Mannen (बहुवचन)	मान	मानव	आदमी
Man	मान	----------	पति
Ga	खा	गमन	जाना
Kamer	कामर	कक्ष	कमरा
Pyzama	पिजामा	------	पायजामा
Oog	ओख	अक्षु	आँख
Tand	तांद	दंत	दाँत
Moed	मूढ (साहस)	मुष्टि	मुट्ठी
Nagels	नाखल्स	नख	नाखून
Nee	ने	ना	नहीं
Neus	न्ओज	नाशिका	नाक
Suiker	साउकर	शर्करा	शक्कर
Pad	पाद	पथ	पथ, मार्ग
Wagen	वाखन	वाहनं	वाहन
Takken	टाक्कन	शाखा	टहनी
Maat	माट	मापन	माप
Nieuwe	न्यूव	नव	नया
Bond	बोंड	बंधन	बाँधना
Sweet	स्वेट	स्वेद	पसीना
Deur	ड्यूर	द्वार	दरवाजा
Staan	स्तान	स्था	ठहरना, खड़े होना।
Weduwe	वेडुवे	वैधव्य / विधवा	विधवा
Zit	जिट	तिष्ठ	बैठना

डच भाषा में हिंदी के कुछ प्रचलित शब्द :

Guroe	गुरु
Karma	कर्मा
Bhagwan	भगवान
Mandir	मंदिर
Poeja	पूजा
Yoga	योखा योग
Yogi	योखी योगी

डच भाषा में, उच्चरित रूपन शब्द का अर्थ है पुकारना यानी स्वरूप को पुकारने, मूलत: व्यक्ति रूप को पुकारने के लिए उपयोग में लाया जाता है। डच भाषा में कुट या क्यूट उच्चारण के साथ, यह शब्द 'योनि' सम्बोधन के लिए उपयोग में लिया जाता है। जो कि जर्मन कंट या कुंट तथा संस्कृत के कुण्ड शब्द का समानार्थी है।

डच लोग बतियाते समय अपनी माँ या किसी अन्य की माँ का सम्बोधन 'मुदर' शब्द से करते हैं। जबकि यदि वे अपनी माँ को कुछ कहना या ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं तो अनौपचारिक रूप से 'मा' शब्द से सम्बोधित करते हैं। ठीक इसी प्रकार फादर (वर्ण का डच भाषा में उच्चारण अंग्रेजी के वर्ण 'एफ' की भाँति करते हैं) औपचारिक सम्बोधन फादर और घर पर, व्यक्तिगत संवाद में, अनौपचारिक सम्बोधन 'पा' कहकर करते हैं। डच 'मा और पा' हिंदी के माँ और पिता शब्द के उच्चारण व सम्बंध सम्बोधन, दोनों ही बहुत निकट व समानार्थी हैं।

डच भाषा का ओमा शब्द, दादी व नानी के सम्बोधन के लिए प्रयुक्त होता है। शब्द की ओ ध्वनि यहाँ गुरुतर की ओर संकेत है। ठीक इसी तरह डच भाषा में ओपा सम्बोधन में ओ गुरुतर की ओर संकेत है। ओपा शब्द दादा व नाना को सम्बोधित करते समय उपयोग में लाया जाता है।

इतिहास को देखें तो हमें पता चलता है कि :– सर्वप्रथम मछलीपट्टनम में 1602 में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। भारत में डच उपस्थिति 1605 से लेकर 1825 तक उपस्थिति रही। इस काल में भारत और डच के बीच बहुत कुछ घटा।

ऐतिहासिक घटनाओं को देखें तो 1658 में कोलम 1663 में कोच्चि को पुर्तगालियों से हथियाया। बाद के वर्षों में, 1741 में, कोलाचेल युद्ध में, दक्षिण भारत के राजा मार्तण्ड वर्मा के हाथों डच ईस्ट इंडिया कंपनी को हार का मुँह देखना पड़ा।

अंग्रेजों का अनुकरण कर, 20 मार्च 1602 में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के समय एम्सटर्डम व्यापारिक केंद्र था। भारत से मूलत: सूती व रेशम के कपड़ो, मसालों, नील व बारूद आदि का व्यापार होता था। 17 वीं शताब्दी में, भारतीय मसालों के व्यापार मामलों में डच का एकाधिकार था।

यह व्यापार समुद्र मार्ग से होता था। जिन जहाजों से डच ईस्ट इंडिया कंपनी भारत से व्यापार करती थी। उन जहाजों का नाम आद्रीकेम हुआ करता था।

सर्वप्रथम पीटर आद्रीकेम डच ईस्ट इंडिया कम्पनी के सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त होकर भारत पहुँचे थे। डच लोग लम्बी योजना बनाने और उन योजनाओं की क्रियान्विति में दक्ष रहे हैं। आद्रीकेम आगरा भी आए थे। आगरा आगमन पर अफजल ने आद्रीकेम से कहा था कि मुगल शासक से यदि बात करनी है तो आपको हिंदुस्तानी में बात करनी पड़ेगी। कहते हैं यह सुनकर, आद्रीकेम ने मुगल शासक से

हिंदुस्तानी में ही बात की थी। डच अपने साथ सदैव दुभाषिया भी रखते थे।

आद्रीकेम के बाद जोशुआ केटलर भारत में डच ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रतिनिधि बनकर आया। यह घटना आद्रीकेम के कोई पचास वर्ष बाद घटी। इस समय बहादुर शाह जफर का शासन था। केटलार एक ऐसा विद्वान था जिसने हिन्दी भाषा का यानि हिन्दुस्तानी भाषा का पहला व्याकरण लिखा था। यह 1658 में लिखा गया था। इस व्याकरण के लिखे जाने का एकमात्र उद्देश्य डच ईस्ट इंडिया कंपनी में काम करने वालों और भारत से व्यापार करने वालों डच व्यापारियों के लिए था। ताकि व्यावसायिक कार्य अबाधित चलते रहे।

आपको यह भी पता होगा कि नीदरलैंड बहुत लंबे समय तक स्पेन के कब्जे में था। यहाँ पर कैथोलिक धर्म प्रचलित था। स्पेन का यहाँ पर सीधा शासन नहीं था। बल्कि बेल्जियम में एक प्रतिनिधि स्पेन के शासक का होता था। बेल्जियम से ही डच भूभाग पर सत्ता का नियंत्रण होता था। नीदरलैंड्स में कैथोलिक धर्म के चलते। डेसीडेरियस एरासमुस के प्रयासों से प्रोटेस्टेंट धर्म का उदय हुआ। इस परिवर्तन से मुक्त व्यापार को बहुत बढ़ावा मिला।

केटलार के बाद एक अन्य व्याकरण लिखा गया। जिसे फ्रांकोइस मेरी ने 1704 में लेटिन भाषा में लिखा था। केटलार के पहले हरबर्ट द यागर का वर्णन भी पढ़ने को मिलता है। वे भी डच ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी थे। उन्हें कोरोमंडल भेजा गया था। उन्होंने संस्कृत तो सीखी ही और साथ ही तमिल, तेलुगु भी सीखी। हरबर्ट द यागर का कहना रहा है कि संस्कृत एक वर्ग विशेष की भाषा है। ब्राह्मणों की भाषा है। वे छत्रपति शिवाजी से भी मिले थे। यह मिलन 1677 में बीजापुर में हुआ था।

हरबर्ट द यागर के भी पहले अब्राहम रोड्रिग्स (1630-1667) एक पादरी थे। वे भारत में लगभग सोलह-सत्रह बरस रहे। इन वर्षों के दौरान उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। उन्होंने न केवल संस्कृत का बल्कि भारतीय संस्कृति व भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने के लिए भी गहरी रुचि दिखाई। उन्होंने भारतीय रीति-रिवाजों सहित धर्म, पूजा पद्धति आदि का भी अध्ययन किया।

उन्होंने वापस यूरोप जाकर संस्कृत का बढ़-चढ़कर प्रचार-प्रसार किया। वह पहले ऐसे विद्वान थे जिन्होंने चारों वेदों के बारे में भी यूरोप के लोगों को जानकारी दी। उन्होंने भर्तृहरि के बैरागी और नीति का भी डच भाषा में अनुवाद किया।

आपको ज्ञात होगा कि हेक्टर मुनरो के नेतृत्व में 1764 में बक्सर का युद्ध हुआ था। मीर कासिम मुगल शासक शाह आलम का सेनानायक था। इस लड़ाई में अंग्रेजों की विजय हुई थी। इस विजय के बाद 1784 में कोलकाता में, एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की गई थी। इसका श्रेय विलियम जोंस को जाता है।

इस सोसाइटी का उद्देश्य प्राच्य विद्या को केन्द्र में रखकर किया गया था। एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका भी प्रकाशित होने लगी। इस पत्रिका के छपने से एक बहुत बड़ा लाभ हुआ। इस पत्रिका में, संस्कृत भाषा का और संस्कृत साहित्य का उल्लेख हुआ। संस्कृत साहित्य के इस उल्लेख ने, संस्कृत भाषा के लिए, संस्कृत साहित्य के लिए जिज्ञासा का एक नया सोपान खोला। यूरोप के विश्वविद्यालयों के विद्वानों तक संस्कृत साहित्य की बात पहुँची। विलियम जोंस ने अभिज्ञान शाकुंतलम् का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया।

एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में छपे आलेखों पर, खासकर संस्कृत के विश्लेषणात्मक आलेखों में जर्मनी के मैक्समूलर ने बहुत गहरी जिज्ञासा दिखाई थी। उन्होंने वेदों पर तथा धर्म ग्रन्थों की समझ को समेटते हुए 'द सेक्रेड बुक ऑफ ईस्ट' लिखी। साथ ही मैक्समूलर ने ऋग्वेद का संस्करण भी प्रकाशित किया। यह सब संस्कृत के प्रचार प्रसार में पश्चिम की एक बहुत बड़ी देन मानी जाती है

विलियम जोंस व विल्किन्स को इण्डोलोजी का, भारतीय विद्या का जनक माना जाता है। हेक्सलेडेन का योगदान भी अनुकरणीय है। उन्होंने संस्कृत का यूरोपीय भाषा में पहला व्याकरण लिखा था।

संस्कृत भाषा एवम् साहित्य के प्रचार प्रसार में हेन्दरिक कास्पर केर्न का योगदान भी उल्लेखनीय है। वे एक वर्ष के लिए भारत भी आए थे। उन्हें लाइडेन विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें संस्कृत के साथ-साथ पाली भाषा का भी ज्ञान था। प्रोफेसर केर्न ने डच संसद में, इस बात के लिए भी पुरजोर माँगकर प्रस्ताव रखा था कि लाइडन विश्वविद्यालय में संस्कृत पीठ की स्थापना हो।

एलब्रेक्ट वेबर केर्न के गुरु थे। उन्होंने वाराहमित्र की वृहत संहिता पर भी काम किया था। इसके साथ साथ प्रोफेसर जोहन हाउसिंगा भी बनारस आए थे। उन्होंने संस्कृत नाटकों पर गहन काम किया था।

प्रोफेसर केर्न जब लाइडेन यूनिवर्सिटी में संस्कृत पढ़ा रहे थे। उस समय जैकोब सेमुअल भी उनके छात्र थे। जैकोब समुअल की बौद्ध धर्म समेत भारतीय दर्शन में गहरी रुचि थी।

इस तरह धीरे-धीरे लायडन विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रचार-प्रसार हुआ और यही प्रचार-प्रसार यूरोप के अन्य विश्वविद्यालय में भी फैला।

जैकोब सेमुअल के बाद आगे चलकर जे पी वोगल एम्सटर्डम विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक बने। 1930 के दशक में

लायडेन विश्वविद्यालय में हिंदी भी पढ़ाई जाने लगी। जे पी वोगल ने प्रेमचंद की 'सप्त सरोज' का भी डच में अनुवाद किया। उपरोक्त सभी तथ्यों ने हिंदी भाषा के लिए आधार बनाया।

नीदरलैंड्स में लायडेन वि.वि. बहुत पुराना है। आइंस्टाइन भी यहाँ पड़े हैं। यह जानकारी रुचिकर है कि लायडेन विवि में पड़े करीब दस विद्वानों को नोबेल पुरस्कार मिला है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना अस्सी बरस के युद्ध के ठीक बाद हुई थी। युद्ध की जीत की खुशी में, 1575 में लायडेन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। यहाँ, जैसा कि मैंने पहले बताया और यह भी वर्णनीय है कि भारत के डॉ. प्रोफेसर मोहन कांत गौतम ने इस विश्वविद्यालय में छठे दशक से एन्थ्रोपोलोजी विषय को पढ़ाया है। वे भारतीय संस्कृति, साहित्य और यूरोप की जानकारी के जीते जागते पुस्तकालय हैं। अभी हाल ही में मेरे मित्र देवदीप के बेटे मृगांक मुखोपाध्याय ने इसी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य शुरू किया है।

एम्सटर्डम, उटरेक्खट, ग्रोनिंगन, लायडेन इन चारों विश्वविद्यालयों में भारतीय विद्या (इण्डोलोजी) पढ़ाई जाने लगी थी। अब आर्थिक कारणों से भारतीय विद्या की पढ़ाई इन चारों विश्वविद्यालयों में बंद कर दी गई है।

आज से 100 वर्ष से भी पहले रविंद्रनाथ टैगोर सितंबर 1920 में नीदरलैंड्स में आए थे। भारतीयता के प्रति गहरी रुचि के कारण उनको सुनने के लिए लोग दूर-दूर से साइकिलों से आते थे।

महर्षि महेश योगी भी सत्तर के दशक में नीदरलैंड्स आए। व्लोद्रोप गाँव में आकर भारतीय ज्ञान परम्परा को बाँटना आरम्भ किया। उन्होंने लोगों को जीवन में सजगता के लिए ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन सिखाया व संस्था की स्थापना की।

इससे पूर्व आजाद हिंद फौज के तीन हजार सिपाही नीदरलैंड के पश्चिमी तट पर 1943 में रहकर गए हैं।

आजाद हिंद फौज के इन सिपाहियों की कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। यह सब जानकारी एक पुस्तक में दर्ज है। इस पुस्तक का शीर्षक है 'फॉर फ्री इंडिया'। यह करीब चार सौ पचास पृष्ठ की पुस्तक है। इसमें मय तारीख आजाद हिन्द फौज की यूरोप में उपस्थिति का पूरा विवरण है। इसके लेखक हैं मार्टिन बाम्बर। इस पुस्तक का सम्पादन किया है आड नावेन ने। नावेन डच नागरिक हैं। इस पुस्तक को प्राप्त करने के लिए मेरी आड नेवन से लम्बी बात भी हुई। उन्होंने इस पुस्तक की जानकारी के आधार पर बनी डोक्यूमेंट्री फिल्म 'आंदर टाइडन्स' के बारे में भी बताया।

इस पुस्तक में आजाद हिंद फौज की तथ्यगत बातें दर्ज हैं। आजाद हिंद फौज के सैनिकों की फोटो हैं।

सैनिक बैरियर लगाकर खड़े हैं। यहाँ तक की किसी सैनिक की मृत्यु हो गई तो उसके दाह संस्कार की फोटो भी है। अन्य कुछ बहुत रोचक तथ्य हैं। भारतीय सैनिकों से जुड़ी प्रेम की कहानियों को 'आंदर टाइडंस' एक टीवी सीरियल में भी शामिल किया है जिसमें आजाद हिंद फौज के सरदार सुभाष चंद्र बोस की बेटी का साक्षात्कार भी साथ-साथ दिखाया है।

ये सैनिक नीदरलैंड के पश्चिमी तट पर आकर रहे। इनके यहाँ आने का मुख्य कारण था भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र करवाना। सुभाष चंद्र बोस अंग्रेजों के खिलाफ हिटलर की मदद लेना चाहता था। इसलिए ये सैनिक हिटलर की मदद के लिए आए थे। उस समय की स्थिति यह थी कि पूरे विश्व में अंग्रेजों का राज्य था। जापान, जर्मनी और इटली के अलावा विश्व में कोई अन्य सशक्त राष्ट्र न थे। विश्व में सभी जगह अंग्रेजों का राज्य था। जैसा कि आपको पता है कि उनके राज में विश्व में सूर्यास्त नहीं होता था।

आजाद हिंद सैनिकों को नाजियों ने नीदरलैंड्स के पश्चिमी तट की निगरानी का जिम्मा सौंपा था। इससे पश्चिमी तट के किनारे बसे गाँव और शहरों में लोग सतर्क हो गए थे। एक खास बात जो फिल्म में दिखाई गई है कि भारतीय सैनिकों के प्रति स्थानीय लोगों का व्यवहार सामान्य था। मेरी सास ने भी मुझे बताया था कि सैनिकों के पास जाने की सख्त मनाही थी, खासकर लड़कियों पर। कहीं लड़कियाँ भारतीय सैनिकों के प्रेम में न पड़ जाएँ।

हर माता-पिता ने अपनी बेटियों को भारतीय सैनिकों के इलाके में न जाने की सलाह दी थी। मैंने आड नावेन की सलाह पर 'आंदर टाइडंस' टीवी प्रोग्राम देखा। मिस्सड ए प्रोग्राम की तकनीकी के माध्यम से यह देखना सम्भव हुआ। उसमें दो महिलाएँ जो लगभग अस्सी बरस की आयु पाने को हैं। वे अपने पिता से कभी नहीं मिल पाईं। आज भी अपने पिता से मिलने का सपना उनकी आँखों के सामने खड़ा हुआ है। शायद ये दोनों महिलाएँ अभी भी जीवित हैं। ये दोनों महिलाएँ भारतीय सैनिकों की बेटियाँ हैं। जो 1943 में यहाँ नीदरलैंड में आए थे।

25 नवम्बर 1975 में सूरीनाम के स्वतंत्र होने पर लगभग तीन लाख सूरीनामी नीदरलैंड्स आकर रहने लगे। यह संख्या सूरीनाम की लगभग आधी जनसंख्या का हिस्सा था। इनमें से चालीस प्रतिशत हिंदुस्तान सूरीनाम लोग थे यानि भारतीय मूल के लोग थे। इस चालीस प्रतिशत का एक तिहाई द हेग में बस गया। शेष लोग मूलत: एम्सटर्डम, रोटरडैम और उटरेख्ट में बस गये। हिंदुस्तान सूरीनाम के लोगों की इस सघन बसावट का कारण, भारतीय सूरीनाम का इतिहास, भारतीयों का पारिवारिक जीवन, उनकी भोजपुरी हिंदी भाषा और

हिंदू संस्कृति है। द हेग जिले का ट्रांसवाल क्षेत्र 'लघु भारत' के नाम से जाना जाता है। हिंदुस्तान सूरीनाम के इस समूह ने अपनी भाषा, धर्म, संगीत, नृत्य, फिल्म, पहनावा, भोजन और हिंदू त्यौहारों के माध्यम से नीदरलैंड्स में भारतीयता की अमिट छाप छोड़ी है। इस कारण प्रतिवर्ष भारतीय संस्कृति के प्रति मीडिया का ध्यान भी बढ़ता जा रहा है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद भारतीय नागरिकों का नीदरलैंड्स आना शुरू हुआ। इन भारतीय लोगों के आप्रवासन का कारण आर्थिक व पारिवारिक दोनों ही रहा है।

नीदरलैंड्स में इन दो धाराओं में भारतवंशियों का आगमन एक बड़ी घटना है। इन दो धाराओं को एक साथ कई अवसरों पर देखा गया है। चर्चिललान एम्सटर्डम में महात्मा गाँधी की मूर्ति की स्थापना के लिए चंदा इकट्ठा करने के लिए सभी भारतवंशियों ने एकजुट होकर, बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

जैसा कि विदित है कि नीदरलैंड्स में इस समय हिन्दी भाषा की दो धाराएँ हैं यानी भारतीयता की दो धाराएँ हैं। नीदरलैंड में हिंदी का विकास क्रम कुछ एक ऐसी घटना है कि इस विकास क्रम में सूरीनामी भारतवंशियों का बहुत बड़ा योगदान है। उनकी हिन्दी में रुचि आज भी हिंदी की रीढ़ है। होली, दीवाली पर राष्ट्रीय टीवी नेटवर्क पर भी हिन्दी का संगीत सुनाई पड़ता है।

हिंदी परिषद नीदरलैंड ने हिन्दी भाषा के लिए बहुत ठोस काम किया है। यह संस्था 1983 से राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के पाठ्यक्रम को नीदरलैंड्स में पढ़ाती रही है। इस संस्था से कई हजार छात्रों ने प्रमाण पत्र प्राप्त किए हैं। इस संस्था के अध्यक्ष हैं नारायण मथुरा। मुझे ठीक से याद है जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 2017 में नीदरलैंड्स आए थे। उस समय नारायण मथुरा भारतीय तिरंगा लिए हुए होटल के बाहर खड़े थे।

हिन्दी दिवस पर उन्होंने मुझे लिखा था 'मुझे खुशी तब होगी जब हर भारतवंशी हिन्दी में बोलेगा।'

पिछले वर्ष 2021 में भारतीय महिला विश्व सुन्दरी बनी तो एक सूरीनाम हिन्दुस्तानी मित्र ने अपने फेसबुक पर लिखा 'भारत माता की जय।'

इसके अतिरिक्त हिंदी प्रचार संस्था नीदरलैंड्स और हिंदी भाषा समिति की स्थापना क्रमश: 1997 और 2012 में और हुई थी। ओम टी वी भी पच्चीस साल के बाद 2015 में बंद हो गया। ओम टीवी का प्रसारण हर रविवार को होता था। मूलत: इसमें सरनामी भारतवंशियों का योगदान था। डॉ. मोहन गौतम भी इससे जुड़े रहे हैं।

उजाला रेडियो पर हिन्दी अभी भी जारी है। साथ ही राबिन बलदेव सिंह सक्रिय राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने भोजपुरी यानी सरनामी में काव्य संग्रह लिखे हैं। वे सरनामी भाषा का रोमन में व्याकरण भी लिख रहे हैं।

यह तथ्य बहुत ध्यान देने योग्य है कि नीदरलैंड में द हेग स्थित इण्डिया हाऊस, भारतीय राजदूत के आवास पर, गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस पर सूरीनामी भारतवंशियों की उपस्थिति बहुतायत में होती है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने नीदरलैंड प्रवास के दौरान सूरीनामी भारतवंशियों को जोड़ने के लिए बहुत ठोस कदम उठाया था। उन्होंने सभी सूरीनामी भारतवंशियों को 'ओवरसीज सिटीजन ऑफ इण्डिया' का दर्जा दिए जाने की घोषणा की थी।

नीदरलैंड में काफी मंदिर हैं। इनकी संख्या लगभग पचास है। यहाँ मंदिरों में हिंदी पढ़ाई जाती है। विवाह समारोहों का आयोजन मंदिर में होता है। सत्संग होते हैं। मंदिरों में योग और ध्यान की कक्षाएँ निरंतर चलती रहती हैं। यहाँ हिंदी और डच का मिलाजुला रूप सुनने को मिलता है।

यहाँ भारत से आए बहुत सारे पंडित हैं। जिन्होंने हिंदी भाषा के साथ-साथ संस्कृत का अलख भी जगा रखा है। सूर्य प्रसाद बीरे भी सूरीनाम में जन्मे हैं। वे द हेग में आसन मन्दिर के प्रबंधक रहे हैं। उन्होंने जेएनयू दिल्ली में शिक्षा पाई है। उनका प्रयास रहा कि उनकी संतान भारत में गुरुकुल में पढ़े।

हमें संस्कृत पर बहुत संवाद करने की आवश्यकता है। संस्कृत साहित्य के प्रति, भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति पश्चिम का बहुत रुझान है।

भारतवंशियों के घर में भी जब भी कोई धार्मिक अनुष्ठान विवाह कर्मकांड होता है, गृह प्रवेश होता है, हम पंडित के पीछे-पीछे, पंडित जी को मंत्रोच्चारण के लिए बुलाते हैं। आसन बिछाते हैं। मण्डप सजाते हैं। मंत्रोच्चारण सुन विवाह बंधन में बँध जाते हैं। लेकिन संस्कृत की बदहाली ये है कि पंडित जब घर से मंत्रोच्चारण कर, पूजा पाठ के बाद घर से निकल जाए तो हम संस्कृत को भी झाड़ू मार कर घर से बाहर निकाल देते हैं। मैं संस्कृत का पक्षधर इसलिए हूँ क्योंकि संस्कृत में, आज भी और कल भी व्यक्ति में, प्राण फूँकने की क्षमता है। इसमें मानव की और हिंदी भाषा की रीढ़ को सुदृढ़ करने का पूरा साजो सामान है।

नीदरलैंड्स में रहते हुए पिछले कुछ बरसों से साझा संसार मंच के माध्यम से हिन्दी भाषा के पिरामिड को वृहत बनाने के लिए मैं भी सक्रिय रहा हूँ। मुझसे जो बन पड़ा मैं कर रहा हूँ। मेरा प्रयास है प्रवासी भारतीय साहित्य और भारतीय साहित्य की धाराएँ, पास-पास

आ मिल जाएँ। इस हेतु भारतीय ज्ञानपीठ, वनमाली सृजन पीठ दिल्ली के निदेशक लीलाधर मंडलोई और विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे का अभूतपूर्व सहयोग सस्नेह मिल रहा है। अब तक लगभग चार – पाँच सौ प्रवासी साहित्यकारों को जोड़ा जा सका है।

पिछले वर्ष से 'प्रवास मेरा नया जन्म' और 'संस्कृत की वैश्विक विरासत' विषयों पर भी अन्तर्राष्ट्रीय वेबीनारों का आयोजन किया है। साथ ही 'हिंदी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है' तथ्यों पर डॉक्टर जयंती प्रसाद नौटियाल की शोध पर भी आयोजन भी किया।

विगत वर्षों में गर्भनाल पत्रिका ने नीदरलैंड्स में रह रहे हिन्दी के रचनाकारों की रचनाएँ भी प्रकाशित होती रही हैं। इस समय हिंदी लेखन में रामा तक्षक, पुष्पिता अवस्थी, विश्वास दुबे, ऋतु शर्मा, सोनी वर्मा, आलोक पाण्डेय, जिज्ञेश कार्णिक, आस्था दीक्षित, प्रियंका सिंह, राकेश पाण्डेय, महेश वल्लभ पाण्डेय, शिवांतिका श्रीवास्तव, आशीष कपूर, हर्षिता वाजपेयी, शिवांगी शुक्ला, इन्द्रेश कुमार, संतोष कुमार, सुशांत जैन, ममता मिश्रा, शिखा झा आदि सक्रिय हैं।

द हेग स्थित गांधी केंद्र के निदेशक शिवमोहन सिंह भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार हेतु सक्रिय रहे हैं। वे स्वयं भी गजल गायक हैं। इस समय गाँधी केन्द्र के निदेशक कृष गुप्ता भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा व साहित्य की पताका अपने हाथों में थामे हैं। गाँधी केन्द्र में आज भी हिन्दी पढ़ाई जा रही है। इस समय हेम वत्स के बाद डॉ. सोनी वर्मा हिन्दी व संस्कृत विषय की अध्यापिका हैं। गाँधी केन्द्र में इस समय बीस से अधिक छात्र हैं। यह संख्या बढ़ती–घटती रहती है।

हाल ही में विश्वरंग अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका में भी नीदरलैंड्स के लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

नीदरलैंड में हिन्दी भाषा के लिए पुष्पिता अवस्थी का भी योगदान अनुकरणीय है। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। साथ ही एम्सटल गंगा नामक पत्रिका का भी प्रकाशन लम्बे समय से किया है।

भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की 2017 में नीदरलैंड्स की यात्रा ने नीदरलैंड्स व डच सम्बन्धों को नया आयाम दिया है। साथ ही इस यात्रा से जुड़ी एक विशेष घटना यह है कि प्रधानमंत्री ने नीदरलैंड्स में रह रहे सभी भारतवंशियों को एक ओवरसीज 'सिटीजन ऑफ इण्डिया' का दर्जा दिये जाने की घोषणा की थी। यह घोषणा उन भारतवासियों की संतानों के लिए है जो 1873 से 1916 के बीच गिरमिटिया मजदूर के रूप में भारत से सूरीनाम गए थे।

नरेंद्र मोदी ने भारतीय प्रवासियों को सम्बोधन करते हुए कहा था 'का हाल बा।' यह सुनकर हाल तालियों की गड़गड़ाहट से देर तक गूँजता रहा।

नीदरलैंड्स से हिंदी भाषा में प्रकाशित पुस्तकों का विवरण भी आपसे साझा है–

रामा तक्षक : काव्य संग्रह : जब माँ कुछ कहती मैं चुप रह सुनता। उपन्यास : हीर हम्मो (राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा प्रभा खेतान पुरस्कार से पुरुस्कृत)

अनुवाद : भारतीय पत्र (1583–1588) फिल्लिपो सास्सेती द्वारा लिखित Letters Indiane का इटालियन से हिंदी में अनुवाद पुस्तक प्रकाशनाधीन है।

सम्पादन : नीदरलैंड्स की चयनित कहानियाँ। विश्वरंग महोत्सव 2023 में लोकार्पण तय है।

सम्पादन : 'साहित्य का विश्वरंग' त्रैमासिक पत्रिका।

संस्थापक व अध्यक्ष : साझा संसार, नीदरलैंड्स।

पुष्पिता अवस्थी वरिष्ठ प्रवासी साहित्यकार हैं और उन्होंने बहुत सारी पुस्तकें लिखी हैं और हालैंड से एम्स्टल गंगा पत्रिका की सम्पादक हैं। साथ ही वे विश्व हिंदी फाउंडेशन की संस्थापक हैं।

विश्वास दुबे : प्रेम और वाणी : कविता व कहानी संयुक्त संग्रह

सम्पादन : दो काव्य संग्रह : सरहदों के पार खिलते हैं गुल यहाँ और सरहदों के पार सोपान।

ऋतु शर्मा : सह अनुवाद : बंद रास्ते (ज्यां पाल सार्त्र के नाटक नो एक्जिट)

अनुवाद : जानवरों का जानी दुश्मन

नीदरलैंड्स की लोक कथाएँ प्रकाशनाधीन।

नीदरलैंड्स में सूरीनामी भारतवंशियों द्वारा भोजपुरी यानी सरनामी भाषा का घर में बहुतायत में उपयोग होता है। बोलचाल में देशज भाषा के ऐसे शब्द को सुना। ऐसा शब्द कानों में पड़ तो मैं चकित रहा गया था।

मेरी पत्नी और मैं आस्त्रिद व इन्दरसिंह के घर एम्स्टर्डम पहुँचे थे। मई का महीना था। दोपहर के बाद का समय था। हम सब बाहर बैठे थे । साथ ही अंग्रेजी में बात कर रहे थे ताकि सब समझ सकें।

अचानक बादल छँटे तो सूरज चमका। सूरज का चमका देख आस्त्रिद बोली 'अरे घाम आ गया!'

'घाम' शब्द सुनकर, मेरा सिर घूम गया।

यह शब्द आज भी नीदरलैंड में उपयोग में है। राजस्थान में मेरे गाँव

में भी धूप को 'घाम' ही कहते हैं। घाम शब्द 1873 के गिरमिटिया लोगों के भारत से प्रस्थान के समय देश से बाहर गया था। जहाँ-जहाँ भी लोग गए उनके साथ उनकी बोली भाषा भी साथ गई।

हर भारतवंशी सूरीनामी ने अपनी दादी अपने दादा अपने नाना और अपनी नानी से हिंदी में कहानियाँ सुनी हैं। नीदरलैंड में हिंदी भाषा का भोजपुरी स्वरूप उनकी दादा-दादी और नाना-नानी हैं। यूरोप में जन्मी भारवंशियों की नई पीढ़ी के लिए भी यही उक्ति लागू होती है।

सूरीनाम में भी डच राष्ट्रीय भाषा है। वहाँ के वर्तमान श्री संतोखी जी ने राष्ट्रपति चुने जाने पर राष्ट्रपति पद की शपथ संस्कृत में ली।

गिरमिटिया गाथा के 150 वर्ष पूरे होने के अवसर पर, सूरीनाम देश द्वारा आयोजित कार्यक्रम भारत की राष्ट्रपति माननीया द्रौपदी मुर्मू जी मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ।

हमारे पूर्वज (गिरमिटिया लोग) अपने साथ 'राम नाम' को ले गए थे। इस आस्था को अपने साथ ले गए थे। इस राम नाम के साथ एक पूरी संस्कृति को बहुत ही दयनीय परिस्थितियों में रहते हुए भी उन्होंने जीवित रखा। उन्होंने देवनागरी के उच्चारण को भी अपने साथ संघर्षों में भी जीवित रखा। भारतीय संस्कृति को जीवित ही नहीं बल्कि पाला-पोसा। 1975 में सूरीनाम की स्वतंत्रता के पश्चात्, भोजपुरी हिंदी भाषा हिंदुस्तानी सरनामी बनकर, सूरीनाम की राष्ट्रीय भाषा बनी। यही हिंदुस्तानी सरनामी भाषा भारतवंशियों के साथ नीदरलैंड्स में आई। इस तरह भारतीय संस्कृति एक मूल प्रवाह के रूप में नीदरलैंड्स देश पहुँची और इस देश के समाज का महत्त्वपूर्ण अंग या घटक बनी। इसी कारण 'राम मंदिर प्राण प्रतिष्ठा 22 जनवरी 2024' दिवस के अवसर पर नीदरलैंड्स सरकार ने दो डाक टिकट जारी किए हैं। एक डाक टिकट राष्ट्रीय पत्र-व्यवहार के उपयोग के लिए है तथा दूसरा डाक टिकट अंतरराष्ट्रीय पत्रों के लिए। इस अवसर पर नीदरलैंड्स में इन दो डाक टिकट का जारी किया जाना, डच लोगों का भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव का बहुत सुंदर उदाहरण है।

मोहन गौतम का उद्धरण रेखांकित करने योग्य है। वे भारत से 1960 में नीदरलैंड आए थे। वे लायडन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे हैं। उनसे अक्सर बातें होती रहती हैं। वे सूचनाओं के जीते-जागते भंडार हैं।

संतोष चौबे एवं लीलाधर मंडलोई द्वारा सम्पादित 'प्रवासी समकालीन साहित्य' पुस्तक में मोहन गौतम ने लिखा है 'नीदरलैंड्स के विश्वविद्यालयों में, भारतीय संस्कृति संकाय, कटौती के कारण बंद हो गए हैं पर भारतीय मूल्य और मान्यताओं को समझने के लिए संस्कृत, हिंदी भाषा, बुद्ध और हिंदू धर्म के ग्रंथों को अवश्य पढ़ाया जाता है।' एक अन्य जगह मोहन गौतम लिखते हैं 'जोसुआ केटलार ने 1711-13 में सूरत से लाहौर की यात्रा की थी। इन्होंने 1698 में हिंदुस्तानी भाषा का पहला व्याकरण लिखा था, जिसकी पांडुलिपि मेरे पास है।'

दीवाली पर्व को मनाने के लिए भारतवंशी उत्सव का आयोजन का करते हैं। विगत वर्ष 2023 को टाटा कन्सलटेंसी और कई अन्य डच कम्पनियों ने दीवाली उत्सव को एम्स्टलवेन में प्रायोजित किया था। एम्स्टलवेन नगरपालिका की इसमें अहम भूमिका रही। इस उत्सव के दौरान स्टेज पर हिंदी फिल्मी धुनों को उच्चरित करती, थिरकती हुई डच युवतियों ने भी भाग लिया। दीवाली पर ऐसे आयोजन मुख्य शहरों जैसे एण्डहोवन, ग्रोनिंगन, दे हेग और रोटरडम में भी आयोजित किये जाते हैं। इन आयजनों में भारतवंशी कई हजारों की संख्या में उपस्थित होते हैं। आसपास के डच लोग भी आयोजन की झलक लेने अवश्य आते हैं। ऐसे आयोजनों में भारतीय व्यंजनों के बहुत सारे स्टाल लगते हैं। लोकप्रिय भारतीय व्यंजनों के स्टाल पर बहुत लम्बी लाइन लगती हैं।

यद्यपि मैं भाषाविद नहीं हूँ लेकिन लगता है मुझे इस ओर भी अपनी ऊर्जा का उपयोग करना होगा।

एक अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है-

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात्, पहली बार भारतीय लोक सभा अध्यक्ष ने नीदरलैंड्स की यात्रा की। लोकसभा अध्यक्ष श्री ओम बिरला ने अपना वक्तव्य हिंदी में दिया था। इस अवसर नीदरलैंड्स के ऊपरी सदन के अध्यक्ष और वासेनार शहर के महापौर व नीदरलैंड्स की भारत में रह चुकी पूर्व राजदूत भी उपस्थित थी।

डच में बाकरमाट एक शब्द है। यह शब्द बहुत कम उपयोग में आता है। एक बार मेरे ताया ससुर ने भारतीय संस्कृति पर बात करते हुए इस शब्द के साथ टिप्पणी दी।

मुझे बाकरमाट का अर्थ नहीं पता था। मैं यह सब न समझ पाया।

मैंने पूछा इस शब्द का अर्थ पूछा तो मेरे ताया ससुर-मुस्कुराने लगे। अपनी बात के अंत में, उन्होंने वैदिक ज्ञान की बात कहते हुए बाकरमाट का अर्थ समझाया 'भारतीय संस्कृति बाकरमाट है। भारतीय संस्कृति जीवन का पालना है।'

संस्थापक, साझा संसार, नीदरलैंड

हिंदी तथा सिंहली भाषाओं की संरचनागत व्यतिरेकी अध्ययन

– अतिला कोतलावल

विदेशों में हिंदी और विदेशी भाषा के रूप में हिंदी इन दोनों में स्पष्ट अंतर है। वस्तुत: विदेशों में हिंदी का संबंध समाज भाषाविज्ञान से है तो विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का संबंध भाषा शिक्षण से है। किसी भी भाषा का निर्माण अपने देश के भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पक्षों को स्पर्श करता हुआ होता है। जिस भाषा को कोई अपनी मातृभाषा के रूप में बचपन से सुनता है, वह उसे अनायास ही हृदयंगम कर लेता है। उसी भाषा में सुनना, समझना और फिर उसी भाषा में बोलकर अपनी बात को व्यक्त करने की क्षमता विकसित करना एक अनायास और सहज प्रक्रिया है। अत: वह सहज रूप से मातृभाषा की ध्वनियों, शब्दों, वाक्य रचनाओं तथा भाषिक प्रयोगों से परिचित होता है। मातृभाषा के शिक्षण के द्वारा बालक की पूर्व अर्जित भाषिक शक्ति एवं कौशलों को संवर्धित किया जाता है। परंतु अन्य भाषा सीखने वाले को नई ध्वनियाँ, नई शब्दावली, नई वाक्य संरचनाएँ और नये भाषिक प्रयोगों का सामना करना पड़ता है। यह भी सहज है कि कोई अन्य भाषा को सीखने का प्रयास करता है तो वह अपनी मातृभाषा के संरचनात्मक, अर्थगत एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ उसे अपनाने लगता है। परिणामस्वरूप उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार मातृभाषा का प्रभाव अन्य भाषा पर पड़ना स्वाभाविक है। इसे ही भाषा विज्ञान में मातृभाषा व्याघात कहा जाता है ।

इस शोध पत्र में मैं हिन्दी तथा सिंहली भाषाओं का संरचनागत समानताओं व असमानताओं पर प्रकाश डालूँगी। श्रीलंका तथा भारत के आपसी संबंधों का एक लंबा अतीत है। प्राचीन काल से ही दोनों देश सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा आर्थिक आदान-प्रदान के कारण एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े हैं कि आज भी इनका संबंध भाई-भाई जैसा है। इतना ही नहीं जहाँ तक दोनों देशों की भाषाओं की बात आती है सिंहली और हिन्दी का भी काढ़ी लंबा अतीत है जो संस्कृत भाषा प्रधान काल से चला आ रहा है। दोनों भाषाएँ आर्य भाषा परिवार की हैं। दोनों भाषाओं की लिपियों का स्रोत भी एक ही ब्राह्मी लिपि है। दोनों भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा है। अत: व्याकरणिक संरचना और शब्द-भंडार भी इन्हें संस्कृत भाषा से ही विरासत में मिला है।

संस्कृत से निकली सिंहली भाषा श्री लंका के उत्तर और पूर्वी प्रांतों को छोड़कर अन्य सभी प्रांतों में बोली जाती है। सिंहली भाषाविद श्री माटिन विक्रमसिंह के कथन के अनुसार 'सिंहली भाषा की उत्पत्ति तमिल भाषा से नहीं बल्कि हिन्दू आर्य प्राकृत से हुई है। पहले पाली से और इसके बाद संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से इसका विकास हुआ। लेकिन सिंहली भाषा की उत्पत्ति हिन्दू आर्य प्राकृत से ही हुई है। यह वितर्क मान सकते हैं।'

237 ई. पू. में महिंद महाथेर के आगमन से पूर्व ही भारत के लाट राज्य के क्षत्रिय राजा सिंहबाहु के पुत्र विजय का आगमन श्री लंका में हुआ है। कहा जाता है कि उनके साथ सात सौ और लोग भी आए थे और यहीं बस गए थे। आगे चलकर उनसे बसा प्रदेश सिंहल कहलाया और उनकी भाषा सिंहली। राजा विजय के बाद भी कई बार उत्तर के लोग श्रीलंका आए और उत्तर भारत की भाषाओं का संबंध सिंहली से बना रहा । विजय के आगमन से ही इस देश में एक लेखन प्रक्रिया चलती रही इस बात का प्रमाण सिंहली वंश कथाओं में मिलता है। 237 ई. पू. में महिंद महाथेर के आगमन के बाद पूरे देश भर में ब्राह्मी वर्णमाला का प्रसार शीघ्र गति से होने लगा था। कहा जाता है कि कई शतकों तक विकसित होने के बाद यह ब्राह्मी वर्णमाला पहले से उक्त प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए मैं अपने लेख में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीखनेवालों पर व्यतिरेकी विश्लेषण के माध्यम से प्रकाश डालना चाहूँगी। भाषा विकास की दृष्टि से देखें तो प्राकृत, संस्कृत और पालि भाषा के माध्यम से दोनों भाषाओं में अधिक समानताएँ देखने को मिलती हैं। ऐसे होते हुए भी कुछ असमानताएँ भी देखने को मिलती हैं। जब किसी भी भाषा की शिक्षण की बात आती है तो दोनों भाषाओं की संरचनागत असमानताओं को ध्यान में रखकर थोड़ा सचेत होकर उन भाषाओं को आसानी से सीखा जा सकता है।

हिन्दी और सिंहली भाषाओं के ध्वनि / वर्ण रचना

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीखने में सर्वप्रथम हिंदी की अपनी विशिष्ट और अर्थभेदक ध्वनियों पर बल देना पड़ता है। हिंदी ध्वनियों

सिंहली भाषा के अध्येता, लेखक

के उच्चारण में कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो सिंहली भाषा में भिन्न ढंग से उच्चरित होती हैं या जिनसे श्रीलंका के लोग पूरी तरह से अपरिचित हैं।

देवनागरी और सिंहली भाषा की वर्तमान में प्रयुक्त वर्णमाला

स्वर :

अ आ – इ ई उ ऊ ऋ – ए ऐ – ओ औ अं अः

––––

सिंहली वर्णमाला में आनेवाले कुछ स्वर हिन्दी वर्णमाला में नहीं हैं, जैसे कि

––––––––––

सिंहली वर्णमाला में सम्पूर्ण स्वर 18होते हैं जबकि हिन्दी में 13 हैं।

व्यंजन –

क ख ग घ ङ
––––––––
च छ ज झ ञ
––––––
ट ठ ड ढ ण
––––––––––
त थ द ध न
––––––––––
प फ ब भ म
–––––––––

य र ल व
––––––
श ष स ह
–––––––––––––

सिंहली में व्यंजन 42 होते हैं जबकि हिन्दी में 33 हैं।

इनके अलावा हिन्दी वर्णमाला में और कुछ व्यंजन हैं जो सिंहली वर्णमाला के अंतर्गत नहीं आते –

हिन्दी में 2 विशिष्ट व्यंजन हैं। (––––––)

हिन्दी में 4 संयुक्त व्यंजन हैं। (क्ष , त्र , ज्ञ , श्र) सिंहली में ज्ञ / नूतन प्रयोग में होने पर भी, वह अक्षर माला के अंतर्गत नहीं आता।

हिन्दी में कुछ आगत वर्ण भी हैं। (ऑ–अंग्रेजी से, –– ,––अरबी–फारसी से)

हिन्दी और सिंहली भाषाओं की शब्द / पद रचना :–हिन्दी के शब्द या पद संबंधी नियमों को ठीक प्रकार से पहचानने या याद रखने में भी हिंदी सीखनेवाले श्रीलंका के सिंहली लोगों को समस्याएँ होती हैं। किसी एक संज्ञा पद के लिंग, वचन, पुरुष, कारक आदि व्याकरणिक कोटियों के अनुसार अन्य पदों का स्वरूप किस तरह परिवर्तित होता है, इस पर भी ध्यान देना विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी सीखने में आवश्यक होगा।

लिंग –

सिंहली भाषा में तीन लिंग होते हैं। पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग।

सिंहली में चेतन संज्ञाओं का व्याकरणिक लिंग सामान्यत: प्राकृतिक लिंग के अनुरूप होता है और सभी अचेतन संज्ञाओं का लिंग सिंहली में नपुंसक लिंग का होता है।

लेकिन हिन्दी भाषा में दो ही लिंग होते हैं।

पुल्लिंग और स्त्रीलिंग :– हिन्दी में भी बहुधा चेतन संज्ञाओं का व्याकरणिक लिंग प्राकृतिक लिंग के अनुरूप होने पर भी कुछ मनुष्येतर चेतन संज्ञाओं से दोनों जतियों का बोध होता है। पर वे व्यवहार के अनुसार नित्य पुल्लिंग व नित्य स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती हैं। जैसे,

पुल्लिंग–पक्षी, कौआ, चीता, उल्लू, भेड़िया, खटमल इत्यादि।

स्त्रीलिंग–चील, कोयल, बटेर, तितली, मक्खी, गिलहरी, मछली, मैना इत्यादि।

हिन्दी में अचेतन संज्ञाओं का लिंग पुल्लिंग भी हो सकता है, स्त्रीलिंग भी, जिनका निर्धारण बहुत सुस्पष्ट और नियमित नहीं। यहाँ पर विशेष रूप से विदेशियों के लिए लिंग जानना विशेष कठिन हो जाता है। क्योंकि यह बात अधिकांश व्यवहार के अधीन निर्धारित होती है। अचेतन संज्ञाओं के अर्थ और रूप दोनों के अनुसार लिंग निर्धारण करने के लिए कई नियम हिन्दी व्याकरण ग्रन्थों में मिलते हैं। पर ये अव्यापक और अपूर्ण हैं। अव्यापक इसलिए कि एक नियम में जितने उदाहरण हैं उतने ही अपवाद हैं। अपूर्ण इसलिए हैं कि ये नियम थोड़े ही प्रकार के शब्दों पर बने हैं। शेष शब्दों के लिए कोई नियम नहीं हैं।

लिंग संबंधी नियमों में होनेवाली कठिनाइयाँ निम्न उदाहरणों से स्पष्ट होगा।

एक ही प्रकार की ध्वनियों से अंत होने वाले कई शब्दों का कहीं–कहीं लिंग भिन्न होता है। जैसे

खेत (पुल्लिंग) / रात (स्त्रीलिंग)
पानी (पुल्लिंग) / गाड़ी (स्त्रीलिंग)
नमक (पुल्लिंग) / सड़क (स्त्रीलिंग)
मधु (पुल्लिंग) / वायु (स्त्रीलिंग)
गिरि (पुल्लिंग) / हानि (स्त्रीलिंग)
गुलाब (पुल्लिंग) / शराब (स्त्रीलिंग)
मकान (पुल्लिंग) / दुकान (स्त्रीलिंग)

होश (पुल्लिंग) / लाश (स्त्रीलिंग)

गुनाह (पुल्लिंग) / सलाह (स्त्रीलिंग)
चलन (पुल्लिंग) / जलन (स्त्रीलिंग)
जुलूस (पुल्लिंग) / मिठास (स्त्रीलिंग)
आँसू (पुल्लिंग) / दारू (स्त्रीलिंग)
दिया (पुल्लिंग) / डिबिया (स्त्रीलिंग)

एक ही अर्थ के कई अलग-अलग शब्द कभी अलग-अलग लिंग के होते हैं। जैसे –

नेत्र (पुल्लिंग) / आँख (स्त्रीलिंग)
पत्र (पुल्लिंग) / चिट्ठी (स्त्रीलिंग)
विद्यालय (पुल्लिंग) / पाठशाला (स्त्रीलिंग)
पक्षी (पुल्लिंग) / चिड़िया (स्त्रीलिंग)
रास्ता (पुल्लिंग) / सड़क (स्त्रीलिंग)
ग्रंथ (पुल्लिंग) / किताब (स्त्रीलिंग)
चित्र (पुल्लिंग) / तस्वीर (स्त्रीलिंग)
सवेरा (पुल्लिंग) / सुबह (स्त्रीलिंग)
कथन (पुल्लिंग) / बात (स्त्रीलिंग)

कभी यह कहा जाता है कि बड़ी और विशाल वस्तुएँ पुल्लिंग में प्रयुक्त होती हैं और छोटी और मृदु वस्तुएँ स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती हैं। जैसे

पहाड़, पत्थर, आकाश, पाताल, देश, समुद्र, नगर, द्वीप, डाल, पेड़ इत्यादि शब्द पुल्लिंग के हैं, फिर भी सरकार, पुलिस आदि शब्द स्त्रीलिंग के हैं।

नदी, वायु, झील, आँख, लता, बेल इत्यादि शब्द स्त्रीलिंग के हैं, फिर भी फूल, गुलाब आदि पुल्लिंग के शब्द हैं।

निष्कर्ष यह है कि लिंग संबंधी इस व्यवस्था के कारण हिन्दी का अध्ययन अधिक जटिल प्रतीत होता है। विदेशी छात्रों के लिए हमेशा यह एक चुनौती रहती है। क्योंकि आगे की हिन्दी पढ़ाई में जगह-जगह पर व्याकरणिक नियमों का आधार इन्हीं लिंगों पर निर्भर रहता है।

सर्वनाम :- हिन्दी सीखने वाले सिंहली विद्यार्थियों को हिन्दी की सर्वनाम व्यवस्था अधिक सुगम लगती है, क्योंकि सिंहली की सर्वनाम व्यवस्था में सर्वनामों की संख्या सिंहली में अधिक है और प्रयोग भी हिन्दी से अधिक जटिल है। जैसे –

मैं-मम/ मा
हम-अपि/अप
तू-तो / उंब
तुम-तोपि/ नुंब
आप-ओब
यह-मोहु, मेय, मू, मे
वह-ओहु, एय, ऊ, हेतेम, ए
ये-मोवुहु, मेयला, मुन, मेवा
वे-ओवुहु, एयला, उन, एवा
कौन-कवुद (एकवचन) कवुरुन्द (बहुवचन)
जो-एतमेक (एकवचन) एतमहु (बहुवचन)

विभक्ति चिह्न / कारक / परसर्ग

हिन्दी और सिंहली भाषाओं में विभक्ति व्यवस्था में हिन्दी में अधिक सुव्यवस्था है जब कि सिंहली में यह व्यवस्था अधिक जटिल है। फिर भी कहीं-कहीं हिन्दी की ने विभक्ति और संबंध विभक्ति का, के, की के कारण हिन्दी सीखनेवाले विदेशियों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

हिन्दी भाषा में आठ कारक होते हैं।

1. कर्ता कारक (Nominative) - ने
2. कर्म कारक (Objective) - को
3. करण कारक (Instrumental) - से, के द्वारा
4. संप्रदान कारक (Dative) - के लिए
5. अपादान कारक (Ablative) - से
6. संबंध कारक (Possessive) - का, के, की
7. अधिकरण कारक (Locative) - में ,पर
8. संबोधन कारक (Vocative) - हे, अरे

सिंहली लेखन में नौ प्रकार की विभक्तियों की व्यवस्था है –

1. प्रथमा विभक्ति-तेम, तोमो, तुमू, आ, उ, एक, अक, ए, हु, ओ, वल-सिर्फ संज्ञा के साथ
2. कर्म विभक्ति -व
3. करण विभक्ति -विसिन
4. करण विभक्ति -न, मगिन
5. संप्रदान विभक्ति -ट, वेनुवेन
6. अवधि विभक्ति -न
7. संबंध विभक्ति -गे
8. आधार विभक्ति -हि, तुल, मत
9. आलापन विभक्ति-अ, आ, ए, ओ, इनि, इन, उनि, उने, एनि, अनि, नि-सिर्फ संज्ञा के साथ

हिन्दी में कारक संबंधी एक नियम यह है कि किसी भी संज्ञा के साथ जब कारक का प्रयोग होता है तो दोनों अलग-अलग लिखे जाते हैं जबकि सर्वनाम के साथ एक साथ लिखे जाते हैं।

सिंहली में इन दोनों स्थितियों में अधिकतर एक साथ ही लिखे जाते हैं। जैसे –

सर्वनाम के साथ विभक्तियों का प्रयोग :- संज्ञा के साथ विभक्तियों

का प्रयोग

मुझे-मट	**पेड़ पर-गसे**
मुझसे-मगेन	**आदमी को-मिनिसाट**
तुम्हारा-ओयागे	**घर में-निवसे**

सामान्यत: संबंध कारक सहित वाक्यों में उत्तर पद के परिणामस्वरूप पूर्व में आनेवाला संबंध विभक्ति का विकार होता है जबकि सिंहली में इस प्रकार से कोई परिवर्तन विभक्ति चिह्न में नहीं होता। जैसे –

मेरा बेटा - मगे पुता
मेरे बेटे - मगे पुताला
मेरी बेटी - मगे दुव
मेरी बेटियाँ - मगे दुवला

कारक संबंधी सबसे बड़ी समस्या हिन्दी के कर्ता कारक ने के कारण उत्पन्न होती है। सिंहली में ऐसी संकल्पना ही नहीं है, जिसके कारण भूतकालिक सकर्मक वाक्य बनाने में अक्सर विद्यार्थियों को चुनौती का सामना करना पड़ता है।

विशेषण :– विशेषण संबंधी नियम भी सिंहली की अपेक्षा हिन्दी में सीमित हैं। क्योंकि हिन्दी में संज्ञा के अनुसार जहाँ कुछ विशेषणों का विकार होता है तो कुछ विशेषणों का विकार नहीं होता। लेकिन सिंहली में कहीं पर भी संज्ञा के अनुसार विशेषण नहीं बदलता। जैसे

हिन्दी में	**सिंहली में**
अच्छा लड़का	**होंद पिरिमिलमया**
अच्छे लड़के	**होंद पीरिमिलमइ**
अच्छी लड़की	**होंद गहनुलमया**
अच्छी लड़कियाँ	**होंद गहनुलमइ**

हिन्दी में विशेषण संबंधी नियमों में आ स्वरांत विशेषण विकारी होते हैं। यानी ये विशेषण संज्ञा के अनुसार बदलते हैं। जैसे–

अच्छा, बुरा, छोटा, मोटा, पुराना, पतला, ऊँचा इत्यादि ऐसे होते हुए भी कुछ आस्वारांत विशेषणों का संज्ञा के अनुसार विकार नहीं होता। जैसे –

बढ़िया, घटिया, ताजा, ज्यादा इत्यादि
बढ़िया घर
बढ़िया गाड़ी
बढ़िया दावत

हिन्दी में संख्यावाचक शब्द संज्ञा से पूर्व प्रयुक्त होता है, जबकि संख्यावाचक शब्द संज्ञा के बाद प्रयुक्त होता है। जैसे –

दोनों आँखें - एस देक
पाँच घर - गेवल पह
बहुत लड़के - कोललो गोडक

हिन्दी और सिंहली भाषाओं की वाक्य रचना :– हिन्दी और सिंहली दोनों भाषाओं की भाषिक अभिव्यक्तियों के स्वरूप में भी पर्याप्त समानताएँ होने पर भी कहीं–कहीं कुछ असमानताएँ भी देखने को मिलती हैं। दोनों भाषाएँ SOV (subject/object/verb) भाषाएँ हैं। दोनों में मुख्यत: कर्ताप्रधान होता है।

अन्विति हिन्दी वाक्यों में कर्ता या कर्म के साथ क्रिया का, संज्ञा या सर्वनाम के साथ विशेषण का या और कोई पदों के मध्य अन्वय होता है। जब वाक्यों के किसी एक संज्ञा पद के लिंग, वचन, पुरुष, कारक आदि व्याकरणिक कोटियों के अनुसार अन्य पदों का भी स्वरूप निर्धारित होता है, तब इसे अन्विति कहा जाता है। हिन्दी में अन्विति के प्रमुख चार प्रकार हैं –

1) कर्ता, कर्म और क्रिया की अन्विति
(क) कर्ता और क्रिया की अन्विति
(ख) कर्म और क्रिया की अन्विति
2) संज्ञा-सर्वनाम की अन्विति
3) विशेषण-विशेष्य की अन्विति
4) संबंध-संबंधी की अन्विति

इसी अन्विति को सिंहली भाषा में उक्त–आख्यातय कहते हैं क्रिया के करने वाले को 'उक्तय' (कर्ता)कहा जाता है और कर्ता द्वारा की जानेवाली क्रिया को 'आख्यातय' कहा जाता है कर्ता के द्वारा करने वाली क्रिया के अधीन जो वस्तु या प्राणी है, उसे कर्म कहा जाता है। हिन्दी भाषा में कर्ता के अनुरूप ही क्रिया का प्रयोग होता है। इसलिए सिंहली में केवल कर्ता क्रिया अन्विति होती है।

1. कर्ता और क्रिया की अन्विति : – यह दोनों भाषाओं में हैं। यदि वाक्य में कर्ता परसर्ग रहित हो तो क्रिया कर्ता के लिंग, वचन तथा पुरुष के अनुसार बदलता है। जैसे –

रवि पानी पीता है।	**रवि वातुर बोन्नेय।**
सीता खाना बनाती है।	**सीता केम हड़न्नीय।**
हम घर जाते हैं।	**अपि गेदर यन्नेमु।**
मैं काम करता हूँ।	**मम वेड करमि।**

2. कर्म और क्रिया की अन्विति :– हिन्दी में यदि क्रिया परसर्ग सहित है यानी कर्ता के साथ 'ने' अथवा कोई और परसर्ग हो तो क्रिया की अन्विति कर्ता के साथ नहीं होती है। इस स्थिति में कर्म या पूरक के बाद किसी अन्य परसर्ग का प्रयोग न हुआ हो, तो क्रिया की अन्विति कर्म या पूरक के लिंग, वचन तथा पुरुष के अनुसार होती है। लेकिन सिंहली भाषा में हिन्दी भाषा की तरह कर्म और क्रिया की अन्विति नहीं होती। जैसे –

रवि ने दूध पिया।	**रवी किरि बिव्वेय।**
रवि ने चाय पी।	**रवी ते बिव्वेय।**

सीता ने दो आम खाये।	**सीता अम्ब देकक केवाय।**
सीता ने दो रोटियाँ खायीं।	**सीता रोटी देकक केवाय।**

3. निरपेक्ष अन्विति (शून्य अन्विति) :- यदि वाक्य में कर्ता या कर्म दोनों के बाद परसर्ग हो तो क्रिया की अन्विति न तो कर्ता के साथ होती है और न ही कर्म के साथ होती है। इस स्थिति में क्रिया हमेशा क्रिया हमेशा पुल्लिंग एकवचन में आती है। लेकिन सिंहली भाषा में यह अन्विति भी नहीं होती। यहाँ पर भी क्रिया हमेशा कर्ता पर निर्भर रहती है।

अध्यापिका ने छात्रों को पढ़ाया।	**गुरुतुमिय शिष्यन्ट इगेन्नूवाय।**
रवि ने नौकरानी को डाँटा।	**रवी सेविकावट बेन्नेय।**
सीता ने नौकरानी को डाँटा।	**सीता सेविकावट बेन्नाय।**
उसने कुत्ते को मारा।	**ओहु बल्लाट गेहुवेय।**

4. विशेषण-विशेष्य की अन्विति :- हिन्दी में यदि विशेष्य से पहले या बाद में विशेषण का प्रयोग हो, तो अकारांत विशेषण विशेष्य के लिंग तथा वचन के अनुसार बादल जाते हैं। अकारांत विशेषणों को छोड़कर अन्य सभी विशेषण विशेष्य के अनुसार न बदलकर एक समान ही होते हैं। लेकिन सिंहली भाषा में विशेषण शब्द विशेष्य के लिंग तथा वचन के अनुसार कभी नहीं बदलते, विशेष्य के साथ एक समान ही प्रयोग होते हैं।

वह लड़का अच्छा है।	**ए पिरिमिलमया होदई।**
वे लड़के अच्छे हैं।	**ए पिरिमिलमई होदई।**
वह लड़की अच्छी है।	**ए गहनुलमया होदई।**
वे लड़कियाँ अच्छी हैं।	**ए गहनुलमई होदई।**

5. संबंध-संबंधी की अन्विति :- हिन्दी में संबंध कारक लिंग तथा वचन संबंधी के लिंग तथा वचन के अनुसार बदलता है। लेकिन सिंहली में संबंध कारक अविकारी होते हैं इसलिए संबंध कारक लिंग तथा वचन के अनुसार कभी नहीं बदलते।

यह मेरा स्कूल है।	**मेक मगे पासलय।**
यह मेरी माँ है।	**मेय मगे अम्माय।**
ये मेरे गुरु जी हैं।	**मेतुमा मगे गुरुतुमाय।**

सिंहली विद्यार्थियों को वाक्य संरचना में समस्या उत्पन्न होनेवाली कुछ स्थितियाँ इस प्रकार के भी हैं।

1. सिंहली में शक्यार्थ में कर्ता के साथ को का प्रयोग होता है जब की हिन्दी में को का प्रयोग नहीं होता -

हिन्दी में सही	**हिन्दी में गलत**
मैं गीत गा सकती हूँ।	**(मुझे गीत गा सकती हूँ।)**
लड़का नाच सकता है।	**(लड़के को नाच सकता है)**
बहन खाना बना सकती है।	**(बहन को खाना बना सकती है।)**

2. सिंहली में आता, चाहिए क्रिया के साथ कर्ता में को विभक्ति का प्रयोग नहीं होता, जबकि हिन्दी में होता है।

मुझे कार चलाना आता है।
मुझे घर जाना चाहिए।

3. सिंहली में चाहता के प्रयोग के साथ कर्ता में को विभक्ति का प्रयोग होता है, जबकि हिन्दी में को विभक्ति नहीं लगती।

मैं संगीत सीखना चाहती हूँ।
भाई गाड़ी चलना चाहता है।

4. वाक्यों को जोड़ने वाले कि अव्यय का प्रयोग सिंहली में वाक्य के अंत में होता है, जबकि हिन्दी में वाक्य के बीच में इसका प्रयोग होता है -

लोग कहते हैं कि वह महान आदमी है।
मुझे पता है कि कल छुट्टी है।

इस प्रकार सही भाषा शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि त्रुटिविश्लेषण और व्यतिरेकी विश्लेषण के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन करते हुए नई भाषा को सीखनेवाले नवागत छात्रों को शिक्षण बिंदुओं से अवगत कराया जाए और इनका सतत् अभ्यास करवाया जाए।

संस्थापक निदेशक-हिंदी संस्थान श्री लंका
शिक्षिका-स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र,
भारतीय दूतावास, कोलंबो
दूरभाष - 94777448764

बिन जिन भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल

- भारतेन्दु हरिश्चंद्र

मलय व हिंदी का मेल

-संध्या सिंह, सिंगापुर

एक भाषा सिर्फ शब्दों और व्याकरण से बहुत आगे है। यह संस्कृति का प्राण है और उसका शरीर भी। यह वह प्रकाश है जो हमारे ज्ञान के सफर को न सिर्फ प्रकाशित करता है बल्कि विस्तृत भी करता है। हजारों वर्षों से भी अधिक समय से कई भारतीय शब्द जिनकी उत्पत्ति का स्रोत संस्कृत, अरबी और फारसी है, मलय भाषा में अपने अस्तित्व की ओर इशारा करते रहे हैं। भारत से चलकर ये शब्द मलाया क्षेत्र में न सिर्फ पहुँच गए बल्कि धीरे-धीरे उसका हिस्सा हो गए। संस्कृत-हिंदी के अलावा, तमिल, तेलुगु, मलयालम भाषा के शब्दों ने भी मलय भाषा को प्रभावित किया है।

ये तो हम सभी जानते हैं कि भारत-चीन व्यापार एक समय पर अपने चरम पर था पर क्या इस बात से भी अवगत हैं कि वहाँ व्यापारिक मार्ग मलाया प्रायद्वीप को पार करके ही जाना होता था। शायद यही कारण है कि धीरे-धीरे मलाया क्षेत्रों में भारतीय राज्य, भारतीय मूल्य, भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं ने अपना गढ़ बना लिया।

श्री विजया और मजापहित साम्राज्य के विस्तार के साथ ही भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का विस्तार भी हुआ। दक्षिण पूर्वी एशिया के लोगों के जीवन, संस्कृति और परम्पराओं पर हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म ने काफी गहरी छाप छोड़ी है। साम्राज्य की बात हो या कानूनी परम्पराओं की या न्याय देने की, कई चीजों में आज भी मलय संस्कृति और भारतीय संस्कृति एक सी ही है। राजा या श्री महाराजा जैसी पदवी आज भी दोनों संस्कृतियों में दिखती है।

ब्रितानी सरकार मलाया क्षेत्र में राज करने के लिए भारत से ही होकर आई और अपने साथ भारत में प्रचलित कई ऐसे शब्दों, प्रथाओं और संस्कृतियों को साथ लेकर आई जिनका प्रयोग कई स्थानों पर, कानून व्यवस्थाओं में भी किया जाने लगा और ये तो स्पष्ट ही है कि कानून के कई नियम जो ब्रितानियों ने भारत में लागू किए थे वे मलाया क्षेत्र में भी हैं।

भारत में शिशु के जन्म के बाद उसे शहद खिलाया जाता है ताकि उसका जीवन-सफर मधुर रहे और यही रिवाज मलय संस्कृति में भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। भारतीय वैवाहिक रिवाजों की तरह ही मलय शादियों में भी नारियल, सुपारी, फूल आदि महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। शब्दों की बात करें तो एक लम्बी सूची बनती है जैसे गुरु और परी शब्द दोनों ही भाषाओं में समान अर्थ के लिए प्रयुक्त होते हैं। इसी तरह दर्जी, सिपाही या धोबी ये सभी शब्द मलय भाषा में विदेशी शब्दों की श्रेणी में प्रयुक्त हो रहे हैं।

यद्यपि मलय भाषा में संस्कृत भाषा जैसी कोई समानता नहीं है, न लिंग है न लिपि समान है (हाँ, पहले पालवान लिपि से कावी अक्षरों की उत्पत्ति हुई थी) पर इस भाषा में भारतीय भाषाओं के कई शब्द मिल जाएँगे जो राजनीति से लेकर दर्शन शास्त्र या खाने-पीने तक फैले होंगे। कई शब्द हैं जो मलय और हिन्दी में समान हैं।

सिंगापुर आने वाले भारतीयों ने अंग्रेजी या चीनी सीखने के बजाय मलय सीखना आसान समझा तो उसका कारण यही है हिन्दी और मलय में कई शब्द समान हैं। पुतरी (पुत्री), नाड़ी, केपाल, मुख, बाहु, रोम, गुरु, खलासी, दर्जी, चश्मा, परी जैसे जाने कितने शब्द दोनों भाषाओं में एक ही अर्थ के लिए मिल जाएँगे और जब हिन्दी बेल्टवाले यहाँ आए तो इन शब्दों के सहारे मलय भाषा आसानी से सीख ली। धीरे-धीरे मलय भाषा बोलनी तो कम हो गई पर उनके कुछ शब्द पुराने उत्तर भारतीय परिवारों में सिंगापुर की हिन्दी में मिलकर उसका अंग बन गए।

मलय और हिंदी में कई शब्दों को परखने पर उच्चारण की दृष्टि से देखने की जब बात आती है तो स्पष्ट होने लगता है कि हिन्दी का 'भ' मलय का 'ब' है। तो हमारी 'भूमि' मलय की 'बूमि' बन जाती है और 'भाषा' 'बहासा' बन जाती है। और यही 'क' से 'ग' के उच्चारण में भी दिखाई देता है। हिन्दी का 'काजू' मलय भाषा में 'गाजू' है। मलय में किसी को मूर्ख कहना है तो 'बोदोह' शब्द प्रयोग किया जाता जो ध्यान से देखा जाए तो 'बुद्धू' का ही रूप समझ आता है।

नीचे लिखे कुछ ऐसे शब्दों को ध्यान से देखने पर कई समानताएँ स्वत: दिख जाती है। ऐसे शब्दों की लम्बी सूची है जिनकी उत्पत्ति संस्कृत, फारसी या अरबी भाषा से हुई है और उनके थोड़े से बदले उच्चारण सहित मलय भाषा में समान अर्थ के लिए प्रयोग किया जाता है। ये शब्द मलय व हिन्दी भाषा की समानता को दर्शाते हैं-

तालिका-हिंदी और मलय भाषा में मिलते-जुलते अर्थों वाले समान

मलय भाषा की अध्येता, लेखक

शब्द –

मलय-हिंदी	मलय-हिंदी
अंतरा (के बीच)-अंतर	अंगोटा (शरीर का अंग)-अँगूठा
अगर (तो)-अगर	अनेका-अनेक
अनुग्रह (कृपा, सम्मान) अनुग्रह	आडत (प्रथा)-आदत
आलमारी-अलमारी	उंता-ऊँट
कुंजी-कुंजी	कुरसी-कुरसी
काता-कथा	इस्त्री (पत्नी)-स्त्री
गुरु-गुरु	चमचा-चम्मच
चूती-छुट्टी-	कामार-कमरा
किताब-किताब	जसा (यश)-जस
डाना (फंड)-धन	डंडा (जुर्माना)-दंड
नगारा (देश)-नगर	नामा-नाम
नीला-नीला	नराका-नरक
परतामा-प्रथम	पुतरी (राजकुमारी)-पुत्री
पटी-पेटी	पंजारा (जेल)-पिंजरा
बदाम-बादाम	बाचा-बाचना
बहास-बहस	बेंडी-भिंडी
मकलूम-मालूम	महारानी-महारानी
महाराजा-महाराजा	महा-महा
महर्सी-महर्षि-महागुरु	मारमर-संगमरमर
मेडान-मैदान	मुतियारा -मोती
मकोता-मुकुट	माया-माया
मुसिम-मौसम	मुका-मुख
लाता-लता	लायाक-लायक
सहाया- सहायक	सेहात-सेहत
सेनोपति-सेनापति	सिंहा-सिंह
सुची-शुचि	सेलुआर-सलवार
सेगारा-सागर	शैतान-शैतान

ये तो महज कुछ उदाहरण हैं जो हिन्दी और मलय भाषा में समान हैं। इनके अलावा भी संस्कृत, अरबी या फारसी के अनेक शब्द दोनों भाषाओं में मिलते हैं। कई हिन्दुस्तानी परिवार हैं जो हिन्दी शब्दों के बजाय मलय शब्दों का प्रयोग अपनी बातचीत में करते हैं जैसे–भोजपुरी घरों में चम्मच की जगह 'चमचा' शब्द ही आज भी प्रयोग किया जाता है। ऐसा ही एक शब्द है–'कन्ना' जिसका मतलब होता है 'लग जाना' तो चाहे गाड़ी में 'सम्मन' लगे या चोट लगे पुराने भोजपुरी परिवार 'कन्ना रेडी' ही बोलते हुए दिखाई देंगे।

ऐसे ही 'ताहन' शब्द पुराने भोजपुरी परिवारों की भाषा में इस प्रकार समा गया है कि कई बार लोग इसका अच्छे अंग्रेजी वाक्यों में भी प्रयोग करने में जरा नहीं हिचकिचाते। ताहन का मतलब होता है बर्दाश्त करना, पर वहाँ 'केननॉट ताहन' ही सुनाई देगा चाहे गर्मी बर्दाश्त नहीं हो रही हो या किसी का व्यवहार। इन दोनों शब्दों का उदाहरण यह दर्शाने के लिए दिया गया है कि सिंगापुर में बसे पुराने भारतीय परिवार मलय भाषा को आसानी से अपना रहे थे और उन्होंने अपनी मातृभाषा में भी उन शब्दों को इस प्रकार घुला लिया कि आज तक उसकी बानगी सुनी जा सकती है।

संभवत: यही कारण था कि पुराने उत्तर भारतीय परिवारों में मलय भाषा जल्दी सीखी गई। मलय उस समय बाजार की भाषा भी थी और उसे सीखना उत्तर भारतीयों के लिए तुलनात्मक रूप से अधिक सहज था। काफी बाद के समय तक भारत से विवाह कर आने वाली महिलाएँ जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं, या बहुत कम होता था, वे मलयभाषा सीखकर अपना काम चलाती रहीं। सिंगापुर में जब द्वितीय भाषा का शिक्षण आवश्यक हुआ तो प्रारंभ में उत्तर भारतीयों द्वारा मलय ही दूसरी भाषा के रूप में चुनी गई। मलय भाषा में हिंदी के कई शब्द अरबी–फारसी स्रोतों के कारण मौजूद हैं।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ हिन्दुस्तानी सुमदाय ने मलय के प्रति अपना आकर्षण रखा बल्कि मलय लोगो में हिंदी फिल्मों के प्रति गहरा आकर्षण रहा है उसका कारण भी संभवत: कई शब्दों का समान होना हो सकता है। सिंगापुर में हिंदी फिल्मों के प्रति मलय जनसंख्या में काफी दिलचस्पी पहले से रही है। मलय शादियों में बजने वाले संगीत आज भी हिंदी भाषा के प्रति प्रेम को दिखा रहे हैं। कुछ शब्दों और कुछ रिवाजों का सम्बन्ध इस भाषाई सम्बन्ध को अधिक मजबूत ही करता रहा है। सिंगापुर में हिन्दुस्तानी लोगों पर हिन्दी का प्रभाव दिखना लाजमी है पर मलय प्रजाति पर यह रंग इस कदर चढ़ा है कि मलय जाति के लोग इसमें रँगे नजर आते हैं। मलय शादियाँ ज्यादातर आवासीय इमारतों के निचले भूतल वाले क्षेत्र में सम्पन्न होती हैं। अत: बिना निमंत्रण विवाह–समारोह का दर्शन किया जा सकता है। इन शादियों में मलय रिवाजों के साथ एक चीज बड़ी सामान्य दिखती है–गाने बजना व 'काराओके' पर गाने गाना। गीत–संगीत का यह माहौल शुरू ही हिन्दी गानों से होता है और बीच–बीच में मलय गानों के साथ खूब हिन्दी गाने सुनाई देते हैं।

मलय भाषा सिंगापुर, मलेशिया जैसे देशों में मुस्लिम समुदाय द्वारा बोली जाती है और इस भाषा में हिंदी के संस्कृत से आए हुए शब्दों का अभी तक उपस्थित रहना इस बात को दर्शाता है कि ये जड़ें इतनी गहरी और पुरानी हैं कि इन्हें इतनी आसानी से नहीं हटाया जा सकता है। हजार–दो हजार साल पहले से जिन शब्दों ने समाज में अपनी जगह बनाई धीरे–धीरे भले ही उनका प्रयोग कम हो गया हो और अन्य शब्दों ने उन शब्दों का स्थान ग्रहण करना शुरू कर दिया हो लेकिन वे शब्द आज भी पुराने ग्रंथों से लेकर औपचारिक रूप से कई जगह प्रयोग किए जाते हैं। विनीता, इस्त्री, पुत्री, गुरु, जैसे शब्द आम रूप से प्रयुक्त होते हैं। कई शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत न होकर अरबी, फारसी या अन्य विदेशी भाषाएँ हैं लेकिन वे हिंदी और मलय में समान रूप से प्रयुक्त हो रही हैं जैसे साबुन, दुनिया, सब्र आदि। इस तरह के भाषाई संबंध से दोनों भाषाओं को दृढ़ता ही मिल रही है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सिंगापुर
नेशनल यूनिवर्सिटी, सिंगापुर

'अक्षरा' दिसंबर 2023 का संपादकीय पढ़कर आपके अध्ययन की गहनता, चिंतन की संप्रेषणीयता, तथ्यों की तार्किकता, समालोचना की संदेशात्मकता और अभिव्यक्ति की अनुपमता के साथ-साथ प्रस्तुति की प्रवीणता से मैं अभिभूत हो गया। आपने देवीप्रसाद मिश्र जी की (आलोचना के अक्टूबर-दिसंबर 1989 के अंक में प्रकाशित) कविता के बारे में बेबाक विश्लेषण किया है। अटल बिहारी जी वाजपेयी की कविता के संदर्भ के साथ आपने देवीप्रसाद मिश्र जी की कविता को लेकर जो समालोचना की है, वह मेरी दृष्टि में 'बावन तोला पाव रत्ती' खरी है। आपने अपने संपादकीय में जानकारियों की जाह्नवी प्रवाहित कर दी है। रामेश्वर मिश्र पंकज, अजित वडनेरकर, राजेन्द्र सिंह गहलोत, राजेन्द्र परदेसी, विवेक वर्धन, आलोक सक्सेना, अशोक आनन, अनूप अशेष प्रभावित करते हैं। विनीता वर्मा, तनुजा चौधरी की कविता कहानी प्रभाव छोड़ती है। समीक्षा में आनंद सिंह, प्रेम भारती और जया केतकी जी की समीक्षाएँ सराहनीय हैं।

'अक्षरा' जनवरी 2024 का अंक प्राप्त हुआ है। हमेशा की तरह आपके गहन चिंतन-मनन-अध्ययन की छाप, मुझ जैसे पाठक के मन पर छोड़ गया है। आपका संपादकीय आपने इस संपादकीय में सबसे पहले तो पाठक को गणतंत्र की गैलरी में बैठाया, फिर राममंदिर के उद्घाटन का सांकेतिक दृश्य दिखाया (सांकेतिक इसलिए क्योंकि उद्घाटन 22 जनवरी को होगा), रामकथा की व्याप्ति का विवरण दिया, अंगद कथा का प्रसंग बड़ी अच्छी तरह समझाया, 'अपराजिता' (आपकी पुस्तक) को बहुत सही परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया डैमनोलॉजी (दैत्य-शास्त्र) को विवेचित किया, कांट से लेकर मैथिली शरण गुप्त की पंचवटी तक पहुँचकर 'राममंदिर हमें अपनी सनातनता में ले जाए, न कि उस चालाक आधुनिकता में' कहकर सारगर्भित समापन किया है।

- अज़हर हाशमी, रतलाम (म.प्र.)

जनवरी 2024 कहानी विशेषांक आ गया। यह अंक आपकी संपादकीय दृष्टि और आपकी संपादकीय टीम की कड़ी मेहनत का परिणाम है। अंक में आपने वे सब बढ़िया कहानीकार एकत्रित किए हैं जो अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कथाएँ लिख रहे हैं। इसमें संतोष श्रीवास्तव, सुषमा मुनींद्र, प्रमोद भार्गव, अरुण अर्णव खरे, कुसुम रानी नैथानी, शकुंतला कालरा और तपेश भोमिक की कहानी महत्वपूर्ण महसूस हुई हैं। प्रमोद भार्गव ने कोरोना के कल की कहानी लिखकर अपने समय से जुड़े रहने का अपना दायित्व पूरा किया है। संतोष श्रीवास्तव की कहानियों की **शृंखला** में 'अपनी ही कैद में, के दृश्य हमेशा की तरह बड़े सशक्त बने हैं, तो सुषमा मुनेंद्र भी अपनी कहानी 'मामले को कुछ ऐसे समझा जाए' लिव इन से शुरू करती हुई समाज के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर गहरी बातचीत करती है। रविकांत की मौत के नाम से शामिल अरुण खरे की कहानी भी उसके संवादों और संवेदना के लिए महत्त्वपूर्ण कहानी के रूप में हमारे सामने आती है। स्मृति शुक्ला का कहानी आंदोलन पर आधारित लेख बढ़िया है उन्होंने काफी मेहनत से यह लेख लिखा है। नेल्सन मंडेला के लेख का विभा खरे द्वारा किया गया अनुवाद बहुत बढ़िया है तो गिरीश पंकज का श्रीकृष्ण सरल पर स्मृति लेख एक अद्भुत व्यक्तित्व पर पठनीय लेख है। प्रकाश मनु का स्वामी विवेकानंद पर, तो गंगा प्रसाद भर सैया जी का कच्ची भूमि का पैदल यात्री नामक आत्मकथ्य पढ़ने के योग्य है। अजहर हाशमी का हिंदी और हम तथा रामेश्वर मिश्र पंकज का धर्म शास्त्रों में ब्रह्मचर्य एवं आश्रम बहस की माँग करता है। दरअसल पत्रिकाओं को कभी भी एक पक्षीय नहीं होना चाहिए और चूँकि अक्षरा हमेशा से बहुपक्षीय और सर्वकरणीय साहित्य प्रकाशित करती रही है, इसलिए आगे इन आलेखों पर बहस या लेख के प्रति लेख भी छापे जाने चाहिए। सारांशत: यह पूरा अंक बहुत ही परिश्रम और सूझबूझ के साथ निकल गया है।

राजनारायण बोहरे, दतिया (म.प्र.) मो.-98266 89939

हमने राम गोपाल भावुक के सौजन्य से अक्षरा का कहानी विशेषांक देखा। यह अंक हमको बहुत अच्छा लगा। इस अंक में बड़े परिश्रम से गंगा प्रसाद बरसैंया और रामेश्वर मिश्र पंकज जैसे वरिष्ठ विचारकों

के लेख शामिल किए गए हैं। कहानी विशेषांक का दर्जा दिए जाने के कारण इस अंक में काफी संख्या में कहानी शामिल हैं। जो कहानी इसमें सम्मिलित हैं वे अपने समय की सही पहचान कराती कहानी है, संतोष श्रीवास्तव की कहानी अपनी ही कैद में, सुषमा मुनींद्र कि मामले को ऐसे समझा जाए, प्रमोद भार्गव की पूर्ण बंदी, हरि प्रकाश राठी की या में दो ना समाय, अरुण अर्णव खरे की रविकांत की मौत तथा धनेश दत्त पांडे की मौत के आगोश में बढ़िया हैं। अनुवाद के रूप में शामिल फकीर मोहन सेनापति डाक मुंशी, नेशनल मंडेला का स्वतंत्रता के लिए मैं मरने को तैयार हूँ भी बहुत उम्दा हैं। इस पूरे अंक में कहानियों पर दिए गए आलेख उम्दा अनुसंधान के बाद लिखे गए हैं, इस कारण अंक संग्रहणीय बन रहा है। राज नारायण बोहरे के आलेख सदी के आखिरी दशक का कथा साहित्य तो बड़ी लंबी और गहरी शोध का परिणाम दिखाई देता है। खुद कथाकार राज नारायण बोहरे ने निष्पक्ष रहते हुए हर विचारधारा के लेखक को इसमें शामिल किया है। 1990 से 2000 के बीच के कथा साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ उभर के आईं, चाहे वह स्त्री विमर्श हो, दलित विमर्श हो, मजहबी झगड़ा हो, विकास के अलग-अलग स्वरूप हो; सब पर शोध पूर्वक काम किया गया है। स्मृति शुक्ला का लेख भी महत्त्वपूर्ण लेख है। गिरीश पंकज जी ने श्री कृष्ण सरल पर और प्रकाश मनु ने विवेकानंद पर बढ़िया स्मृति लेख लिखे हैं। वैसे तो इस अंक में कुसुम लता केडिया, रामेश्वर मिश्र पंकज के धर्म शास्त्रों में प्रतिपादित समाजशास्त्र संबंधी दोनों लेख शोध पूर्ण है पर अजहर हाशमी का हिंदी और हम लेख का उल्लेख किए बिना इस यह चर्चा अधूरी रहेगी।

वेदराम प्रजापति, ग्वालियर (म.प्र.)

अक्षरा का जनवरी 2024 का अंक कहानी विशेषांक था, कथाकार होने के नाते मेरा ध्यान गया तो अंक का गहन अध्ययन किया। इस अंक में सबसे महत्त्वपूर्ण है राजनारायण बोहरे का लेख सदी के आखिरी दशक का कथा साहित्य! उस युग के हरेक लेखक की कहानियों और कथा प्रवृत्तियों का गहरा अनुसंधान बोहरे जी ने किया है, वहीं स्मृति शुक्ल का लेख अभी कुछ और मुद्दे शामिल करने की माँग करता है। इस अंक की कहानियों में संतोष श्रीवास्तव की अपनी ही कैद में, प्रमोद भार्गव की पूर्ण-बंदी, सुषमा मुनीन्द्र की मामले को कुछ ऐसे समझा जाय, तथा अरुण अर्णव खरे की कहानी रविकांत की मौत तो इस अंक की ही नहीं बल्कि युग की महत्त्वपूर्ण कहानी हैं. कथाओं में तपेश भौमिक, महावीर रवांल्टा, व दीपक शर्मा की कहानी ने प्रभावित किया, वैसे इस अंक में अजहर हाशमी के लेख 'हिंदी और हम' तथा रामेश्वर मिश्र पंकज का लेख 'धर्म शास्त्रों में ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ आश्रम' ने पाठक को चमत्कृत और समृद्ध किया है। नेलशन मन्डेला का लेख भी अंक की खास उपलब्धि है जिसका अनुवाद विभा खरे ने किया है। एक समृद्ध अंक के लिए बधाई।

- रामगोपाल भावुक, ग्वालियर (म.प्र.)

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी-भरी।
हिंदी हमारी राष्ट्र भाषा और लिपि है नागरी।

- मैथिली शरण गुप्त

मोदी की गारंटी
यानी गारंटी पूरी होने की गारंटी

मध्यप्रदेश का उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा कदम

पीएम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस

मध्यप्रदेश में हर जिला मुख्यालय पर चिन्हित एक शासकीय महाविद्यालय का पीएम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस के रूप में उन्नयन, इसके लिए **₹ 460 करोड़** का प्रावधान

महाविद्यालयों में सभी प्रकार के पाठ्यक्रम होंगे उपलब्ध

अब 'डीजी लॉकर' से डिग्री और मार्कशीट की उपलब्धता सुलभ

युवाओं में क्षमताओं का निर्माण कर, उन्हें कौशलवान और रोज़गार सक्षम बनाने में पीएम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस अहम भूमिका निभाएंगे।

डॉ. मोहन यादव
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

रामराज्य बनेगा हमारी पहचान
मोदी जी की गारंटी का परिणाम

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री

"प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में देश आगे बढ़ रहा है। 21वीं सदी के भारत में अपार संभावनाएं छुपी हुई हैं। हम प्रधानमंत्री जी के मार्गदर्शन में मध्यप्रदेश को जनहित और विकास में सबसे अग्रणी राज्य बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं।"

-डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री

एक माह के प्रयास
दो गुना हुआ विश्वास

- लाउडस्पीकर/डीजे का अनियंत्रित प्रयोग प्रतिबंधित
- खुले में मांस, मछली की बिक्री पर प्रतिबंध
- हुकुमचंद मिल के 4800 श्रमिक परिवारों को रू. 224 करोड़ का बकाया भुगतान
- तेंदूपत्ता संग्राहकों का मानदेय रू. 3 हजार प्रति बोरा से बढ़ाकर किया रू. 4 हजार, 35 लाख तेंदूपत्ता संग्राहकों को लगभग रू.165 करोड़ का लाभ
- यातायात सुगमता के लिए भोपाल में बीआरटीएस हटाने का निर्णय
- श्रीअन्न को बढ़ावा देने के लिए रानी दुर्गावती श्रीअन्न प्रोत्साहन योजना में किसानों को प्रति किलो रू. 10 का अतिरिक्त प्रोत्साहन
- दो लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई के विस्तार के लिए रू. 5 हजार करोड़ की परियोजनाएं मंजूर
- नागरिकों की सुविधा के लिए प्रदेश में संभाग, जिले, तहसील एवं पुलिस थानों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया प्रारंभ
- एक हजार से अधिक पुलिसकर्मियों को पदोन्नति
- उज्जैन, इंदौर और धार जिले में जहां-जहां भगवान श्रीकृष्ण के चरण पड़े हैं वहां तीर्थ स्थलों का विकास होगा
- प्रदेश में श्रीराम वन पथ गमन के विकास की कार्य योजना को चरणबद्ध तरीके से लागू करने का निर्णय
- नई शिक्षा नीति के अंतर्गत विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में वीरांगना रानी अवंतीबाई लोधी और रानी दुर्गावती की प्रेरणादायी वीरगाथा के विषय को शामिल करने का निर्णय
- हर जिले में एक शासकीय महाविद्यालय का पीएम उत्कृष्टता महाविद्यालय के रूप में उन्नयन
- रू. 350 करोड़ लागत से 6.67 किमी का इंदौर में बनेगा एलिवेटेड कॉरिडोर
- ग्रीन बॉन्ड जारी कर जुटाए गए रू. 308 करोड़ की राशि से खरगोन जिले के जलूद गांव में ऊर्जा संयंत्र की स्थापना
- स्वच्छ सर्वेक्षण अवॉर्ड 2023 में मध्यप्रदेश फिर आगे, इंदौर को लगातार सातवीं बार देश की स्वच्छतम सिटी का अवॉर्ड, भोपाल बना देश की स्वच्छतम राजधानी

मध्यप्रदेश शासन

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।